मुक्त व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम
पाठ्यक्रम कोड 811

प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा पाठ्यक्रम

1

योग का आधारभूत ज्ञान

विद्याधनम् सर्वधनं प्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के अधीनस्थ एक स्वायत्त संस्थान
ए–24/25, सेक्टर–62, नोएडा–201309 (उ.प्र.)
वेबसाइट : www.nios.ac.in, टोल फ्री नं. 1800 1809393

प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा पाठ्यक्रम (811)

आभार

सलाहकार समिति

अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश

निदेशक (व्या. शिक्षा)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश

पाठ्यक्रम-पाठ्यचर्या समिति

श्रीमती सरिता शर्मा, पाठ्यचर्या समिति अध्यक्ष एवं निदेशक, योगसरिता फाउंडेशन, एशियाड विलेज, नई दिल्ली

प्रोफेसर सुरेशलाल बरनवाल
योग विभागाध्यक्ष, देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

डॉ. तबस्सुम, प्राकृतिक चिकित्सक, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान, थाने, मुम्बई

प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज, पाठ्यक्रम समिति अध्यक्ष एवं डीन, योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

डॉ. निधीश यादव, सहा. प्रोफेसर
योग विभाग पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

श्रीमती सीमा सिंह, योगाचार्या
इंटीग्रल योग केन्द्र, वैशाली
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

डॉ. राजीव रस्तोगी
सहा. निदेशक, केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

डॉ. रामावतार शर्मा, योग विशेषज्ञ
राजकीय जनरल हॉस्पीटल
(आयुष विभाग, हरियाणा सरकार), नूह (हरियाणा)

श्रीमती रेखा शर्मा
योग शिक्षक
भारतीय विद्याभवन,
नई दिल्ली

लेखनदल

योगाचार्य कौशल कुमार, सचिव
राष्ट्र निर्माण योग संस्थान
हौज़खास, नई दिल्ली

श्रीमती सीमा सिंह, योगाचार्या
इंटीग्रल योग केन्द्र, वैशाली
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

डॉ. तबस्सुम
प्राकृतिक चिकित्सक, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान, थाने, मुम्बई

डॉ. रीता शर्मा, भारतीय सांस्कृतिक शिक्षिका, विविकानंद सांस्कृतिक केन्द्र
भारतीय दूतावास, टोकिया, जापान

श्रीमती रेखा शर्मा
योग शिक्षक योग संभाग
भारतीय विद्या भवन, दिल्ली

डॉ. पवन कुमार चौहान
व.कार्यकारी अधिकारी (योग),व्या. शि.वि.
रा.मु.वि.शि. संस्थान, नोएडा, उत्तर प्रदेश

डॉ. राजेन्द्र प्रताप मलिक
प्रवक्ता, योग विभाग
एम.बी. गवर्न्मेण्ट पी.जी. कॉलेज
हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड

डॉ. ऊधम सिंह, सहा. प्रोफेसर
योग विभाग
गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार (उत्तराखंड)

आचार्य कुन्दन कुमार
पाठ्यक्रम निदेशक, योग संभाग
भारतीय विद्या भवन
दिल्ली

संपादन

श्रीमती सरिता शर्मा, निदेशक,
योगसरिता फाउंडेशन,
एशियाड विलेज
नई दिल्ली

प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज, डीन
योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार, उत्तराखंड

डॉ. भानु जोशी
विभागाध्यक्ष
उत्तराखंड ओपेन यूनिवर्सिटी
हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड

डॉ. राजीव रस्तोगी
सहा. निदेशक, केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

योगाचार्य कौशल कुमार, सचिव
राष्ट्र निर्माण योग संस्थान
हौज़खास, नई दिल्ली

श्री प्रवीण शर्मा
संपादक
भारतीय धरोहर
नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समन्वयन

डॉ. पवन कुमार चौहान
व. कार्यकारी अधिकारी (योग),व्या. शि.वि.
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा (उ.प्र.)

ग्राफिक्स/पिक्चर तथा विशेष सहयोग

श्री. पवन कुमार, एवं श्री गणेश प्रसाद, रिसर्च स्कॉलर (योग)
योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड
श्री विवेक योगी, योग शिक्षक
इंटरनेशनल विश्वगुरु मेडीटेशन एवं योग संस्थान, ऋषिकेश, उत्तराखंड
आचार्य आदित्य भारद्वाज, संयु. सचिव, आई.एन.ओ., दिल्ली
डॉ. हरी सिंह यादव, यूनिवर्सल योग एण्ड नेचुरोपैथी इंस्टीट्यूट, अलीगढ़

लेज़र कम्पोजर

टेसा मीडिया एण्ड कम्प्यूटर्स, सी–206, शाहीन बाग, जामिया नगर, नई दिल्ली–110025

अध्यक्ष की कलम से...

प्रिय शिक्षार्थियो,

एनआईओएस के प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम में प्रवेश के लिए आपको बहुत–बहुत बधाई !

प्राचीनकाल से ही मानव प्रकृति के सानिध्य में रहा है, जहां उसने अपनी जीवन शैली में प्रकृति को समाहित कर स्वस्थ जीवन जीने की कला सीखी है। उसका खान–पान, पालन–पोषण, रोग–मुक्ति आदि सब कुछ प्रकृति ही करती है, जिसकी झलक, हमारी जीवन शैली और संस्कृति में दिखाई पड़ती है। किन्तु आज भौतिकवाद, भोग–विलासता, आधुनिक जीवन शैली और खान–पान की आदतों में बदलाव के कारण, जीवनशैली संबंधित विकार (जैसे–मोटापा, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, मधुमेह आदि) तेजी से बढ़ रहे हैं। इन सबसे बचने और स्वस्थ एवं चुस्त–दुरुस्त जीवन जीने के लिए, एक बार फिर, योग एवं प्राकृतिक जीवन शैली को अपनाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। प्रकृति में रहकर, जहां स्वस्थ जीवन प्राप्त होता है वहीं योग, शरीर, मन व आत्मशक्ति का सर्वांगीण विकास करता है और अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करता है। इस दशक में योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में, जो महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है, वह निसंदेह बहुत महत्वपूर्ण है।

अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने, रोगों से बचने और इलाज के लिए, लोग प्राकृतिक चिकित्सा तथा अन्य वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों की ओर तेजी से आकर्षित हो रहे हैं। अतः आज समाज में, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा की विशेषरूप से मांग है। इस विशेष मांग को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस) ने अपने अधिकृत प्रशिक्षण केन्द्रों के माध्यम से दो वर्ष छः माह के इस प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम की शुरूआत की है। इसमें छः माह की इंटर्नशिप का प्रावधान है। जो लोग, योग और प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में रुचि रखते हैं और एक पेशेवर के रूप में काम करने के इच्छुक हैं, उन सभी लोगों के लिए यह एक विशिष्ट कार्यक्रम है।

प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान के इस डिप्लोमा कार्यक्रम, को प्रभावी बनाने के लिए, प्रैक्टीकल–प्रशिक्षण का 70% और सिद्धान्त (Theory) का 30% वेटेज (Weightage) निर्धारित किया गया है। प्रशिक्षणार्थियों में यथोचित कौशल विकास, कार्य कुशलता, गुणवत्ता व क्षमता में वृद्धि हेतु, अध्ययन केन्द्रों पर यथोचित व्यक्तिगत संपर्क कक्षाएँ, सत्रीय कार्य, प्रैक्टीकल एवं प्रशिक्षण कक्षाएँ, इंटर्नशिप आदि का प्रावधान है।

एनआईओएस, भारत सरकार के अंतर्गत केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) के समतुल्य एक राष्ट्रीय शैक्षिक बोर्ड है, जो अपने सभी कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर, शिक्षाविदों और ट्रेड संबन्धित विशेषज्ञों की भागीदारी से विकसित करता है। प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान के इस डिप्लोमा कार्यक्रम को राष्ट्रीय स्तर के विषय विशेषज्ञों की समिति द्वारा विकसित किया गया है। पाठ्यक्रम विकास में विशेष सहयोगी रहे, श्रीमती सरिता शर्मा, निदेशक, योगसरिता संस्थान, दिल्ली, प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज, डीन, योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, डॉ0 भानु जोशी, विभागाध्यक्ष, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, डॉ0 निधीश यादव, सहा0 प्रोफेसर, योग विभाग, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार का, मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ, जिनके अतुलनीय सहयोग से, यह कार्यक्रम विकसित हो सका। साथ ही सीसीआरवाईएन, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, अन्य विश्वविद्यालयों, योग व प्राकृतिक चिकित्सा संस्थानों और टीम के उन सभी सदस्यों को भी, धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से, इस पाठ्यक्रम विकास के लिए अथक प्रयास किये।

प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम में प्रवेश लेने वाले अभ्यार्थियों को मैं, शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ और आशा करता हूँ कि यह कार्यक्रम आपके जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

आपके सफल एवं उज्ज्वल भविष्य की कामनाओं के साथ !

(प्रोफेसर चन्द्र भूषण शर्मा)

अध्यक्ष, एनआईओएस

दो शब्द...

प्रिय शिक्षार्थियो,

एनआईओएस के प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम में आपका स्वागत है!

आधुनिकता के इस भौतिकदौर में, अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने, रोगों से बचने और सुरक्षित इलाज की सभी को आवश्यकता है। आज लोग अपने स्वास्थ्य और फिटनेस को लेकर काफी सजग हैं। वे समझने लगे हैं कि, प्रकृति के साथ योगमयी जीवन जीना आवश्यक है। जहां प्रकृति स्वस्थ जीवन प्रदान करती है वहीं योग, शरीर, मन व आत्मशक्ति का सर्वांगीण विकास करता है और अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करता है। यही कारण है कि लोग आज, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा तथा अन्य प्राचीन चिकित्सा–पद्धतियों की ओर आकर्षित हो रहे हैं और समाज में, प्राचीन चिकित्सा–पद्धतियों की मांग विशेषरूप से बढ़ी है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस) ने अपने अधिकृत प्रशिक्षण केन्द्रों के माध्यम से, प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम की शुरूआत की है। जो लोग, योग और प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में रुचि रखते हैं और एक पेशेवर के रूप में काम करने के इच्छुक हैं, उन सभी लोगों के लिए एनआईओएस द्वारा यह विशिष्ट कार्यक्रम विकसित किया गया है।

प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान के इस दो वर्षीय डिप्लोमा कार्यक्रम में सैद्धांतिक और व्यावहारिक अर्थात प्रैक्टिकल मिलाकर, कुल 12 विषय सम्मलित हैं और छः माह की इंटर्नशिप का विशेष प्रावधान है, जिसे दो साल के प्रशिक्षण के उपरांत संबन्धित प्राकृतिक चिकित्सा के केन्द्रों, संस्थानों और अस्पतालों में पूरा करना आवश्यक होगा।

इस कार्यक्रम में, आपको अध्ययन सामग्री, स्व–निर्देशक सामग्री के रूप में प्रदान की जाएगी और व्यावहारिक घटक अर्थात प्रैक्टिकल–प्रशिक्षण एनआईओएस के मान्य प्रशिक्षण अध्ययन केंद्रों (एवीआई) पर प्रदान किया जाएगा, जहां यथोचित व्यक्तिगत संपर्क कक्षाएँ, सत्रीय कार्य, प्रैक्टीकल एवं प्रशिक्षण कक्षाएँ, इंटर्नशिप आदि का प्रावधान निर्धारित है। योजना के अनुसार, प्रथम वर्ष में आप, सैद्धांतिक और व्यावहारिक 06 विषयों का प्रशिक्षण प्राप्त करेंगे और परीक्षा में बैठेंगे। इसी प्रकार द्वितीय वर्ष में भी आप, सैद्धांतिक और व्यावहारिक 06 विषयों का प्रशिक्षण प्राप्त कर, परीक्षा में बैठेंगे। तदुपरान्त किसी प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग केंद्र अथवा चिकित्सालय में 06 माह की इर्न्टनशिप को पूरा करेंगे।

शिक्षार्थियों को ध्यान में रखते हुए, पाठ्यक्रम को, स्व–निर्देशित पाठ्यसामग्री के रूप में विकसित किया गया है, जिसमें यूनिट परिचय, यूनिट के उद्देश्य, अध्यापक की शैली में विषयों व उपविषयों को शिक्षक की भांति समझाते हुए, बीच–बीच में आपकी प्रगति जानने के लिए प्रश्न, आपने क्या सीखा और अंत में निबंधात्मक प्रश्नों का समावेश किया गया है।

यह पाठयसामग्री राष्ट्रीय स्तर पर विषय विशेषज्ञों की समिति द्वारा विकसित की गई है। पाठ्यक्रम विकास में विशेष सहयोगी रहे श्रीमती सरिता शर्मा, निदेशक, योगसरिता संस्थान, दिल्ली, प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज, डीन, योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, डॉ0 भानु जोशी, विभागाध्यक्ष, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, डॉ0 निधीश यादव, सहा0 प्रोफेसर, योग विभाग, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार का, मैं हृदय से आभारी हूँ, जिनके मार्गदर्शन में यह कार्यक्रम विकसित हो सका। साथ ही सीसीआरवाईएन, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, अन्य विश्वविद्यालयों, योग व प्राकृतिक चिकित्सा संस्थानों और टीम के अन्य सभी सदस्यों का भी मैं, आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने इस पाठ्यक्रम विकास के लिए अपना महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया।

आशा करता हूँ कि यह कार्यक्रम आपको पसंद आएगा और आपके जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। इस कार्यक्रम से संबन्धित, यदि कोई सुझाव है तो, आपका स्वागत है। आप निःसंकोच हमसे संपर्क कर सकते हैं या लिखकर भेज सकते हैं।

आपके सफल एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए ढेर सारी शुभकामनाएँ!

शुभकामनाओं सहित,
कार्यक्रम समन्वयक और समिति
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या

प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में, प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा एक महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम है। यह पाठ्यक्रम, उन सभी लोगों के लिए विकसित किया गया है, जो योग और प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में रुचि रखते हैं और एक पेशेवर के रूप में, काम करने के इच्छुक हैं। प्राचीनकाल से ही मानव प्रकृति के सानिध्य में रहा है, जहां उसने अपनी जीवन शैली में प्रकृति को समाहित कर स्वस्थ जीवन जीने की कला सीखी है। आज स्वस्थ एवं चुस्त–दुरुस्त रहने के लिए, योग एवं प्राकृतिक जीवन शैली को अपनाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

आधुनिक जीवन शैली के पैटर्न और खान–पान की आदतों में बदलाव के कारण जीवनशैली संबंधी रोग जैसे – मोटापा, उच्च रक्तचाप, ह्रदय रोग, मधुमेह आदि बीमारियां तेजी से बढ़ रही हैं। यही कारण है कि, लोग अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने, रोगों से बचने और इलाज के लिए, प्राकृतिक चिकित्सा तथा अन्य वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों की ओर तेजी से आकर्षित हो रहे हैं। अतः आज समाज में, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा की विशेषरूप से मांग है। इस विशेष मांग को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस) ने अपने अधिकृत प्रशिक्षण केन्द्रों के माध्यम से इस व्यावसायिक पाठ्यक्रम की शुरूआत की है।

उद्देश्य

पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य, योग और प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में लोगों को कुशल पेशेवर और निवारक विशेषज्ञ बनाना है। पाठ्यक्रम को पूरा करने के पश्चात, प्रशिक्षु निम्नांकित में कौशल प्राप्त करने और दक्षता हासिल करने में सक्षम होंगे –

- योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा के परिचय पर प्रकाश डालने में;
- स्वास्थ्य–जागरूकता, स्वच्छता, एवं आहार की आवश्यकता एवं महत्व का उल्लेख करने में;
- योग दर्शन एवं क्रिया विज्ञान को समझा पाने में;
- योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांतों तथा पंचतत्वों पर प्रकाश डालने में;
- प्राकृतिक जीवन शैली की अवधारणाओं को जानने और व्यावहारिक बनाने में;
- स्वास्थ्य संवर्धन, बीमारियों की रोकथाम सहित सामान्य संक्रमण और जीवन शैली संबन्धित बीमारियों का प्रबंधन और आपातकालीन स्थितियों के दौरान नियंत्रण करने में;
- मानव शरीर रचना एवं शरीर क्रिया विज्ञान की मूलभूत जानकारी रखने में;
- योग के एकीकृत दृष्टिकोण के अनुप्रयोगों को लागू करने में;

- प्राकृतिक चिकित्सा से विभिन्न विकारों व बीमारियों की चिकित्सा प्रदान करने में;
- मानव शरीर पर योग के प्रभाव को स्पष्ट करने में।

प्रवेश अर्हता

- किसी भी मान्यता प्राप्त बोर्ड से न्यूनतम 12 वीं कक्षा पास (समकक्ष)

अथवा

- वे सभी लोग, जो योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा में किसी प्रतिष्ठित संस्थान (एनआईओएस द्वारा स्वीकृत)/विश्वविद्यालय से न्यूनतम एक वर्ष का डिप्लोमा कर चुके हैं, वे पाठ्यक्रम के द्वितीय वर्ष में सीधे प्रवेश ले सकते हैं, लेकिन प्रथम वर्ष की परीक्षा द्वितीय वर्ष के साथ उत्तीर्ण करनी आवश्यक होगी।
- न्यूनतम आयु –18 वर्ष

लक्ष्य समूह

वे सभी लोग, जो योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में 'कुशल पेशेवर और निवारक विशेषज्ञ' बनने के इच्छुक हैं।

रोजगार के अवसर

कार्यक्रम पूरा करने के पश्चात प्रशिक्षु, योग संस्थानों, योग केंद्रों, स्वास्थ्य क्लबों, प्राकृतिक चिकित्सालयों तथा अन्य प्राचीन चिकित्सा पद्धति के केन्द्रों आदि में सहायक चिकित्सक अथवा समकक्ष के रूप में काम कर सकते हैं।

पाठ्यक्रम की अवधि : पाठ्यक्रम की अवधि दो वर्ष छः माह इंटर्नशिप।

अध्ययन की योजनाः कुल अध्ययन घंटे = 1200 घंटे + छः माह की इंटर्नशिप

स्व–अध्ययन – 20%, सिद्धांत और प्रैक्टिकल–प्रशिक्षण – 80%

प्रथम वर्षः 10 माह × 8 दिन (एक माह में) × 6 घंटे = 480 घंटे

द्वितीय वर्षः 10 माह × 8 दिन (एक माह में) × 6 घंटे = 480 घंटे

थ्योरी व प्रैक्टिकल–प्रशिक्षण कुल संपर्क घंटे – 480 + 480 = 960 घंटे + स्व–अध्ययन – 240 घंटे

छः माह की रेग्युलर इंटर्नशिप = 6 माह × 20 दिन (एक माह में) × 6 घंटे = 720 घंटे

पाठ्यक्रम–पाठ्यचर्या

पाठ्यक्रम में सिद्धांत और प्रैक्टिकल–प्रशिक्षण सहित कुल 12 विषय शामिल हैं। अध्ययन सामग्री स्व–निर्देशक सामग्री के रूप में प्रदान की जाएगी और व्यावहारिक घटक अर्थात

प्रैक्टिकल–प्रशिक्षण एनआईओएस के मान्य प्रशिक्षण अध्ययन केंद्रों (एवीआई) पर प्रदान किया जाएगा।

प्रथम वर्ष के विषय			
क्र.सं.	सैद्धान्तिक	क्र.सं.	प्रैक्टिकल
01	योग का आधारभूत ज्ञान	04	योग अभ्यास (प्रायोगिक)
02	प्राकृतिक चिकित्सा का आधारभूत ज्ञान	05	प्राकृतिक चिकित्सा का व्यावहारिक प्रशिक्षण (प्रायोगिक)
03	मानव शरीर रचना, क्रिया विज्ञान और योग के प्रभाव	06	मानव शरीर रचना, क्रिया विज्ञान और योग के प्रभाव (प्रायोगिक)
द्वितीय वर्ष के विषय			
01	यौगिक चिकित्सा	04	यौगिक चिकित्सा (प्रायोगिक)
02	पंच–तत्व चिकित्सा	05	पंच–तत्व चिकित्सा (प्रायोगिक)
03	अन्य प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियाँ	06	अन्य प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियाँ (प्रायोगिक)
*किसी प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र पर छः माह की इंटर्नशिप के दौरान अनुसंधान संबन्धित परियोजना पर कार्य			

*प्रशिक्षु इंटर्नशिप के दौरान अनुसंधान संबन्धित परियोजना पर कार्य करेंगे। जिसके अधिकतम अंक 200 होंगे। इसका मूल्यांकन एनआईओएस द्वारा नियुक्त, बाह्य परीक्षक द्वारा किया जाएगा। जिसका प्रमाणपत्र संबन्धित एवीआई (प्रशिक्षण केंद्र) और प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र के सौजन्य से प्राप्त होगा।

निर्देश का माध्यम:

निर्देश का माध्यम हिंदी और अंग्रेजी

अनुदेश योजना:

- स्व–निर्देशित मुद्रित सामग्री
- एवीआई/अध्ययन केन्द्रों पर सम्पर्क कक्षाओं एवं व्यावहारिक–प्रशिक्षण की सुविधा
- श्रव्य–दृश्य सामग्री

मूल्यांकन और प्रमाणन की योजना

पाठ्यक्रम के दोनों घटकों (सैद्धान्तिक और व्यावहारिक) का मूल्यांकन किया जाएगा। अंतिम परिणाम की गणना करते समय आंतरिक आंकलन और इंटर्नशिप को भी ध्यान में रखा जाएगा। आंकलन, मूल्यांकन और प्रमाणन की योजना एनआईओएस द्वारा डिजाइन दिशा–निर्देशों के माध्यम से कार्यान्वित की जाएगी। एनआईओएस अपने नियमों और विनियमों के अनुसार अंतिम प्रमाणपत्र प्रदान करेगा।

क्र.सं.	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा पाठ्यक्रम	कोर्स कोड	अधि. अंक	समय (घंटे में)	सत्रीयकार्य अधि.अंक	कुल अंक
प्रथम वर्ष						
1	योग का आधारभूत ज्ञान (सैद्धान्तिक)	811	70	3	30	100
2	प्राकृतिक चिकित्सा का आधारभूत ज्ञान (सैद्धान्तिक)	812	70	3	30	100
3	मानव शरीर रचना, क्रिया विज्ञान और योग के प्रभाव (सैद्धान्तिक)	813	70	3	30	100
4	योग अभ्यास (प्रायोगिक)	814	70	3	30	100
5	प्राकृतिक चिकित्सा का व्यावहारिक प्रशिक्षण (प्रायोगिक)	815	70	3	30	100
6	मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान (प्रायोगिक)	816	70	3	30	100
	योग					**600**
द्वितीय वर्ष						
1	यौगिक चिकित्सा (सैद्धान्तिक)	817	70	3	30	100
2	पंच–तत्व चिकित्सा (सैद्धान्तिक)	818	70	3	30	100
3	अन्य प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियाँ (सैद्धान्तिक)	819	70	3	30	100
4	यौगिक चिकित्सा (प्रायोगिक)	820	70	3	30	100
5	पंच–तत्व चिकित्सा (प्रायोगिक)	821	70	3	30	100
6	अन्य प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियाँ (प्रायोगिक)	822	70	3	30	100
	योग					**600**
इंटर्नशिप के दौरान अनुसंधान संबन्धित परियोजना पर कार्य						200
महायोग =						1400

उत्तीर्णता मापदंड : परीक्षार्थी को सैद्धान्तिक, व्यावहारिक प्रशिक्षण एवं सत्रीय कार्य तीनों में 50–50 प्रतिशत अंक प्राप्त करने होंगे।

पाठ्यक्रम शुल्क

पाठ्यक्रम का कुल शुल्क 30,000 रुपये है, जिसमें पाठ्यसामग्री, प्रक्रिया शुल्क आदि सम्मिलित है। परीक्षा में बैठने के लिए परीक्षा शुल्क एनआईओएस के नियमानुसार अलग से देय होगा। प्रवेश के दौरान अभ्यार्थी, प्रथम वर्ष में निर्धारित पाठ्यक्रम शुल्क 15,000 रुपये और द्वितीय वर्ष में 15,000 रुपये जमा करेंगे।

नोट : जो अभ्यर्थी सीधे द्वितीय वर्ष में प्रवेश लेंगे, उनके लिए यह पाठ्यक्रम शुल्क 25,000 रुपये होगा।

विषय सूची

क्र.सं.	यूनिट का नाम	पृष्ठ सं.
1.	योग : एक परिचय	1
2.	योग अस्तित्व की अवधारणा	19
3.	यौगिक जीवन दर्शन	37
4.	श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार प्रमुख योग मार्ग	61
5.	पातंजलि योगसूत्र	75
6.	अष्टांग योग	87
7.	हठयोग	105
8.	योग साधना में विघ्न	127
9.	योगाभ्यास करने से पूर्व–निर्देश, तैयारी और सावधानियाँ	137
10.	षट्कर्म	149
11.	यौगिक सूक्ष्म अभ्यास (क्रियाएँ)	167
12.	योग आसन	205
13.	प्राणायाम	243
14.	मुद्रा और बंध	259
15.	योग निद्रा एवं ध्यान साधना	273

टिप्पणी

1

योग : एक परिचय

योग प्राचीनकाल से ही भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है, जो हमें हमारी भारतीय परम्परा से विरासत में मिला है। योग, न केवल एक अमूल्य धरोहर है, अपितु स्वस्थ रहने के लिए एक अनमोल उपहार भी है जो मनुष्य को जीवन जीने की कला सिखाता है। यह केवल व्यायाम नहीं बल्कि जीवन शैली को आनंदमय बनाने की कला भी है। प्राचीन काल से ही हमारे ऋषि मुनि यौगिक जीवन का अनुसरण करते आ रहे हैं। क्या आप जानते हैं कि योग अब मात्र आश्रमों और साधु-संतों तक ही सीमित नहीं रह गया है बल्कि पिछले कुछ दशकों में इसने हमारे दैनिक जीवन में अपना स्थान बना लिया है।

इस यूनिट में हम, योग के इतिहास का अध्ययन करेंगे, और इसकी आवश्यकता, महत्व और सिद्धांत को समझेंगे। हम यह भी जानेंगे कि आधुनिक युग में योग का क्या लक्ष्य है?

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के बाद आप :

- योग के सामान्य परिचय पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- योग का सही अर्थ समझा सकेंगे;
- योग की परिभाषा और व्याख्या कर सकेंगे;
- योग की उत्पत्ति, इतिहास व विकास पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- वर्तमान में योग की उपयोगिता एवं महत्व बता सकेंगे;

टिप्पणी

1.1 योग : एक परिचय

जब योग का विषय शुरू होता है तो अचानक हमारे मन में साधु–संन्यासी या गेरुआ वस्त्र धारण किए बाबाओं की तस्वीर उभरने लगती है। कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि योग तो साधु, संन्यासियों का ही विषय है, तो कुछ लोग इसे हाथ का जादू या चमत्कार समझते हैं। आमतौर पर योग को स्वास्थ्य और फिटनेस के लिए एक थिरेपी के रूप में समझा जाता है। तो आइए, इन सब भ्रान्तियों से हटकर योग के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयास करते हैं।

योग स्वस्थ जीवन जीने की एक कला है जो मन और शरीर के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में योग का बहुत महत्व है। प्राचीन काल से ही योग हमारी जीवन शैली के अंग के रूप में समाहित है। आज योग सभी को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। महर्षि पतंजलि ने अपने योग ग्रंथ –'पातंजल योग सूत्र' में वर्णन किया है कि *''तदा द्रष्टुः स्वरुपेऽवस्थानम्''* अर्थात् मानव जीवन का परम लक्ष्य अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होना है। (पातंजल योग सूत्र 1/3) और यही योग विद्या का ध्येय भी है। योग विद्या हमें अपने स्वयं के अस्तित्व का बोध कराती है।

योग शब्द का अर्थ बहुत व्यापक और विस्तृत है। शास्त्रों के अनुसार इसके अनेक अर्थ मिलते हैं। योग शब्द का सामान्य अर्थ है – जोड़ना, जुड़ना, मिलना, युक्त होना आदि। संस्कृत में योग शब्द की उत्पत्ति युज् धातु से मानी गई है। (योग शब्द 'युज्' धातु के बाद करण और भाव वाच्य में घन् प्रत्यय लगाने से बना है) जिसका अर्थ है –'स्वयं के साथ मिलन'।

शरीर का मन से, मन का आत्मा से और आत्मा का परमात्मा से जुड़ना योग कहलाता है।

जैसा कि हम आपको बता चुके हैं कि योग का अर्थ बहुत व्यापक है। विभिन्न विद्वानों ने अपने मत व भाव के अनुसार योग के अर्थ को स्पष्ट किया है। 'योग अनुशासन का विज्ञान है' यह शरीर, मन तथा आत्मशक्ति का सर्वांगीण विकास करता है।

योग सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित एक आध्यात्मिक विषय भी है जो मन एवं शरीर के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। यह स्वस्थ जीवन जीने की एक कला है, जो भौतिक व आध्यात्मिक दोनों तरह के उत्थान को संभव बनाता है। इसका स्पष्ट प्रमाण सिंधु सरस्वती घाटी की सभ्यता से ही मिल जाता है, जिसका इतिहास 2700 ईसा पूर्व से है।

योग के महान दार्शनिक–महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन को आरंभ करते हुए लिखा है – 'अथ योगानुशासनम्' (पा.यो.द.–1/1) अर्थात् अब योगानुशासन –परंपरागत योगविषय शास्त्र को आरंभ करते हैं। कहने का तात्पर्य है कि महर्षि पतंजलि ने 'योग को अनुशासन का विज्ञान' बताया है।

योग के अर्थ को गहराई से समझने के लिए आइए, योग की कुछ मुख्य परिभाषाओं पर विचार करते हैं।

टिप्पणी

1.2 योग की परिभाषा

आपने योग के परिचय में पढ़ा कि योग, संस्कृत के युज् धातु से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है 'जोड़ना'। योग से हम अपने को दूसरों से जोड़ पाते हैं। तद्नुसार आत्मा को सर्वव्यापी परमात्मा से जोड़ने के साधन के रूप में भी योग को समझा जा सकता है।

महार्षि पाणिनी के अनुसार—

1) ***युजिर योगे*** अर्थात् संसार के साथ वियोग और ईश्वर के साथ संयोग का नाम, योग है।

2) ***युज समाधौ*** अर्थात् समाधि के लिए साधना से जुड़ना, योग है।

3) ***युज संयमने*** अर्थात् मन पर संयम करना, योग है।

वैदिक ग्रंथों, उपनिषदों, महाभारत और श्रीमद्भगवद्गीता में योग पर काफी चर्चा की गई है। श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग और राज योग का अद्भुत उल्लेख मिलता है।

आइए, अब यहाँ पर योग की कुछ परिभाषाओं पर विचार करते हैं —

1) *योगश्चित्तवृत्ति निरोधः* (पा.यो.द. 1/2)

अर्थात् महर्षि पतंजलि के अनुसार **'चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है।'**

आपने महसूस किया होगा कि मन प्रायः अस्थिर रहता है। यह अस्थिरता हमारी चंचल वृत्तियों के कारण है। वृत्ति का अर्थ है चित को व्यवहार में लाना। जिस वस्तु के प्रति हम जैसा सोचते हैं या व्यवहार करते हैं, उसे वृत्ति कहते हैं। सुखद दृश्यों को सोच कर या देखकर उन दृश्यों के प्रति, प्रीति की भावना, लगाव की भावना, स्वाभाविक है। इसे **'रागयुक्त'** वृत्ति कहते हैं। इसके विपरीत किसी दुखद घटना को याद करते हुए या ग्रस्त होते हुए, उसके प्रति दुःख की भावना का आना स्वाभाविक है और इसे **'द्वेषयुक्त वृत्ति'** कहते हैं। हर समय हमारे मन में एक न एक वृत्ति का संचार होता रहता है। हमारी वृत्तियां हमारे पूर्व संस्कारों और वर्तमान में ग्रहण किए जाने वाले विषयों के कारण होती हैं।

आप पूछेंगे कि विषय क्या है? विषय पांच हैं — शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। इन्हीं विषयों के अधीन काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और ईर्ष्या, द्वेष आ जाते हैं।

हमारी वृत्तियों के आधार पर जो—जो विषय स्वयं को ठीक लगते हैं वही चित्त द्वारा आत्मा के सम्मुख लाए जाते हैं। जब—जब हम अज्ञानवश अपने आप को चित्त मानते हुए उन्हें ग्रहण करते हैं, तब—तब मन में रागयुक्त या द्वेषयुक्त वृत्ति का संचार होता रहता है। इन वृतियों को चित्त की बाह्य—वृत्ति कहते हैं। अभ्यास द्वारा चित्त की वृत्तियों को बाहर की वस्तुओं (विषयों) से हटाकर अंदर की ओर करते रहने से, वृत्तियों का भटकना बंद हो जाता है। उन वृत्तियों को पूर्णतः शांत और एकाग्र कर लेने का नाम योग है। इसे ही 'योगः चित्तवृत्ति निरोध' कहते हैं।

टिप्पणी

2. *योगः कर्मसु कौशलम्* । (श्रीमद्भगवद्गीता–2/50)

अर्थात्

कर्मों में 'कुशलता ही योग है।''

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में योग को परिभाषित करते हुए कहा है कि कर्मों को पूर्ण कुशलता पूर्वक किया जाए और वे आसक्ति रहित हों। इस परिभाषा के स्पष्टीकरण के लिए यहां स्पष्ट करना आवश्यक है कि कर्मों का आशय निश्चित रूप से सत्कर्म करने से है अर्थात् – वे कर्म जो मानव के करने योग्य हैं। निषिद्ध कर्म जैसे – चोरी करना, ईर्ष्या करना, बेईमानी करना आदि इस परिधि में नहीं आते।

कर्मों को कुशलता पूर्वक न कर पाने के कारण ही जीव को बार–बार जन्म लेना पड़ता है। वे फलों की इच्छा से कर्म करते हैं और आसक्तिपूर्वक किए गए कर्मों का फल भोगने के लिये फिर से जन्म लेना पड़ता है। इसलिए जीव कर्मों एवं कर्मफलों के बंधन से मुक्त नहीं हो पाता और जन्म-मरण का यह क्रम चलता रहता है।

चित्र 1.1: योगेश्वर कृष्ण का योग संदेश

3. *समत्वं योग उच्यते* (श्रीमद्भगवद्गीता–2:48)

अर्थात् समत्व भाव ही योग है।

समत्व का अर्थ है – विभिन्न परिस्थितियों यथा सुख–दुखः लाभ–हानि में सम बने रहना या एक जैसा बने रहना। अधिकांशतः देखने में यह आता है कि सुखद परिस्थितियों में हम फूले नहीं समाते, हमारे अंदर अहंकार आ जाता है और हम जैसा व्यवहार पहले करते थे सामान्यतः वैसा नहीं कर पाते। इसी प्रकार अधिकांश लोग परिस्थिति के थोड़ा–सा प्रतिकूल होते ही बड़े निराश, हताश और उदास हो जाते हैं और अपने आप को बड़ा दीन–हीन मानने लगते हैं। इन दोनों अवस्थाओं में वे अपने आप पर संयम नहीं रख पाते और भावुक हो उठते हैं। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही परिस्थितियों में अपने मन की शांति और स्थिरता को बनाए रखना एवं लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ते रहना ही समभाव अथवा 'समत्व' कहलाता है।

4. *योऽपानप्राणयोरैक्यं स्वरजो रेतसोः तथा।*
सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः।।
एवं तु द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते।। (योग शिखोपनिषद्–1/68-69)

टिप्पणी

'अर्थात् अपान का प्राण से, स्वरज का स्वरेत से, सूर्य (नाड़ी) का चन्द्र (नाड़ी) से व जीवात्मा का परमात्मा से संयोग (मिलन) को ही योग कहा गया है।'

हर जीव में आत्मा होती है, उसी आत्मा की शक्ति से यह सारा शरीर और मन काम करता है। शरीर और मन अपने आप काम नहीं करते, ये तो जड़ हैं। किन्तु आत्मा जड़ नहीं, चेतन है और आत्मा की चेतन शक्ति से ही शरीर और मन भी चेतन दिखाई पड़ते हैं। शरीर जड़ है और पांच तत्वों से बना है। ये पांच तत्व आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी हैं। इन पांच तत्वों के साथ जीवात्मा के संयोग को जन्म और वियोग को मृत्यु कहते हैं। **जीवात्मा, शक्ति** का ऐसा पुंज है जो न कभी मरती है और न ही कभी जन्म लेती है, बल्कि जन्म लेता और मरता तो शरीर है। अच्छे कर्म करते हुए जीवात्मा पुण्यात्मा बन जाती है और बुरे कर्म करते हुए जीवात्मा पापात्मा बन जाती है। निरंतर योगाभ्यास से धीरे–धीरे हमारा शरीर निरोग और स्थिर होने लगता है, मन पवित्र और शांत होने लगता है; अंततः हमें आत्मा के सही स्वरूप का भान होने लगता है। आत्मा के सही स्वरूप को पहचानने के पश्चात ही हम परमात्मा के आंशिक स्वरूप को जानने की सामर्थ्य जुटा पाते हैं।

जैसे–जैसे हमारी जीवात्मा पवित्र और सबल होती जाती है वैसे–वैसे वह परमात्मा के नजदीक होने लगती है। इस स्थिति की ओर बढ़ते–बढ़ते हमें परमानंद की अनुभूति होने लगती है और **आत्मा–परमात्मा** के मंगल–मिलन की इस अवस्था को योग कहा गया है।

स्वामी विवेकानन्द ने राज योग में योग की इस प्रकार व्याख्या की है कि *'प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्मा है। बाह्य एवं अंतः प्रकृति को वशीभूत करके अपने इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का परम लक्ष्य है''*।

स्वामी शिवानन्द जी योग की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि *योग, विचार, वाणी और कर्म के बीच समन्वय और सामन्जस्य स्थापित करता है।''*

आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार *''स्वयं को जानना योग है।''*

यूनिटगत प्रश्न 1.1

1. योग का क्या अर्थ है?

....

....

....

2. श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार योग की परिभाषा बताइये।

....

....

टिप्पणी

1.3 योग की उत्पत्ति, इतिहास व विकास

योग की उत्पत्ति के विषय में सही समय का अनुमान लगाना तो कठिन है लेकिन योग का प्रादुर्भाव हजारों वर्ष पहले हुआ है। योग विद्या में शिव को प्रथम योगी व आदि गुरू के रूप में और पार्वती को प्रथम शिष्या के रूप में माना जाता है। योग का उल्लेख सबसे प्राचीन वैदिक ग्रंथ ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्य दर्शनों में भी योग विस्तार से देखने को मिलता है। बौद्ध दर्शन, जैनदर्शन आदि दर्शनों में भी योग के साक्ष्य मिलते हैं। प्रत्येक दर्शन की उपासना पद्धति में योग को एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। योग हमारे ऋषि–मुनियों की देन है। उन्होंने जो आत्म साक्षात्कार और अनुभव किया उसको उसी सुव्यवस्थित ढंग से प्रतिपादित किया है। यह, आज के वैज्ञानिक युग में भी, सर्वमान्य व लोकप्रिय है।

योग का इतिहास बहुत पुराना है। यह पुरातनकाल से ही चला आ रहा है। याज्ञवल्क्य स्मृति (12/5) में उल्लेख मिलता है कि –

'हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः''।

अर्थात् – सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ही योग के प्रथम वक्ता हुए हैं, ऐसा महाभारत में भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि –

''सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षि स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।।''

महाभारत 2/394/65

इस संदर्भ में यदि, श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय–4 को देखा जाय तो उसमें बड़ा ही सुन्दर उल्लेख मिलता है कि –

1) *इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।*
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।

श्रीभगवान् बोले – मैंने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा।

2) *एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।*
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।।

हे परंतप अर्जुन! इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना; किन्तु उसके बाद वह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक में लुप्तप्रायः हो गया।

3) *स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।*
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।

तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिए वही पुरातन योग आज मैंने तुझको कहा है; क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है।

अर्जुन उवाच

4) *अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।*
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति।।

अर्जुन बोले – आपका जन्म तो अर्वाचीन अर्थात् अभी हाल का है और सूर्य का जन्म बहुत पुराना है अर्थात् कल्प के आदि में हो चुका था; तब मैं इस बात को कैसे समझूँ कि आप ही ने कल्प के आदि में सूर्य से यह योग कहा था।

श्रीभगवानुवाच

5) *बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।*
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं तेत्थ परन्तप।।

श्रीभगवान् बोले –हे परंतप अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत–से जन्म हो चुके हैं। उन सबको तू नहीं जानता, किन्तु मैं जानता हूँ।

6) *अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।*
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।

मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योग माया से प्रकट होता हूँ।

7) *यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।*
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

हे भारत! जब–जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब–तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ।

8) *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।*
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये, पापकर्म करने वालों का विनाश करने के लिये और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिये मैं युग–युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि योग पुरातन काल से ही चला आ रहा है।

श्रीमद्भगवद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अर्जुन के साथ ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग एवं राज योग पर वृहद् चर्चा की है।

टिप्पणी

मार्शल (1931) ने अपनी पुस्तक 'Mohenjo-daro and the indus civilizations' में उल्लेख किया है कि मोहनजोदाड़ो और हड़प्पा की खुदाई में जो अवशेष प्राप्त हुए हैं वे उस काल में प्रचलित योग साधना का संकेत करते हैं। आसन में बैठे पशुपति और ध्यानस्थ योगी की प्रतिमा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

पॉल ब्रन्टन की पुस्तक 'गुप्त भारत की खोज' में उल्लेख है कि हिमालय के सुदूरवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले साधक आज भी योग साधनाओं में लीन है। स्वामी राम ने भी अपनी पुस्तक 'Living with Himalayan Masters' में इस तरह योग पद्धतियों की विकासात्मक चर्चाएं की हैं।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि योग प्राचीनकाल से ही प्रचलित है।

1.3.2 कुछ मुख्य यौगिक ग्रंथों का सामान्य परिचय

आइये, अब हम कुछ मुख्य यौगिक ग्रन्थों के सामान्य परिचय पर चर्चा करते हैं :–

सभी भारतीय दर्शन एक ही ज्ञान के पथ हैं। प्रत्येक दर्शन उप मार्ग का एक सोपान है। परमपद तक पहुंचने के लिए पहले सोपान को पार करना ही होगा।

(i) पातंजल योग सूत्र

योग के दार्शनिक रूप में तत्वों पर विचार करने के लिए **महर्षि पतंजलि** द्वारा योगसूत्र महत्वपूर्ण दर्शन है। 'योग सूत्र' योगशास्त्र का मूल ग्रंथ है। इसमें चार पाद हैं–

1. <u>समाधिपाद</u> 2. <u>साधनपाद</u>
3. <u>विभूतिपाद</u> 4. <u>कैवल्यपाद</u>

1) प्रथमपाद में कुल 51 सूत्र हैं, जिसके अंतर्गत योग के स्वरूप, चित्तवृत्ति, समाधि तथा उनके भेदों का निरूपण किया गया है।

2) द्वितीय पाद में कुल 55 सूत्र हैं, इसमें क्रियायोग, अविद्यादि क्लेश एवं उनके निवारण के उपाय एवं अष्टांग योग (बहिरंग) आदि महत्वपूर्ण विषयों का निरूपण मिलता है।

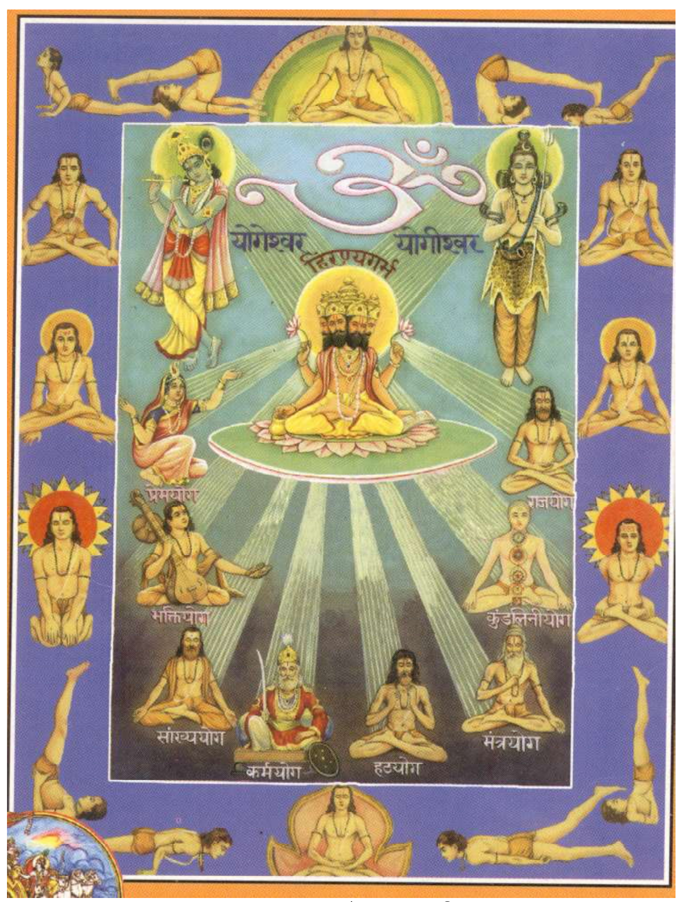

चित्र 1.2: योग–दर्शन

3) तृतीय पाद में भी 55 सूत्र हैं । इसके अंतर्गत धारणा, ध्यान, समाधि संयम एवं संयम जन्य विभूतियां निरूपित की गई हैं ।

4) चतुर्थ पाद में 34 सूत्रों का वर्णन है । इसका प्रमुख विषय कैवल्य है तथा इसमें समाधिसिद्धि (अंतरंग), चित्तनिर्माण, आत्मभाव, भावनानिवृत्ति, धर्ममेघ, समाधि आदि का निरूपण भी किया गया है । अन्य दर्शनों की अपेक्षा योग दर्शन की एक विशेषता यह है कि यह सैद्धान्तिक ही नहीं, व्यावहारिक भी है ।

(ii) घेरण्ड संहिता

घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड ने जिस योग की शिक्षा दी है, उसे लोग 'सप्तांग योग' के नाम से भी जानते हैं । अन्य ग्रंथों में अष्टांग योग की चर्चा की गई है, लेकिन हठयोग के कुछ ग्रंथों में योग के छह अंगों का वर्णन मिलता है । गोरखनाथ द्वारा लिखित 'गोरक्ष शतक' में भी षडंग योग की चर्चा की गई है ।

घेरण्ड संहिता में सबसे पहले शरीर शुद्धि की क्रियाओं की चर्चा की गई है जिन्हें षट्कर्म कहा जाता है । इनमें प्रमुख हैं – नेति– नाक की सफाई, धौति–पाचन तंत्र की सफाई, वस्ति–बड़ी आंत की सफाई, जिससे हमारे शारीरिक विकार दूर हो जाएं, नौलि – पेट, गुर्दे इत्यादि का व्यायाम, कपालभाति और त्राटक–अग्र मस्तिष्क की सफाई व मानसिक एकाग्रता की एक विधि है । इसके बाद आसनों की चर्चा की गयी है जिनसे शरीर की दृढ़ता और स्थिरता प्राप्त होती है । तीसरे आयाम में पच्चीस मुद्राओं की चर्चा मिलती है, चौथे आयाम में प्रत्याहार पांचवें आयाम में प्राणायाम के अभ्यास को जोड़ा है । छठे आयाम के अंतर्गत ध्यान की चर्चा मिलती है जोकि तीन प्रकार के हैं – स्थूल, सूक्ष्म और ज्योतिध्यान । सातवें आयाम में समाधि का वर्णन मिलता है ।

इस प्रक्रिया या समूह को उन्होंने एक दूसरा नाम भी दिया है, वह है– घटस्थ योग ।

इस प्रकार महर्षि घेरण्ड ने '**घटस्थ योग**' के बारे में बताया है कि घटस्थ योग शरीर पर आधारित योग है । घट का अर्थ होता है घड़ा । जब हम घड़े की कल्पना करते हैं, तब मिट्टी से बनी आकृति मन में उभरती है । हम उसकी बाह्य आकृति को देखते हैं, परन्तु हमें यह मालूम नहीं रहता कि इसके अंदर क्या भरा है? हो सकता है, घड़ा खाली हो या उसमें पानी भरा हो, हो सकता है उसमें अन्न रखा हो । घड़े के भीतर कोई भी चीज हो सकती है, लेकिन घट कहने से केवल बाह्य आकृति का ज्ञान मिलता है । शरीर को तो हम देखते हैं । उसे सुखी व संतुष्ट बनाने के लिए हम पुरुषार्थ या कर्म करते हैं । शरीर को ठंड लगती है तो कपड़े पहनते हैं । गरमी लगती है तो कपड़े उतारते हैं, पंखा चलाते हैं । शरीर विश्राम चाहता है तो सोते हैं । शरीर के इन सब बाह्य क्रिया कलापों को तो हम अपने जीवन में देखते हैं, अनुभव करते हैं, लेकिन शरीर के भीतर कौन–कौन से तत्व हैं यह कोई नहीं जानता ।

शरीर की रचना एक विचित्र संयोग से हुई है । उस संयोग को आप चाहे प्रकृति कहिए, ब्रह्मा कहिए या ईश्वर कहिए । जब हम शरीर पर आधारित योगाभ्यास करते हैं, तो हमारे मस्तिष्क पर

टिप्पणी

उसका सीधा प्रभाव पड़ता है, और मस्तिष्क की गतिविधियां शांत हो जाती है। शारीरिक योग का प्रभाव मन पर पड़ता है, उसके माध्यम से मानसिक चंचलता शांत हो जाती हैं शांति की प्राप्ति के पश्चात् हम अपने कर्मों और संस्कारों को परिमार्जित कर सकते हैं।

अतः शरीर को निर्मित करने वाले स्थूल एवं सूक्ष्म तत्वों से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। जब स्थूल एवं सूक्ष्म तत्वों का परिचय हमें प्राप्त होता है, तब यह कहा जा सकता है कि घटस्थ योग की शुरुआत हो रही है।

(iii) श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीमद्भगवद्गीता विभिन्न योग पद्धतियों का सुविस्तृत ग्रन्थ है जिसमें से मुख्य योग परिभाषाओं का वर्णन निम्नवत है—

श्रीमद्भगवद्गीता कर्मयोग के बारे में स्पष्ट अभिमत प्रस्तुत करता है। कर्मयोग समत्व भाव, अनासक्त कर्म, ईश्वर अर्पित कर्म आदि अनेक भावों से युक्त है यथा श्रीमद्भगवद्गीता (2/48) मतानुसार

'योगस्थ कुरू कर्माणि संगंत्यक्तवा धनंजय।

सिद्धयसिद्धयो : समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

अर्थात् योग में स्थित होकर कर्म करो, हे धनन्जय उससे (कर्म से) आसक्ति त्यागकर कार्य सिद्धि या असिद्धि दोनों में समान भाव होकर कर्म करो यही समत्व भाव योग है।

इसी क्रम में अगले श्लोक 2/49 में भगवान ने कहा है कि 'इस बुद्धि योग के द्वारा किया काम तो बहुत ऊँचा है। अतः समत्व वाले बुद्धियोग की शरण लो क्योंकि काम को फल की इच्छा से करने वाले अत्यन्त दीन हैं। 'अतः कर्मों में कुशलता के लिए अच्छे और बुरे दोनों कर्मों से स्वयं को निवृत्त करना ही कर्मयोग कहा गया है।' श्लोक 2/50 में कहा गया है कि

'बुद्धियुक्तों जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्'

एक अन्य परिभाषा में श्लोक 6/23 में कहा गया है कि

'तं विद्याद्दुःख संयोग वियोग योग संज्ञितम्।

स निश्चयेन सोक्तष्यो योगो निर्विण्णचेतसा।।

अर्थात् जो दुःख रूप संसार के संयोग से रहित है वह विद्या (ज्ञान) ही योग है, उसको जानना चाहिए। इस योग को धैर्य और उत्साहपूर्वक निश्चय चित्त से करना चाहिए।

स्थितप्रज्ञ के निम्नलिखित लक्षणों का उल्लेख गीता के दूसरे अध्याय में मिलता है—

1. क्षमाशील
2. करुणानिधि

टिप्पणी

3. एक विचार दृष्टिवाला
4. कर्मयोगी
5. जीवन मुक्त
6. योगारुढ़
7. भगवत्भक्त
8. गुणातीत
9. ज्ञाननिष्ठ

(iv) हठयोग प्रदीपिका

हठयोग प्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम ने सहयोग परम्परा को आगे बढ़ाते हुए इसके चार अंगों का विस्तृत वर्णन किया हैः

आसन, प्राणायाम, मुद्रा, नादानुसंधान

हठयोग

आसन | प्राणायाम | मुद्रा | नादानुसंधान

इस प्रकार स्वात्माराम ने उपर्युक्त चार अंगों का निर्देश किया है। हठयोग का अभ्यास प्रायः राजयोग के लिए ही किया जाता है। हठयोग (प्रदीपिका 2/76)।

इसमें बाधक एवं साधक तत्वों का उल्लेख भी मिलता है। (हठयोग प्रदीपिका 1/15, 16)

प्रथम उपदेश

इसमें आसनों की संख्या 15 बतायी गई है। सिद्धासन और पद्मासन पर विशेष महत्व दिया गया है अंत में हठाभ्यासियों के लिए पथ्य व अपथ्य आहार का विस्तार से विवेचन किया गया है।

द्वितीय उपदेश

इसके प्रथम भाग 1—20 में प्राणायाम की उपयोगिता व विशेषता के साथ नाड़ी शोधन की आवश्यकता पर महत्व दिया गया है और 21—37 में षट्कर्म और अष्टकुम्भकों का विस्तृत वर्णन है।

तृतीय उपदेश

इसमें 10 मुद्राओं व कुण्डलिनी का वर्णन किया गया है।

चतुर्थ उपदेश

इसमें नाद, नादानुसंधान व समाधि की विस्तृत चर्चा की गई है।

टिप्पणी

(v) वशिष्ठ संहिता

वशिष्ठ संहिता में महर्षि वशिष्ठ जी ने 14 नाड़ियों का वर्णन किया है। इनमें तीन प्रमुख हैं– (1) इड़ा, (2) पिंगला (3) सुषुम्ना।

प्रमुख नाड़ियाँ

इड़ा | पिंगला | सुषुम्ना

इसके साथ ही यहां यम की चर्चा भी मिलती है। प्राणायाम को यहां दो प्रकार से समझाया गया है :

1. **सहित कुम्भक** 2. **केवल कुम्भक**

इसमें प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान के बारे में भी चर्चा मिलती है।

यूनिटगत प्रश्न 1.2

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   क) योग के चार पाद हैं ....,.........................., ...और .... ।

   ख) गोरखनाथ द्वारा लिखित 'गोरक्षशतक' में .... की चर्चा की गई है।

   ग) घेरण्ड संहिता .... आयाम में प्राणायाम की चर्चा की गई है।

   घ) स्थितप्रज्ञ का उल्लेख गीता के .... अध्याय में मिलता है।

   ड़) हठयोग प्रदीपिका में ....उपदेशों की चर्चा की गई है।

1.4 योग की प्रमुख परम्पराएँ

अब तक आप योग और पतंजलि योग दर्शन के चार पादों के विषय में जान चुके हैं। अब हम योग की प्रमुख परम्पराओं पर चर्चा करेंगे।

योग साधना का एक ही लक्ष्य है कि, मानव दिव्य जीवन जिये, और आध्यात्मिक शिखर की सीढ़ियाँ चढ़ता चला जाए, जिससे जीवन के वास्तविक आनंद की प्राप्ति की जा सके। योग साधना के रहस्य को समझने के लिए निम्न प्रमुख परम्पराएं हैं–

योग की प्रमुख परम्पराएं

हठयोग | अष्टांग योग | कर्म योग | भक्ति योग | ज्ञान योग

टिप्पणी

1. **हठ योग**

स्थूल शरीर को सीधे–सीधे प्रभावित करने वाले योग अभ्यासों का आविष्कार योगांगों के रूप में किया गया है, जिनके द्वारा साधक प्रथम अवस्था में स्थूल शरीर की क्रियाओं की साधना करता हुआ उस पर अधिकार प्राप्त कर लेता है और उस शक्ति के द्वारा शरीर प्राण व मन को वश में करता हुआ परमात्मा का साक्षात्कार करने में समर्थ होता है। इसी योग प्रणाली को हठयोग कहते हैं।

हठयोग प्रदीपिका में हठयोग के निम्न प्रमुख अंगों का वर्णन है–

1. आसन 2. प्राणायाम 3. मुद्रा 4. नादानुसंधान

महर्षि घेरण्ड ने हठयोग के सात साधन बताए हैं –

1. षट्कर्मों से शरीर शुद्धि
2. आसनों से दृढ़ता
3. मुद्राओं से स्थिरता
4. प्रत्याहार से धैर्य
5. प्राणायाम से शारीरिक स्फूर्ति (हल्कापन)
6. ध्यान से आत्म साक्षात्कार
7. समाधि से निर्लिप्तता तथा मुक्ति की प्राप्ति।

2. **अष्टांग योग**

मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए महर्षि पतंजलि ने योग के आठ अंगों का प्रतिपादन किया है जो अष्टांग योग के नाम से लोकप्रिय है। इन्हीं आठ अंगों को राजयोग भी कहा जाता है।

महर्षि पतंजलि ने निम्न आठ अंग बताये हैं :–

1. **यम (आत्म संयम)**
2. **नियम (आत्म शोधन)**
3. **आसन (शारीरिक मुद्राएं)**
4. **प्राणायाम (श्वास–प्रश्वास का नियमन)**
5. **प्रत्याहार (इंद्रियों को उनके विषय से रोकना अर्थात् अन्तर्मुख व आत्मोन्मुख करना)**
6. **धारणा (चित्त की एकाग्रता)**
7. **ध्यान (तल्लीनता)**
8. **समाधि (पूर्ण लक्ष्य मात्र में तन्मय हो जाना)**

टिप्पणी

अष्टांग योग के विषय पर हम आपके साथ अगली यूनिट में विस्तार से चर्चा करेंगे।

3. कर्म योग

मनुष्य का जीवन कर्म प्रधान जीवन है। कर्म के बिना जीवन शून्य अथवा निरर्थक कहा जाता है। श्रीमद्भगवतगीता में इस बात का बारम्बार उपदेश मिलता है कि हमें निरन्तर कर्म करते रहना चाहिए। कर्म स्वभाव से ही सत्–असत् से मिश्रित होता है। प्रत्येक कर्म अनिवार्य रूप से गुण–दोष से मिश्रित रहता है। परन्तु फिर भी शास्त्र हमें सतत सत् कर्म करते रहने का ही आदेश देते हैं।

अच्छे और बुरे दोनों कर्मों का अपना अलग–अलग फल होता है। अच्छे कर्मों का फल अच्छा होगा और बुरे कर्मों का फल बुरा। परन्तु अच्छे और बुरे दोनों ही आत्मा के लिए बंधन रूप हैं। श्रीमद्भगवतगीता के अनुसार यदि हम अपने कर्मों में आसक्त न हों तो हमारी आत्मा किसी प्रकार के बंधन में नहीं फंसती। इस प्रकार आसक्ति को त्याग कर हानि–लाभ तथा यश–अपयश में समान भाव रखते हुए, ईश्वर को समर्पित होकर किया जाने वाले कर्म ही 'कर्मयोग' कहलाते हैं। कामना रहित कर्त्तव्य, कर्म के लिए कर्मयोग के स्थान पर, लोक में निष्काम–कर्मयोग अधिक प्रचलित है। यह आत्म साक्षात्कार में विशेष सहायक माना गया है।

4. भक्ति योग

भक्ति योग का अभिप्राय यह है कि सभी रूपों, सभी नामों और सभी अवस्थाओं में अपने प्रभु का या अपने परम् ईष्ट का दर्शन करना। श्रद्धा और विश्वास भक्ति के दो प्रमुख तत्व हैं। ईश्वर में श्रद्धा, विश्वास होने के बाद ही उनका साक्षात्कार हो सकता है। ईश्वर से निष्काम भाव से ही प्रेम करने को 'विशुद्ध भक्ति' कहते हैं। मोह का अभाव हो जाने पर सांसारिक भोग अच्छे नहीं लगते, उस समय भगवान की स्मृति अधिक समय तक बनी रहती है जिससे भक्त ईश्वर की भक्ति में लीन रहता है। यही भक्ति योग की पराकाष्ठा है। योग की समस्त धाराओं में भक्ति योग श्रेष्ठतम है।

5. ज्ञान योग

मन, इन्द्रियों तथा शरीर से होने वाली समस्त क्रियाओं में कर्त्ता भाव के अभिमान से शून्य होकर, आत्मज्ञान से युक्त होकर सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मा में एक ही भाव से स्थित होने का नाम ज्ञान योग है। इसी को श्रीमद्भगवद् गीता में कर्म संन्यास योग भी कहते हैं। इस योग में योगी अपनी आत्मा का अवलोकन करते हुए परम् सन्तुष्ट रहता है।

ज्ञान योग तथा कर्मयोग साधन–शैली में भिन्न होते हुए भी परमात्मा की प्राप्ति में एक ही हैं। दोनों ही परम् कल्याण कारक हैं।

ज्ञान के प्रकाश में अज्ञान रूपी अहंकार नष्ट हो जाता है। अज्ञान से 'कामना– (इच्छा) और कामना से 'कर्म' उत्पन्न होते हैं। ज्ञान योग साधना के द्वारा अज्ञान के नष्ट हो जाने पर कर्म स्वतः समाप्त हो जाते हैं। संपूर्ण कर्मों की समाप्ति ज्ञान में ही होती है।

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्न 1.3

1. हठयोग के प्रमुख अंगों का नाम बताएँ।

2. कर्मयोग का सार क्या है?

3. ज्ञान योग के बारे में समझाइए।

4. योग की प्रमुख परम्पराओं के नाम बताएँ।

1.5 योग की उपयोगिता एवं महत्व

योग हम सभी के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। यह हमारे मन, तन और आत्म शक्ति का सर्वांगीण विकास करता है और एक अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करता है। आज योग के प्रति सभी आकर्षित हो रहे हैं। आइए जानें कि योग किस प्रकार हमारे लिए उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है :

1. शरीर में लचीलापन लाता है।
2. मांस पेशियों को सुदृद कर शरीर को मज़बूत बनाता है।
3. शरीर में रक्त संचार को सही करता है।

टिप्पणी

4. विषाक्त पदार्थों को निकालता है, और शक्ति में वृद्धि करता है।
5. रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है और रोगों से दूर रखता है।
6. मन को नियंत्रित कर, आत्मबोध में सुधार करता है और मन से नकारात्मक विचार को बाहर निकाल देता है।
7. मानसिक एकाग्रता में वृद्धि करता है।
8. भावनात्मक संतुलन के लिए उपयोगी है।
9. चारित्रिक एवं नैतिक निर्माण करता है, जिससे एक अच्छे समाज एवं राष्ट्र का निर्माण होता है।
10. मानव को सर्वोच्च ऊँचाई तक पहुंचाने का कार्य करता है, जिसे समाधि कहते हैं। यही योग का परम लक्ष्य है।

आपने क्या सीखा

इस यूनिट के अंतर्गत हमने सीखा कि –

- योग अनुशासन का विज्ञान है जो मानवता के विकास का सर्वोत्तम मार्ग है। साथ ही, योग परमात्मा से संबंध स्थापित करने की कला भी है। हमने योग की विभिन्न परिभाषाओं को जाना: ***योगश्चित्तवृत्ति निरोधः*** (पा.यो.द. 1/2)

  अर्थात् महर्षि पतन्जलि के अनुसार **'चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है।'**

- श्रीमद्भगवद्गीता विभिन्न योग पद्धतियों का सुविस्तृत ग्रन्थ है जिसमें से मुख्य योग परिभाषाओं का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

  यथा श्रीमद्भगवद्गीता (2/48) मतानुसार

  'योगस्थ कुरू कर्माणि संगंत्यक्तवा धनंजय।
  सिद्धयसिद्धयो : समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

  अर्थात् योग में स्थित होकर कर्म करो, हे धनन्जय उससे (कर्म से) आसक्ति त्यागकर कार्य सिद्धि या असिद्धि दोनों में समान भाव होकर कर्म करो यही समत्व भाव योग है।

- इसी क्रम में अगले श्लोक 2/49 में भगवान ने कहा है कि 'इस बुद्धि योग के द्वारा किया काम तो बहुत ऊँचा है। अतः समत्व वाले बुद्धियोग की शरण लो क्योंकि काम को फल की इच्छा से करने वाले अत्यन्त दीन हैं। 'अतः कर्मों में कुशलता के लिए अच्छे और बुरे दोनों कर्मों से स्वयं को निवृत्त करना ही कर्मयोग कहा गया है।' श्लोक 2/50 में कहा गया है कि

  'बुद्धियुक्तों जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
  तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्'

टिप्पणी

- एक अन्य परिभाषा में श्लोक 6/23 में कहा गया है कि

  'तं विद्याद्दुःख संयोग वियोग योग संज्ञितम्।
  स निश्चयेन सोक्तष्यो योगो निर्विष्णचेतसा।।

अर्थात् जो दुःख रूप संसार के संयोग से रहित है वह विद्या (ज्ञान) ही योग है, उसको जानना चाहिए। इस योग को धैर्य और उत्साहपूर्वक निश्चय चित्त से करना चाहिए।

हमने योग की सारगर्भित जानकारी प्राप्त की। साथ ही हमने योग की विभिन्न धाराओं के विषय में ज्ञान प्राप्त किया जिसमें स्पष्ट किया गया कि योग की पांच प्रमुख परम्पराएं हैं –

1. हठ योग 2. अष्टांग योग (राज योग) 3. कर्म योग 4. भक्ति योग 5. ज्ञान योग

यूनिटांत प्रश्न

1. योग क्या है? योग की किन्हीं तीन परिभाषाओं को देते हुए उनका आशय स्पष्ट कीजिए।
2. पातंजलि योगदर्शन के सभी सोपानों को विस्तार पूर्वक समझाइए।
3. घेरण्डसंहिता, हठप्रदीपिका एवं वशिष्ठ संहिता में बताए गए योग के अंगों को स्पष्ट कीजिए।
4. योग की प्रमुख परम्पराओं का उल्लेख कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

1.1

1. योग का अर्थ है – जोड़ना
2. कर्मों में कुशलता ही योग है।

1.2

क) (i) समाधिपाद (ii) साधनपाद (iii) विभूतिपाद (iv) कैवल्यपाद

ख) अष्टांग योग

ग) पाँचवें

घ) दूसरे

ङ) पाँच

टिप्पणी

1.3

1. आसन 2. प्राणायाम 3. मुद्रा 4. नादानुसंधान
2. आसक्ति को त्यागकर हानि—लाभ तथा यश—अपयश में समान भाव रखते हुए, ईश्वर को समर्पित होकर किया जाने वाला कर्म ही 'कर्मयोग' कहलाता है।
3. मन, इंद्रियों तथा शरीर से होने वाली समस्त क्रियाओं में कर्ताभाव के अभिमान से शून्य होकर सर्वव्यापी सच्चिदानंदघन परमात्मा में एक ही भाव से स्थित होने का नाम 'ज्ञान योग' है।
4. (1) हठयोग (2) अष्टांग योग (3) कर्मयोग (4) भक्ति योग (5) ज्ञान योग

टिप्पणी

2

योग अस्तित्व की अवधारणा

प्रिय शिक्षार्थियों, इस सृष्टि के आदि ग्रन्थ के रूप में ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद नामक चार वेदों का वर्णन आता है। इसमें ऋग्वेद संसार का सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ है जिसमें ज्ञानकाण्ड के लगभग दस हजार मंत्रों का संकलन है। सामवेद गायन का वेद है जिसमें उपासना हेतु गायन मंत्रों का वर्णन किया गया है। यजुर्वेद में कर्मकाण्ड और यज्ञ के मंत्रों का वर्णन है। इसी प्रकार अथर्ववेद में धर्म, आरोग्य और यज्ञ के मंत्रों का वर्णन किया गया है। वेद का अर्थ ज्ञान होता है। संसार की समस्त विद्याओं का मूल वेदों में निहित है। योग विद्या का वर्णन वेद के मंत्रों में किया गया है। इन चारों वेदों से ऋक्, साम, यजु और अथर्व नामक संहिताओं की रचना हुई। इस वैदिक ज्ञान से ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक और उपनिषदों का प्रादुर्भाव हुआ। उपनिषद् काल के उपरान्त रामायण और महाभारत का महाकाव्य काल आता है। इसके उपरान्त दर्शन काल का वर्णन आता है, जिसमें न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त नामक षड्दर्शनों के साथ–साथ बौद्ध, जैन और चार्वाक दर्शन का समावेश होता है। दर्शन काल के उपरान्त मध्यकाल का वर्णन आता है, जिसे भक्ति काल भी कहा जाता है। इस काल में हठयोग के आचार्यों के द्वारा हठ प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता और शिव संहिता आदि ग्रन्थों की रचना हुई। मध्यकाल के उपरान्त, आधुनिक काल का वर्णन आता है। आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द सरस्वती, स्वामी शिवानन्द, महर्षि अरविन्द आदि योगियों के द्वारा योग परम्परा को आगे बढ़ाया गया। इसके साथ–साथ वर्तमान काल में भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री जी के आवाहन पर संयुक्त राष्ट्र महासभा के द्वारा 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में योग विद्या का प्रचार

टिप्पणी

प्रसार बहुत व्यापक स्तर पर हो रहा है। भारत वर्ष के अनेक विश्वविद्यालयों में स्नातक और परास्नातक स्तर पर योग पाठ्यक्रम संचालित हो रहे हैं। इन पाठ्यक्रमों के द्वारा शिक्षा ग्रहण कर विद्यार्थी सम्पूर्ण विश्व में योग विद्या का प्रचार प्रसार कर रहे हैं।

इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों से अवगत होने के उपरान्त, अब आपके मन में योग के अस्तित्व को जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। इसके साथ–साथ आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही है कि उपरोक्त ग्रन्थों में योग का वर्णन किस रूप में किया गया है। अतः अब क्रमशः वैदिक काल, उपनिषद् काल, काव्य काल, दर्शन काल, मध्य काल और आधुनिक काल में योग के अस्तित्व पर सविस्तार विचार करते हैं–

उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन के बाद आप –

- वैदिक काल में योग के स्वरूप की विवेचना करने में सक्षम हो सकेंगे;
- उपनिषद् काल में योग के स्वरूप की व्याख्या कर सकेंगे;
- दर्शन काल में योग के स्वरूप का उल्लेख कर सकेंगे;
- आधुनिक काल में योग के अस्तित्व की व्याख्या करने में सक्षम हो पायेगें;
- योग में वर्णित ईश्वर के स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे।

2.1 वैदिक काल (वेदों) में योग का अस्तित्व

शिक्षार्थियों, योग विद्या सृष्टि के आरम्भ से ही विद्यमान रही है। योग विद्या के आदि प्रवर्तक, हिरण्यगर्भ को स्वीकार किया गया गया है। हिरण्यगर्भ से तात्पर्य प्रकाश पुंज अर्थात् परमात्मा से लिया जाता है। चूंकि संसार की समस्त विद्याओं का आदि मूल परमात्मा है अतः योगविद्या का आरम्भ भी ईश्वर से ही हुआ है। यहां पर ईश्वर को हिरण्यगर्भ की संज्ञा दी गयी है। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए यजुर्वेद के दसवें मण्डल में कहा गया है–

ओउम् हिरण्यगर्भ समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्।।

(यजुर्वेद)

जो स्वयं प्रकाशस्वरूप है और जिसने, प्रकाश करने वाले सूर्य, चन्द्रमा आदि को उत्पन्न करके धारण किये हैं। जो उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतन स्वरूप था, जो सब जगत के उत्पन्न होने से पूर्व वर्तमान था, वह इस भूमि और सूर्य आदि को धारण कर रहा है, हम लोग उस सुखस्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें।

इसी प्रकार ऋग्वेद में ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहा गया है—

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्र मूतये।।

(ऋग्वेद)

अर्थात् हम साधक लोग योग मार्ग में उपस्थित होने वाले विघ्नों में और सभी कठिनाईयों में परम ऐश्वर्यवान इन्द्र का आवाहन करते हैं। इस प्रकार यहां पर योग मार्ग की बाधाओं को दूर करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गयी है।

इसी प्रकार अथर्ववेद में मानव शरीर को अयोध्यापुरी की संज्ञा देते हुए कहा गया है—

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।

(अथर्ववेद)

अर्थात् इस मानव शरीर रूपी अयोध्यापुरी में आठ चक्र और नौ द्वार हैं। इसमें आत्मा निवास करता है। इस शरीर के माध्यम से योग विद्या द्वारा नौ द्वारों को बन्द कर अष्टचक्रों का ज्ञान प्राप्त करते हुए आत्मा को जानना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त मंत्रों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वेदों में योग विद्या को विस्तारपूर्वक वर्णित किया गया है। वेदों के सार रुप में उपनिषद् साहित्य का वर्णन आता है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि उपनिषद् साहित्य में योग विद्या का वर्णन किस रूप में किया गया है अतः अब उपनिषद् में योग के अस्तित्व पर पर विचार करते हैं—

2.2 उपनिषद काल (उपनिषद) में योग का अस्तित्व

प्रिय शिक्षार्थियों, वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों और आरण्यकों के पश्चात् उपनिषदों का नाम आता है। उपनिषद साहित्य पर वेदों की विचारधारा का पूर्णरूपेण प्रभाव परिलक्षित होता है। उपनिषद साहित्य को ज्ञान काण्ड की संज्ञा दी गई है। इन्हें ''वेदान्त'' भी कहा जाता है। उपनिषद, गीता तथा ब्रह्मसूत्रों को मिलाकर ''प्रस्थानत्रायी'' कहा जाता है। ये तीनों शास्त्र मोक्ष प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद कहता है कि जिस प्रकार चारों ओर से रखी हुई गीली लकड़ी में अग्नि से पृथक् धुँआ निकलता है, ठीक उसी प्रकार इस महान् सत्ता (आत्मा) से श्वास के रूप में ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, इतिहास तथा उपनिषद आदि प्रादुर्भूत हुए हैं। वेदों के अनन्तर ब्राह्मण ग्रंथों और आरण्यकों का नाम आता है। इनमें दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन पाया जाता है। इसी चिन्तन का परमोत्कर्ष आरण्यक ग्रंथों के उपनिषद खण्ड में प्राप्त होता है।

उप का अर्थ = समीप, नि का अर्थ = श्रद्धा और सद् का अर्थ = बैठना होता है। इस प्रकार उपनिषद शब्द का सामान्य अर्थ होता है श्रद्धापूर्वक समीप बैठना। अर्थात् जिसमें गुरु और

टिप्पणी

शिष्य श्रद्धापूर्वक समीप बैठकर ब्रह्म विद्या का चिन्तन करते हैं, वह विद्या उपनिषद कहलाती है। उपनिषद शब्द की उत्पत्ति उप और नि: उपसर्ग में सद् धातु से होती है। सद् धातु तीन अर्थों में प्रयुक्त होती है— विवरण, गति और अवसादन। अर्थात् उपनिषद गुरु और शिष्य के मध्य ब्रह्म विद्या का संवाद है।

उपनिषदों में ब्रह्म चिन्तन के साथ—साथ आत्मा, परमात्मा का चिन्तन और योग विद्या पर सविस्तार चर्चा की गयी है। सर्वप्रथम योग के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट करते हुए योगशिखोपनिषद में कहा गया है—

योऽपानप्राणयोरैक्यं स्वरजोरेतसोस्तथा,
सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः।
एवं तु द्वन्द्व जालस्य संयोगो योग उच्यते।।

(योगशिखोपनिषद)

अर्थात् प्राण और अपान वायु की एकता होना, स्वरजरूपी कुण्डलिनी शक्ति का स्वरेतरुपी आत्मतत्व के साथ मिलन होना, सूर्य स्वर और चन्द्र स्वर का मिलन होना तथा जीवात्मा और परमात्मा के संयोग की अवस्था ही योग कहलाती है।

इसी प्रकार कठोपनिषद् में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है—

यदा पञ्चावतिष्ठति ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमा गतिम्।।
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो ही प्रभवाप्ययौ।।

(कठोपनिषद)

अर्थात् जब पांचों ज्ञानेन्द्रियां मन के साथ स्थिर हो जाती हैं, अन्तर्मुखी हो जाती हैं। ये स्थिर इन्द्रियां और मन बुद्धि के साथ मिल जाते हैं, जिससे स्थिर होकर बुद्धि भी किसी प्रकार की क्रिया नहीं करती है, यह अवस्था परमगति कहलाती है। इन्द्रियों, मन और बुद्धि की इस स्थिर धारणा को ही योग कहा जाता है।

इसी प्रकार मैत्रायण्युपनिषद में कहा गया है—

एकत्वं प्राणमनसोरिन्द्रियाणां तथैव च।
सर्वभाव परित्यागो योग इत्यभिधीयते।।

(मैत्रायण्युपनिषद)

अर्थात् प्राण, मन व इन्द्रियों का एक हो जाना, एकाग्रावस्था को प्राप्त कर लेना, बाह्य विषयों से विमुख होकर इन्द्रियों का मन में और मन का आत्मा में लग जाना, प्राण का निश्चल हो जाना योग है।

टिप्पणी

योगाभ्यास हेतु उचित स्थान का वर्णन करते हुए श्वेताश्वतरोपनिषद में स्पष्ट किया गया है—

समे शुचौ शर्करा वह्निबालुका विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुः पीड़ने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद)

अर्थात् योगाभ्यास के लिए ऐसा स्थान हो जो समतल हो, शुद्ध हो, कंकड़—पत्थर, आग, बालू, जल और शब्द (कोलाहल) से रहित हो। साथ ही योगाभ्यास करने वाल स्थान पर पीने के लिए जल की व्यवस्था हो। इसके साथ—साथ वह स्थान मन के अनुकूल अर्थात् मन को अच्छा लगने वाला हो, वहां पर आंखों की पीड़ा देने वाली एवं चित्त को चंचल बनाने वाली वस्तु नहीं होनी चाहिए। ऐसे एकांत स्थान पर जहां तेज वायु के झोंके नहीं आते हों, ऐसे स्थान पर योगाभ्यास करने से साधक को शीघ्र सफलता प्राप्त होती है।

छान्दोग्योपनिषद में प्राण के महत्त्व को बताते हुए कहा है—

"सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति।"

अर्थात् **सभी भूत प्राण से ही उत्पन्न होते हैं तथा प्राणों में ही लीन होते हैं।**

प्रिय शिक्षार्थियों, श्वेताश्वतरोपनिषद् में योग के महत्व एवं योग सिद्धि पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है—

न तस्य रोगों, न जरा, न मृत्युः, प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद)

अर्थात् योग की अग्नि में तपे हुए शरीर में कोई रोग नहीं होता है, ना ही बुढ़ापा आता है और ना ही मृत्यु आती है।

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उपनिषद् साहित्य में योग विद्या का सविस्तार वर्णन किया गया है।

यूनिटगत प्रश्न 2.1

सत्य/असत्य बताइये—

1. ऋग्वेद संसार का सबसे प्राचीन ग्रंथ है। ( )
2. हिरण्यगर्भ से तात्पर्य प्रकाश पुंज अर्थात् परमात्मा से लिया जाता है। ( )
3. उपनिषदों में योग की चर्चा नहीं मिलती।
4. छन्दोग्योपनिषद के अनुसार, सभी भूत प्राण से ही उत्पन्न होते हैं तथा प्राणों में ही लीन हो जाती हैं। ( )

टिप्पणी

2.3 दर्शन काल (दर्शन) में योग का अस्तित्व

दर्शन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की दृश् धातु से होती है। दर्शन का सामान्य अर्थ होता है–देखना। इस संसार में सर्वत्र दुःखों को देखकर दुःखों से छूटने और मुक्ति को प्राप्त करने के अर्थ में दर्शन साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ।

''दृश्यते हि अनेन इति दर्शनम्''।

अर्थात् सत् और असत् पदार्थों का ज्ञान ही दर्शन कहलाता है। दर्शन को अंग्रेजी भाषा में फिलॉस्फी कहा जाता है। फिलॉस का अर्थ प्रेम और सोफिया का अर्थ प्रज्ञा अथवा बुद्धि या ज्ञान से होता है। इस प्रकार अंग्रेजी भाषा में दर्शन का अर्थ प्रेम के ज्ञान के रूप में लिया गया है।

प्रिय शिक्षार्थियों, आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन इसकी दो प्रमुख शाखाएं हैं। आस्तिक दर्शन में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त नामक छह दर्शनों का वर्णन आता है इन छह दर्शनों को षडदर्शन की संज्ञा दी जाती है जबकि नास्तिक दर्शन के अन्तर्गत बौद्ध, जैन और चार्वाक नामक तीन दर्शनों का उल्लेख आता है। इन सभी दर्शनों में योग विद्या का स्पष्ट वर्णन किया गया है। इनमें से योग दर्शन विशुद्ध रुप से योग विद्या से सम्बन्धित दर्शन है जिसमें महर्षि पतंजलि के द्वारा अष्टांग योग की साधना से चित्त की वृत्तियों का स्थिर करने का उपदेश किया गया है। इसके साथ–साथ सांख्य दर्शन में योग विद्या को इस प्रकार वर्णित किया गया है–

2.3.1 सांख्य दर्शन में योग का अस्तित्व

सांख्य दर्शन महर्षि कपिल के द्वारा रचित दर्शन है। सांख्य दर्शन से तात्पर्य है– संख्याओं का ज्ञान अथवा संख्याओं का विश्लेषण। सांख्य दर्शन पुरूष और प्रकृति नामक दो तत्वों को अनादि और नित्य मानता है। इस प्रकार सांख्य दर्शन द्वैतवाद की मान्यता रखता है। सांख्य शास्त्र के अनुसार पुरूष अर्थात् आत्मा चेतन, अविकारी, ज्ञानस्वरूप और संख्या में अनेक है, जबकि इसके विपरीत प्रकृति जड़, विकारी और संख्या में एक है। पुरूष और प्रकृति के अतिरिक्त सांख्य प्रकृति के 23 विकारों का वर्णन भी करता है। इस प्रकार सांख्य शास्त्र में कुल पच्चीस तत्वों का वर्णन किया गया है। परन्तु सामान्य अवस्था में पुरूष को इन तत्वों का ज्ञान नहीं होता है और वह इन तत्वों के साथ जुड़कर दुःखों और कष्टों से घिरा हुआ रहता है। पुरूष को इन तत्वों का ज्ञान होने पर, वह अपने शुद्ध चेतन स्वरूप को जानकर इन तत्वों से स्वयं को पृथक कर, मोक्ष मार्ग पर अग्रसर हो जाता है।

शिक्षार्थियों, सांख्य दर्शन प्रकृति की अव्यक्त और व्यक्त रूप में, दो अवस्थाओं को मानता है। प्रकृति की अव्यक्त अवस्था को मूल प्रकृति अथवा प्रलय अवस्था कहा गया है जबकि व्यक्त अवस्था को सांख्य शास्त्र में सृष्टि कहा गया है। इसके साथ–साथ सांख्य शास्त्र में सृष्टि

प्रक्रिया को सविस्तार समझाया गया है। सांख्य दर्शन में महर्षि कपिल प्रकृति को त्रिगुणात्मक स्वीकार करते हैं। अर्थात् सत्व, रज और तम नामक तीन गुण सृष्टि में विद्यमान रहते हैं। इन तीन गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है जबकि इन तीन गुणों की विकृत अवस्था ही विकृति अथवा प्रलय अवस्था है।

प्रलयावस्था के उपरान्त, सर्वप्रथम प्रकृति और पुरूष का संयोग होता है। इस अवस्था में सत्वगुण के प्रभाव से महतत्व अर्थात् बुद्धि उत्पन्न होती है। तत्पश्चात् रजोगुण के प्रभाव से अहंकार की उत्पत्ति होती है। अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच तन्मात्राएं और मन की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार अहंकार से सोलह तत्व उत्पन्न होते हैं। आगे चलकर पंच तन्मात्राओं से पांच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। शब्द तन्मात्रा से आकाश तत्व, स्पर्श तन्मात्रा से वायु तत्व, रुप से अग्नि तत्व, रस से जल तत्व और गन्ध से पृथ्वी तत्व की उत्पत्ति होती है। इन पंच महाभूतों से सम्पूर्ण दृश्य जगत की उत्पत्ति होती है।

प्रकृति और पुरूष
↓
महतत्व (बुद्धि)
↓
अहंकार
↓
पंच ज्ञानेन्द्रियां → पंच कर्मेनिद्रयां
मन
पंच तन्मात्राएं → पंचमहाभूत

सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

सांख्य दर्शन में अभ्यास और वैराग्य से, ज्ञान के उदय का उपदेश किया गया है। सांख्यकार महर्षि कपिल मुनि के अनुसार जब तक विषयों के प्रति राग बना रहता है तब तक अज्ञान की अवस्था बनी रहती है, किन्तु विषयों के प्रति वैराग्य उत्पन्न होने पर ज्ञान का भी उदय हो जाता है। ज्ञान से ही मनुष्य मुक्ति के पथ पर अग्रसर होता है।

इस प्रकार सांख्य दर्शन में, महर्षि कपिल मुनि द्वारा, सृष्टि प्रक्रिया को सविस्तार समझाया गया है और इसके साथ–साथ सत्कार्यवाद के सिद्धान्त को वर्णित किया गया गया है। कपिल मुनि अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा ज्ञान प्राप्ति और ज्ञान प्राप्ति से मुक्ति अर्थात् कैवल्य का उपदेश करते हैं। अब योग दर्शन में वर्णित योग के स्वरूप पर विचार करते हैं–

टिप्पणी

2.3.2 योग दर्शन में योग का अस्तित्व

शिक्षार्थियों, योग दर्शन महर्षि पतंजलि के द्वारा रचित दर्शन है। योग दर्शन में विशुद्ध रूप से, योग विद्या का वर्णन, महर्षि पतंजलि के द्वारा किया गया है। महर्षि पतंजलि ने 195 योग सूत्रों के माध्यम से योग विद्या का वर्णन किया है। योग सूत्रों में चतुर्व्यूहवाद का वर्णन किया गया है। चतुर्व्यूहवाद के अन्तर्गत हेय, हेयहेतु, हान और हानोपाय का वर्णन किया गया है।

योग दर्शनकार महर्षि पतंजलि, निम्न कोटि के साधकों के लिए अष्टांग योग की साधना, मध्यम कोटि के साधकों के लिए क्रियायोग और उच्च कोटि के साधकों के लिए अभ्यास और वैराग्य के द्वारा समाधि की अवस्था को प्राप्त करने का उपदेश करते हैं। अष्टांग योग का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टाङ्गानि।।

(पातंजल योग सूत्र)

अर्थात यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, ये योग के आठ अंग हैं।

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।।

(पातंजल योग सूत्र)

अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर की शरणागति यह तीनों क्रियायोग है।

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।।

(पातंजल योग सूत्र)

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य से चित्तवृत्तियों का निरोध होता है और चित्तवृत्तियों के निरोध की अवस्था ही योग है।

इस प्रकार योग दर्शन में निम्न, मध्यम और उच्च कोटि के साधकों के लिए क्रमशः अष्टांग योग, क्रियायोग और अभ्यास—वैराग्य का उपदेश महर्षि पतंजलि के द्वारा किया गया है।

2.3.3 वेदान्त दर्शन में योग का अस्तित्व

वेदान्त दर्शन में बादरायण मुनि के द्वारा रचित ब्रह्म सूत्रों को लिया गया है। इस दर्शन के प्रर्वतक आदि शंकराचार्य हैं। वेदान्त दर्शन में ज्ञानयोग साधना बहिरंग और अन्तरंग साधनों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। ज्ञानयोग साधना के चार बहिरंग साधन होते हैं— विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व। नित्य अर्थात् सदैव रहने वाला और अनित्य अर्थात् नष्ट होने वाले पदार्थों का विवेचन करने वाली निश्चयात्मक बुद्धि का होना, विवेक कहलाता है।

वैराग्य का अर्थ सांसारिक सुखों और विषय भोगों के प्रति अनासक्ति के भाव रखने से होता है। षट्सम्पत्ति के अन्तर्गत निम्न छह साधनों का उल्लेख वेदान्त दर्शन में किया गया है—

क) **शम—** शम का अर्थ होता है— शान्त करना। इन्द्रियां सदैव विषयों की ओर दौड़ती रहती हैं किन्तु इन्द्रियों को विषयों की ओर जाने से रोकना, शम कहलाता है।

ख) **दम—** दम का अर्थ होता है— दमन करना। इन्द्रियों को वश में करते हुए अन्तर्मुखी बनाने का अभ्यास दम कहलाता है।

ग) **उपरति—** सांसारिक विषय भोगों के प्रति वैराग्य के भावों को दृढ़ बनाना, उपरति कहलाता है अर्थात् स्वयं को सांसारिक भोगों से ऊपर उठाना, उपरति कहलाता है।

घ) **तितिक्षा—** तितिक्षा को तपस्या के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। साधना में उत्पन्न होने वाले द्वन्द्वों को सहन करना, तितिक्षा कहलाता है।

ड) **श्रद्धा— योग साधक** श्रद्धा के अभाव में योग साधना के पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता है। शास्त्रों के प्रति और गुरुवाक्यों को विश्वासपूर्वक ग्रहण करना, श्रद्धा कहलाता है।

च) **समाधान—** ज्ञान योग साधना का महत्वपूर्ण अंग, जिसमें संशय का त्याग करते हुए चित्त को निरन्तर ब्रह्म में स्थापित किया जाता है, समाधान कहलाता है।

उपरोक्त बहिरंग के साथ—साथ निम्न चार अन्तरंग साधनों का वर्णन भी वेदान्त दर्शन में किया गया है—

क) **श्रवण—** वेद और शास्त्रों का अध्ययन करना एवं गुरू के उपदेशों को सुनना, श्रवण कहलाता है।

ख) **मनन—** शास्त्रों का अध्ययन एवं गुरू उपदेशों से प्राप्त ज्ञान का चिन्तन करना, मनन कहलाता है।

ग) **निदिध्यासन—** निदिध्यासन से अभिप्रायः आत्मसात करने से होता है। वेदान्त दर्शन में मानसिक स्थिरता, एकाग्रता और ध्यान को निदिध्यासन के अर्थ में लिया गया है।

घ) **साक्षात्कार अथवा समाधि—** उपरोक्त योगांगों का अभ्यास करते हुए साधक, योग के शीर्ष सोपान ईश्वर साक्षात्कार अथवा समाधि की अवस्था को प्राप्त करता है।

इस प्रकार वेदान्त दर्शन में ज्ञानयोग साधना का सविस्तार वर्णन किया गया है। उपरोक्त अध्ययन से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि दर्शन साहित्य में योग के स्वरुप को भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से वर्णित किया गया है जिन्हें, सामान्य भाषा में योग के मार्ग कहा जाता है।

टिप्पणी

2.4 आधुनिक काल में योग का अस्तित्व

दर्शन साहित्य में योग के स्वरूप को जानने के बाद अब, आधुनिक काल में योग के स्वरूप पर विचार करते हैं–

शिक्षार्थियों, आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द सरस्वती, महर्षि अरविन्द, स्वामी कुवल्यानन्द और स्वामी शिवानन्द आदि महान योगियों ने योग परम्परा को आगे बढ़ाया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने योग साधन के द्वारा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का उपदेश दिया, जबकि स्वामी विवेकानन्द सरस्वती ने राजयोग और आधुनिक वेदान्त पर बल दिया। महर्षि अरविन्द, आधुनिक काल के प्रसिद्ध योगी हुए। महर्षि अरविन्द ने पाण्डिचेरी में अरविन्द आश्रम की स्थापना की। स्वामी कुवल्यानन्द के द्वारा योगाभ्यास के प्रभावों का मापन वैज्ञानिक स्तर पर करने के लिए, प्रथम यौगिक प्रयोगशाला की स्थापना महाराष्ट्र में लोनावाला नामक स्थान पर, सन 1924 में की गयी। स्वामी कुवल्यानन्द ने इस संस्थान को ''कैवल्यधाम'' का नाम दिया। इसी प्रकार मलाया में चिकित्सा कार्य करने के बाद वापिस भारत आए और स्वामी शिवानन्द जी ने ऋषिकेश में सन 1936 में ''दिव्य जीवन संघ'' की स्थापना की।

आधुनिक काल में महर्षि महेश योगी ने, योग विद्या का प्रचार प्रसार सम्पूर्ण विश्व में किया। महर्षि महेश योगी के द्वारा हिमालय पर, दो वर्षों तक मौन साधना करने के उपरान्त भावातीत ध्यान की शिक्षा दी गयी। महर्षि महेश योगी के द्वारा प्रतिपादित भावातीत ध्यान सम्पूर्ण विश्व में एक आन्दोलन के रुप में चला।

इस प्रकार वेदों और उपनिषदों से ज्ञान गंगा की अविरल धारा, विभिन्न योगियों और महापुरूषों के प्रयासों से सम्पूर्ण विश्व में बहती जा रही है। इसी क्रम में, भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के द्वारा 27 सितम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में सम्पूर्ण विश्व समुदाय के द्वारा मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का आवाहन किया गया। इस आवाहन पर संयुक्त राष्ट्र महासभा में 11 दिसम्बर 2014 को 177 देशों के सदस्यों के द्वारा 21 जून को ''**अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस**'' मनाने का प्रस्ताव पास किया गया। इस प्रकार 21 जून 2015 को सम्पूर्ण विश्व समुदाय के द्वारा मिलकर प्रथम **अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस** मनाया गया।

यूनिटगत प्रश्न 2.2

रिक्त स्थान भरें–

1. दर्शन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की .... धातु से हुई है।
2. दर्शन की दो प्रमुख शाखाएं हैं– आस्तिक दर्शन और ....

टिप्पणी

3. प्रकृति एवं पुरुष के संयोग पर सत्वगुण के प्रभाव से .... उत्पन्न होता है।
4. महर्षि पतंजलिकृत योग दर्शन में कुल .... सूत्र हैं।
5. शम का अर्थ है– .... ।
6. महर्षि अरविन्द .... काल के सुप्रसिद्ध योगी हुए।

2.5 योग में वर्णित ईश्वर का स्वरूप

शिक्षार्थियों, योग में वर्णित ईश्वर का स्वरूप कैसा है, आइए जानें–

ईश्वर की अवधारणा अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। ईश्वर को भगवान, परमात्मा, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गौड (GOD), शिव आदि नामों से जाना जाता है। वास्तव में ये सभी नाम ईश्वर के कार्य विशेष अथवा विशेषणों को अभिव्यक्त करते हैं। ईश्वर के शाब्दिक अर्थ पर विचार करें तो, ईश्वर शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की ईश् धातु से हुई है। इस ईश् धातु पर वच्य प्रत्यय लगाने से ईश्वर शब्द की उत्पत्ति होती है। **ईश् धातु का अर्थ होता है– नियंत्रित करना,** अर्थात् **इस ब्रह्माण्ड अथवा संसार को नियंत्रित करने वाली सत्ता अथवा शक्ति के अर्थ के रूप में ईश्वर का वर्णन किया गया है।** कुछ स्थानों पर ईश्वर के लिए ईश अर्थात नियंता शब्द प्रयुक्त किया जाता है। ईश्वर शब्द के अर्थ को जानने के उपरान्त, अब आपके मन में ईश्वर के पयार्यवाची शब्दों भगवान, परमात्मा, देवता आदि को जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। अतः अब हम इन शब्दों पर विचार करते हैं।

भगवान शब्द भग और वान से मिलकर बना है। भग का अर्थ ऐश्वर्य और वैभव से होता है और वान का अर्थ, धारण करने से लिया जाता है अर्थात् समस्त ऐश्वर्यों एवं वैभव से युक्त परम सत्ता को भगवान की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है। सामान्यतः लोक व्यवहार में भी समस्त ऐश्वर्यों एवं वैभवशाली विशेष आदरणीय पुरुषों के लिए भगवान शब्द का प्रयोग किया जाता है। सभी आत्माओं में विशेष परम आत्मा, परमात्मा कहलाती है। देने वाला देव कहलाता है, चूंकि ईश्वर संसार के सभी प्राणियों को अन्न, जल, धूप एवं वायु आदि प्रदान करता है, ईश्वर के इस गुण विशेष के कारण, ईश्वर को देव अथवा देवता की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश ईश्वर के तीन प्रमुख वाचक शब्द हैं, जो ईश्वर के तीन गुण विशेषों को अभिव्यक्त करते हैं। अत्यन्त विशाल सृष्टि की रचना अर्थात् उत्पत्ति करने के कारण, ईश्वर को ब्रह्मा की संज्ञा दी जाती है, सृष्टि का पालन अर्थात् सृष्टि को चलाने और नियमन करने के कारण ईश्वर की संज्ञा विष्णु (पालनहार) हो जाती है तथा सृष्टि का संहार अर्थात् विनाश करने के कारण ईश्वर को महेश की संज्ञा दी जाती है।

उत्पन्न करने वाले को अंग्रेजी भाषा में जेनेरेटर (Generator), चलाने अर्थात् नियमन करने वाले को आपरेटर (Operator) तथा मिटाने अर्थात् नष्ट करने वाले को डेस्ट्रायर (Destroyer) कहा जाता है, ईश्वर के इन्हीं तीन गुणों को प्रकट करने वाले, तीन शब्दों से गौड शब्द की उत्पत्ति होती है और अंग्रेज़ी भाषा में ईश्वर को गौड (GOD) शब्द से सम्बोधित किया जाता है।

टिप्पणी

ईश्वर के लिए शिव शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। शिव का अर्थ कल्याण करने से होता है अर्थात् सब जीवों का कल्याण करने के कारण, ईश्वर को शिव की संज्ञा दी जाती है। शिव का अर्थ अच्छे अथवा उत्तम से भी होता है, चूंकि ईश्वर मानव को अच्छी प्रेरणा, उत्तम संकल्प एवं सन्मार्ग की दिशा प्रदान करता है अतः ईश्वर को शिव के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

इस प्रकार भगवान, परमात्मा, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश व परमेश्वर आदि शब्द ईश्वर की अवधारणा को स्पष्ट करते हैं। इन शब्दों से एक ओर जहां ईश्वर के गुणों एवं महिमा का ज्ञान होता है तो वहीं दूसरी ओर ईश्वर की सर्वव्यापकता की अनूभूति भी होती है। यह तथ्य स्पष्ट होता है कि ईश्वर जिस गुण से युक्त होता है, उसी संज्ञा को प्राप्त करता है। अब योग दर्शन में वर्णित ईश्वर के स्वरूप पर विचार करते हैं–

शिक्षार्थियों, योगी साधक पुरुष का परम ध्येय, ईश्वर साक्षात्कार होता है। ईश्वर के स्वरूप को जानकर उसमें लीन होना (समाधि) योग साधना की उच्च अवस्था है। योग दर्शनकार महर्षि पतंजलि, योग दर्शन ग्रन्थ के प्रथम अध्याय (पहले पाद) में ईश्वर के स्वरूप की व्याख्या करते हुए कहते हैं

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।।

(पा0 यो0 सू0 1/24)

अर्थात् क्लेश, कर्म, कर्मफलों तथा इनके भोगों के संस्कारों से रहित जीवों से भिन्न स्वभाव वाला चेतन विशेष ईश्वर है।

उपरोक्त योगसूत्र में महर्षि पतंजलि पुरुष (मनुष्य) से भिन्न ईश्वर के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सामान्य मनुष्य का जीवन अविद्या, अस्मिता नामक पंच क्लेशों से घिरा रहता है, परन्तु वह पुरुष विशेष जो इन क्लेशों से मुक्त रहता है, ईश्वर कहलाता है। मनुष्य शुभ, अशुभ एवं मिश्रित कर्मों में लिप्त रहता है तथा इन कर्मों के परिणामस्वरूप प्राप्त सुख व दुख नामक फलों का भोग करता है। इसके साथ–साथ कर्मफलों का भोग करने के परिणामस्वरूप उत्पन्न संस्कारों अर्थात् वासनाओं से युक्त रहता है, किन्तु वह पुरुष विशेष जो जीवों के इन स्वभावों से परे अर्थात् भिन्न है, ईश्वर कहलाता है।

ईश्वर के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए महर्षि पतंजलि पुनः कहते हैं

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।।

(पा0 यो0 सू0 1/25)

अर्थात् ईश्वर में निरतिशय सर्वज्ञता का बीज है।

इस संसार में भिन्न भिन्न ज्ञान के स्तर के मनुष्य होते हैं, कोई अल्पज्ञानी होता है तो कोई सामान्य ज्ञान रखता है, जबकि कोई बहुत ज्ञानी होता है। मनुष्य के ज्ञानों के इस स्तर को सातिशय ज्ञान कहा जाता है, किन्तु इस सातिशय ज्ञान से परे, वह ईश्वर, निरतिशय ज्ञान

से युक्त है। सरल शब्दों में ईश्वर, **अनन्त ज्ञान के भण्डार से युक्त है। ईश्वर के ज्ञान का कोई आदि और अन्त नहीं है, वह सर्वज्ञ अर्थात सब कुछ जानने वाला है। सर्वज्ञता के ज्ञान रखने वाले ईश्वर के स्वरूप की व्याख्या करते हुए महर्षि पतंजलि आगे लिखते हैं** –

स एश पूर्वेशामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।।

(पा0 यो0 सू0 1/26)

अर्थात् वह ईश्वर भूत भविष्य और वर्तमान में उत्पन्न होने वाले सब गुरुओं का भी गुरु है।

पूर्वसूत्र में समझाया गया है कि, ईश्वर सर्वज्ञ है। इस सूत्र में महर्षि पतंजलि स्पष्ट करते हैं कि वह सर्वज्ञ ईश्वर सब विद्वान ज्ञानी जनों का गुरु है। इस संसार में अनेक प्रकार की विद्याओं एवं ज्ञानों को धारण करने वाले गुरु हैं किन्तु ईश्वर भूत, भविष्य और वर्तमान के सब गुरुओं का भी महान गुरु है। इस महान गुरु ईश्वर की कृपा से ही, संसार के सब गुरु ज्ञान प्राप्त करते हैं।

ईश्वर के स्वरुप को समझाने की श्रृंखला ईश्वर के गुणों एवं उसकी महिमा के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त अब यह प्रश्न उपस्थित होना स्वभाविक ही है कि, ईश्वर को हम किस नाम से जानें ? ईश्वर का सर्वोत्तम वाचक क्या हो सकता है ? हम ईश्वर को किस नाम से पुकारे? इस प्रश्न के उत्तर को स्पष्ट करते हुए महर्षि पतंजलि आगे योग सूत्र में लिखते हैं –

तस्य वाचक प्रणवः ।।

(पा0 यो0 सू0 1/27)

अर्थात् **उस ईश्वर का बोधक शब्द (नाम) प्रणव (ओ३म्) है।**

यद्यपि ईश्वर के विशेषणों (विशेषताओं) के आधार पर, ईश्वर को अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता है, किन्तु ईश्वर का सबसे प्रमुख वाचक अर्थात् नाम ओ३म् है। **ओ3म् शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की तीन धातुओं अकार, उकार एवं मकार से होती है।** अकार धातु उत्पन्न करने के अर्थ में, उकार धातु चलाने के अर्थ में एवं मकार धातु विनाश के अर्थ में प्रयुक्त होती है अर्थात् ओ३म् शब्द अपने अन्दर ईश्वर के तीन मूल गुणों, विशेषताओं एवं कार्यों को समाहित किए होता है। ईश्वर सृष्टि का उत्पत्तिकर्ता, वही पालनकर्ता है तथा वह ईश्वर ही सृष्टि का संहारकर्ता है इसीलिए ईश्वर का सर्वोत्तम वाचक ओ३म् है। मनुष्यों को ईश्वर का चिन्तन मनन करते हुए उसकी स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना में लीन रहना चाहिए, इस विषय पर प्रकाश डालते हुए महर्षि पतंजलि लिखते हैं–

तज्जपस्तदर्थभावनम् ।।

(पा0 यो0 सू0 1/28)

अर्थात् उस ईश्वर के वाचक ओ३म् शब्द का जप और ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव का चिन्तन करना चाहिए।

मनुष्य जिस विषय का चिन्तन एवं मनन करता है, वह उसी के गुणों को धारण करता हुआ उस जैसा ही बन जाता है। योग साधक का ध्येय, ईश्वर होता है। वह ईश्वर का मनन चिन्तन उसके प्रमुख वाचक ओ३म् से करता हुआ उसके गुणों को धारण करता है तथा उसके समान ही व्यवहार करता है।

आधुनिक भौतिकवादी जीवन में मनुष्य केवल, भौतिक पदार्थों एवं विषयों का ही चिन्तन मनन करता है तथा इसके परिणामस्वरूप वह मानसिक तनाव एवं अशान्ति से ग्रस्त हो जाता है जबकि महर्षि पतंजलि ईश्वर के वाचक ओ३म् का जप एवं चिन्तन करने का उपदेश करते हैं जिससे मनुष्य अपने स्वरूप को ईश्वर के साथ जोड़ लेता है तथा ईश्वर के साथ जुड़कर वह परम शान्ति एवं आनन्द की अनुभूति करता है। इसके साथ–साथ ईश्वर का जप व चिन्तन करने से ईश्वर के गुणों का समावेश उस साधक पुरुष के चरित्र में होने लगता है। इसके साथ–साथ ईश्वर मनन चिन्तन के प्रभावों को स्पष्ट करते हुए महर्षि पतंजलि लिखते हैं

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।।

(पा० यो० सू० 1/29)

अर्थात् उस ईश्वर प्रणिधान से परमात्मा का साक्षात्कार, जीवात्मा का साक्षात्कार और विघ्नों का अभाव होता है।

ईश्वर का मनन चिन्तन एवं ईश्वर के प्रति समर्पण भाव अर्थात् ईश्वर प्रणिधान का पालन करने से जीवात्मा, परमात्मा के समीप पहुंचकर, परमात्मा का साक्षात्कार करती है। परमात्मा का साक्षात्कार होने पर जीवात्मा को आत्मसाक्षात्कार की अनुभूति होती है एवं आत्मसाक्षात्कार होने पर, जीवात्मा के विघ्नों का अभाव अर्थात् विनाश होता है।

इस प्रकार योग दर्शनकार महर्षि पतंजलि ईश्वर के स्वरूप को सविस्तार समझाते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 2.3

1. ईश्वर शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की किस धातु से हुई है?

 ....

2. भगवान शब्द का अर्थ बताइए।

 ....

 ....

3. सत्य/असत्य बताइए–

   क. महर्षि पतंजलि के अनुसार ईश्वर, भूत, भविष्य और वर्तमान में उत्पन्न होने वाले सब गुरुओं का भी गुरु है। ( )

   ख. ईश्वर का बोधक शब्द ओ३म् है। ( )

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में हमने सीखा कि–

- योग का अस्तित्व आदिकाल से ही है।
- संसार के सबसे प्राचीन ग्रंथों–वेदों, उपनिषदों, दर्शनों आदि में योग का उल्लेख मिलता है, जो योग के अस्तित्व से परिचित कराता है।
- योग विद्या के आदि प्रवर्तक हिरण्यगर्भ अर्थात् परमात्मा को स्वीकार किया गया है।
- वैदिक काल में योग विद्या को वेदों के अंतर्गत निहित किया गया है।
- उपनिषद का सामान्य अर्थ– श्रद्धापूर्वक समीप बैठने से है। अर्थात् गुरू और शिष्य श्रद्धा पूर्वक समीप बैठकर विद्या का चिन्तन करते हैं।
- उपनिषदों में ब्रह्म् चिन्तन के साथ–साथ, आत्मा–परमात्मा का चिन्तन और योग विद्या पर सविस्तार चर्चा की गई है।
- दर्शन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'दृश्' धातु से हुई है, जिसका सामान्य अर्थ है– देखना।
- दर्शन की दो प्रमुख शाखाएं हैं– आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन।
- आस्तिक दर्शनों में छः दर्शनों का उल्लेख है, और नास्तिक दर्शन में तीन।
- सांख्य दर्शन महर्षि कपिल के द्वारा रचित दर्शन है। सांख्य दर्शन से तात्पर्य है– संख्याओं का ज्ञान अथवा संख्याओं का विश्लेषण। सांख्य दर्शन पुरुष और प्रकृति नामक दो तत्वों को अनादि और नित्य मानता है। इस प्रकार सांख्य दर्शन द्वैतवाद की मान्यता रखता है।
- योग दर्शन महर्षि पतंजलि के द्वारा रचित दर्शन है। योग दर्शन में विशुद्ध रूप से, योग विद्या का वर्णन, महर्षि पतंजलि के द्वारा किया गया है। महर्षि पतंजलि ने 195 योग सूत्रों के माध्यम से योग विद्या का वर्णन किया है।

टिप्पणी

- योग दर्शनकार महर्षि पतंजलि, निम्न कोटि के साधकों के लिए अष्टांग योग की साधना, मध्यम कोटि के साधकों के लिए क्रियायोग और उच्च कोटि के साधकों के लिए अभ्यास और वैराग्य के द्वारा समाधि की अवस्था को प्राप्त करने का उपदेश करते हैं।

- वेदान्त दर्शन में बादरायण मुनि के द्वारा रचित ब्रह्म सूत्रों को लिया गया है। इस दर्शन के प्रवर्तक आदि शंकराचार्य हैं। वेदान्त दर्शन में ज्ञानयोग साधना बहिरंग और अन्तरंग साधनों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। ज्ञानयोग साधना के चार बहिरंग साधन होते हैं– विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व।

- आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द सरस्वती, महर्षि अरविन्द, स्वामी कुवल्यानन्द और स्वामी शिवानन्द आदि महान योगियों ने योग परम्परा को आगे बढ़ाया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने योग साधन के द्वारा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का उपदेश दिया गया, जबकि स्वामी विवेकानन्द सरस्वती ने राजयोग और आधुनिक वेदान्त पर बल दिया।

- महर्षि अरविन्द, आधुनिक काल के प्रसिद्ध योगी हुए। महर्षि अरविन्द ने पाण्डिचेरी में अरविन्द आश्रम की स्थापना की।

- स्वामी कुवल्यानन्द के द्वारा योगाभ्यास के प्रभावों का मापन वैज्ञानिक स्तर पर करने के लिए, प्रथम यौगिक प्रयोगशाला की स्थापना महाराष्ट्र में लोनावाला नामक स्थान पर, सन् 1924 में की गयी। स्वामी कुवल्यानन्द ने इस संस्थान को ''कैवल्यधाम'' का नाम दिया।

- भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के द्वारा 27 सितम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में सम्पूर्ण विश्व समुदाय के द्वारा मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का आवाहन किया गया। इस आवाहन पर संयुक्त राष्ट्र महासभा में 11 दिसम्बर 2014 को 177 देशों के सदस्यों के द्वारा 21 जून को ''**अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस**'' मनाने का प्रस्ताव पास किया गया। इस प्रकार 21 जून 2015 को सम्पूर्ण विश्व समुदाय के द्वारा मिलकर प्रथम **अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस** मनाया गया।

- ईश्वर की अवधारणा अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। ईश्वर को भगवान, परमात्मा, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गौड (GOD), शिव आदि नामों से जाना जाता है। वास्तव में ये सभी नाम ईश्वर के कार्य विशेष अथवा विशेषणों को अभिव्यक्त करते हैं।

- ब्रह्मा, विष्णु और महेश ईश्वर के तीन प्रमुख वाचक शब्द हैं, जो ईश्वर के तीन गुण विशेषों को अभिव्यक्त करते हैं। अत्यन्त विशाल सृष्टि की रचना अर्थात् उत्पत्ति करने के कारण, ईश्वर को ब्रह्मा की संज्ञा दी जाती है, सृष्टि का पालन अर्थात् सृष्टि को चलाने और

टिप्पणी

नियमन करने के कारण ईश्वर की संज्ञा विष्णु (पालनहार) हो जाती है तथा सृष्टि का संहार अर्थात् विनाश करने के कारण ईश्वर को महेश की संज्ञा दी जाती है।

- योगी साधक पुरुष का परम ध्येय, ईश्वर साक्षात्कार होता है। ईश्वर के स्वरूप को जानकर उसमें लीन होना (समाधि) योग साधना की उच्च अवस्था है।
- योगसूत्र में महर्षि पतंजलि पुरुष (मनुष्य) से भिन्न ईश्वर के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सामान्य मनुष्य का जीवन अविद्या, अस्मिता नामक पंच क्लेशों से घिरा रहता है, परन्तु वह पुरुष विशेष जो इन क्लेशों से मुक्त रहता है, ईश्वर कहलाता है।
- ईश्वर का मनन चिन्तन एवं ईश्वर के प्रति समर्पण भाव अर्थात् ईश्वर प्रणिधान का पालन करने से जीवात्मा, परमात्मा के समीप पहुंचकर, परमात्मा का साक्षात्कार करती है। परमात्मा का साक्षात्कार होने पर जीवात्मा को आत्मसाक्षात्कार की अनुभूति होती है एवं आत्मसाक्षात्कार होने पर, जीवात्मा के विघ्नों का अभाव अर्थात् विनाश होता है।

यूनिटांत प्रश्न

1. वैदिक काल में यौगिक स्वरूप की विवेचना कीजिए।
2. दर्शन काल में योग के स्वरूप का उल्लेख कीजिए।
3. उपनिषद शब्द का क्या अर्थ है? उपनिषदों में योग के अस्तित्व को समझाइए।
4. आधुनिक काल में योग परम्परा पर प्रकाश डालिए।
5. योग में वर्णित ईश्वर के स्वरूप का सविस्तार वर्णन कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

2.1

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य

टिप्पणी

2.2

1. दृश्
2. नास्तिक
3. बुद्धि
4. 195

2.3

1. ईश्
2. समस्त ऐश्वर्यों एवं वैभव से युक्त परम सत्ता
3. क. सत्य

   ख. सत्य

टिप्पणी

3

यौगिक जीवन दर्शन

अब तक आप योग का सामान्य परिचय, योग के प्रमुख ग्रंथ और श्रीमदभगवद्गीता के अनुसार प्रमुख योग मार्गों के विषय में अध्ययन कर चुके हैं।

चित्र 3.1: यौगिक जीवन दर्शन

मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति कर सके और अपने जन्म व कर्म को सार्थक कर सके, इसके लिये आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्य आवश्यक हैं। इस यूनिट में हम इन्हीं मूल्यों के विषय में समझेंगे जो हमारे पूर्वजों ने ऋषि–मुनियों से एक संस्कृति के रूप में प्राप्त किये और पूरे मानव समाज द्वारा धारण किये गये जिसके पश्चात् एक के बाद एक आने वाली पीढ़ियों ने अपने पूर्वजों से इस संस्कृति को अपनाना शुरू कर दिया। अतः यह भारतीय संस्कृति के रूप में विख्यात हुई। वास्तव में यह ही यौगिक जीवन दर्शन है। जन्म मिलने के बाद पुरुषार्थ की साधना से मनुष्य अपने जीवन को संवार सकता है। यौगिकजीवन दर्शन में

टिप्पणी

जीवन के सभी शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक– व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक आयामों का विकास करने और संपूर्ण जीवनकाल को व्यवस्थित करने के लिए आश्रम व्यवस्था की गई है और ये चारों आश्रम–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास, व्यक्ति के चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस यूनिट में हम आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों का अध्ययन करेंगे और जानेंगे कि किस प्रकार मनुष्य अपनी पुरुषार्थ की साधना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त कर सकता है, और उसे कैसा जीवन जीना चाहिए? साथ ही, आधुनिक जीवन के संदर्भ में प्राचीन भारतीय मूल्यों का संबंध भी जान सकेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के बाद आप :

- संस्कृति की अवधारणा समझा सकेंगे;
- पुरुषार्थ, आश्रम, नैतिक शिक्षा के सिद्धांतों को अभिव्यक्त कर सकेंगे;
- नैतिक शिक्षा के सिद्धांतों का उल्लेख कर सकेंगे;
- आधुनिक युग के संदर्भ में प्राचीन भारतीय मूल्यों के संबंध का वर्णन कर सकेंगे।

3.0 संस्कृति की अवधारणा

अध्यात्म से तात्पर्य स्वयं की आंतरिक सजगता या स्वयं को जानने के प्रयास से है। और नैतिक मूल्य एक प्रकार से आध्यात्मिक संस्कार हैं जो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जिसे हम संस्कृति के माध्यम से समझेंगे। आइए संस्कृति का अर्थ समझते हैं–

संस्कृति शब्द 'सभ्' उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डु) कृ (चं) धातु से बनता है, जिसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है।

संस्कृति सामाजिक अंतःक्रियाओं एवं सामाजिक व्यवहारों के उत्प्रेरक प्रतिमानों का समुच्चय है। इस समुच्चय में ज्ञान, विज्ञान, कला, आस्था, नैतिक मूल्य एवं प्रथाएं समाविष्ट होती हैं। संस्कृति भौतिक, आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक तथा आध्यात्मिक अभ्युदय के साथ मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओं और सम्यक चेष्टाओं की समष्टिगत अभिव्यक्ति है। यह मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के स्वरूप का निर्माण, निर्देशन, नियमन और नियंत्रण करती है। अतः संस्कृति मनुष्य की जीवनपद्धति, वैचारिक दर्शन एवं सामाजिक क्रियाकलाप में उसके समष्टिवादी दृष्टिकोण की अभिव्यंजना है।

चित्र 3.2: भारतीय संस्कृति

टिप्पणी

यौगिक जीवन दर्शन में श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए जो दर्शन दिया है, आइये यहां पर, उसका हम संक्षिप्त में अध्ययन करते हैं –

3.1 पुरुषार्थ

भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष– ये चार पुरुषार्थ कहे गए हैं। पुरुषार्थ शब्द का अर्थ है– **"पुरुषैः अथ्यते"** अर्थात् मनुष्य जिसकी याचना करे। याचना उसी वस्तु की होती है जिसकी इच्छा होती है। इसलिए मनुष्य जिसको प्राप्त करना चाहता है उसी को पुरुषार्थ कहते हैं।

पुरुषार्थ मानव जीवन का दर्शन एवं अभिव्यक्ति है। जीवन की सभी सम्भावनाओं, कामनाओं, आकांक्षाओं से लेकर आत्मस्वरूप की प्राप्ति तक सभी कार्य पुरुषार्थ द्वारा ही सम्भव होते हैं। मनुष्य जन्म मिलने के बाद पुरुषार्थ की साधना द्वारा जीवन को संवारा और गढ़ा जा सकता है। जीवन के समस्त कार्य भाग्य और पुरुषार्थ के अधीन रहते हैं। इन दोनों में भाग्य गौण होता है और पुरुषार्थ ही मुख्य होता है। भाग्यवादी न बनकर हमें पुरुषार्थी बनना चाहिए। पुरुषार्थी व्यक्ति ही सौभाग्य, सम्पदा और सम्मान प्राप्त करता है। समृद्धि और सम्पन्नता पुरुषार्थ करने वाले मनुष्य को प्राप्त होती है। आलसी व भाग्य के भरोसे बैठे रहने वाले मनुष्यों के पास यदि लक्ष्मी है तो वह भी कुछ दिनों में वहां से चली जाती है।

मनुष्य जन्म तो भाग्य के अधीन होकर प्राप्त हुआ है, परन्तु अथक पुरुषार्थ करना मनुष्य के वश में होता है। पुरुषार्थहीन व्यक्ति जीवित होते हुए भी मरे हुए के समान हैं, जबकि पुरुषार्थी मनुष्य संकल्प बल और इच्छा शक्ति के बल पर काल की गति को तोड़ने और मरोड़ने का सामर्थ्य रखता है।

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन के कर्तव्यों को मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त करने वाली

टिप्पणी

विद्या को पुरुषार्थ चतुष्टय की संज्ञा दी गई है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को पुरुषार्थ चतुष्टय कहा गया है। इन्हीं चारों पुरुषार्थों पर मनुष्य जीवन आधारित है। सम्पूर्ण जीवन, अर्थ और काम की प्राप्ति हेतु हम सभी प्रयासरत रहते हैं। किन्तु कुछ लोग उक्त दोनों के पश्चात् धर्म की ओर उन्मुख होते हैं तथा कुछ अत्यन्त अल्प संख्या में उनसे आगे बढ़कर मोक्ष की ओर उन्मुख होते हैं। इसलिए कहा गया है कि अविद्या के द्वारा धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति की जा सकती है तथा विद्या द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः मनुष्य को जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति हेतु प्रयास करना चाहिए। आइए, इन चारों पुरुषार्थों के विषय में विस्तार से जानते हैं–

3.1.1 धर्म

धर्म शब्द 'धृ' धातु से उत्पन्न हुआ है जिसका मुख्य अर्थ धारण करना, आलम्बन देना या पालन करना होता है। जिसे धारण किया जाये, उसे धर्म कहते हैं। अर्थात् जो श्रेष्ठ बनने के लिए धारणीय, आचरणीय, पालनीय है, वे सभी धर्म के अन्तर्गत आते हैं। मनुष्यों और पशुओं में आहार, निद्रा, भय और संतानोत्पत्ति करना दोनों में समान प्रवृतियां होती हैं। यदि मनुष्य में पशुओं से अधिक कुछ श्रेष्ठ है तो वह उसकी विवेक बुद्धि, उसके आचार और धर्म हैं। मनुष्य के उत्कृष्ट नैतिक आचरण के कारण ही उसे सभ्य कहा जाता है। अर्थात् धर्म मनुष्य को सभ्य बनने की राह पर लेकर चलता है। इसलिए भारत के प्राचीन मनीषियों ने कहा है कि **"धर्मो रक्षति रक्षितः"** अर्थात् सदा धर्म की रक्षा करो, वह तुम्हारी रक्षा करेगा।

चित्र 3.3: धार्मिक आचरण

टिप्पणी

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा गया है –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम् ।।

अर्थात् धृति (धैर्य), क्षमा (दूसरों के द्वारा अपने प्रति किये गए अपराध को क्षमा कर देना, क्षमाशील होना), दम (मन को नियंत्रित करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना), धी (बुद्धि होना), विद्या (ज्ञानवान होना), सत्य एवं अक्रोध (क्रोध न होना)– ये धर्म के दस लक्षण कहे गए हैं। जहां ये हैं, वहीं धर्म है।

धर्म के भेद– भारतीय ऋषियों ने मुख्यतया धर्म के तीन भेदों का वर्णन किया है, जो इस प्रकार हैं–

सामान्य धर्म– सामान्य धर्म के अन्तर्गत वे सभी तत्व आते हैं जिनका सबको पालन करना होता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि का पालन सभी के लिए अनिवार्य है। अभिवादन, अतिथि सत्कार आदि सामान्य धर्म कहे जाते हैं।

विशिष्ट धर्म– विशिष्ट धर्म का अर्थ यहां पर व्यक्ति विशेष, समाज, वर्ग आदि से लगाया जाता है। इसका उत्कृष्ट अर्थ स्वधर्म का पालन करना होता है। व्यक्ति जिस सामाजिक संरचना, परिवेश से जुड़ा होता है उससे सम्बन्धित नियमों व आचरणों का पालन करना होता है। स्थान, काल, पात्रता के अनुसार कर्तव्यों का निर्धारण होता है, उसे ही विशिष्ट धर्म की संज्ञा दी गई है। श्रीमद्भगवद्गीता में स्वधर्म पालन करने की प्रेरणा दी गई है। कहा गया है कि दूसरे के कर्म करने में शांति नहीं मिलेगी। स्वयं के कर्तव्यों को पूरा करने से (स्वधर्म पालन करने से) ही मनुष्य को शांति व सुख प्राप्त होता है।

आपद् धर्म– जिसकी आज्ञा केवल आपातकाल के समय ही सम्पन्न करने की होती है, इसलिए उसे आपद धर्म कहा गया है। जैसे किसी के प्राण संकट में पड़ गये हों और आपके असत्य बोलने से उसके प्राण बचते हों तो उस परिस्थिति में असत्य भाषण का दोष नहीं लगता है।

3.1.2 अर्थ

द्वितीय पुरुषार्थ के रूप में अर्थ को मान्यता प्राप्त है। अर्थ शब्द 'ऋग्' धातु से उत्पन्न होता है जिसका अर्थ गति होता है। अर्थात् जिससे जीवन गतिमान होता है, वही अर्थ कहलाता है। धर्म का मूल भी अर्थ ही माना गया है। भूमि, धन, विद्या, कला और कृषि तथा आजीविका सम्बन्धी सभी वस्तुओं का नाम अर्थ माना गया है। प्राचीन काल में अर्थ के लिए जो वस्तुएं प्रचलित थीं वे आज के समय में उपलब्ध नहीं हैं। जो वर्तमान समय में प्रचलित हैं, जो पहले प्रचलन में नहीं थीं। अतः जीवन संचालन में काम आने वाली सभी वस्तुएं अर्थ ही कही जाती हैं।

टिप्पणी

जीवन संचालन के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। बिना अर्थ के धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं हो पाती है। मनुष्य में कामनायें, इच्छाएं होना स्वाभाविक है। कामनाओं की पूर्ति हेतु अर्थ एक अनिवार्य साधन हमेशा से रहा है। अर्थ समस्त कार्य व्यवहार का संचालनकर्ता है। इसके अभाव में जीवन निर्वाह करना असम्भव है। पुरुषार्थ सिद्धान्त में सांसारिक कर्तव्यों के पालन एवं दायित्वों की पूर्ति हेतु अर्थ का उपार्जन आवश्यक समझा जाता है। अतः आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता होनी आवश्यक है। धन–सम्पदा अर्जित करने के लिए मानव को अपने व्यक्तिगत –सामर्थ्य का उपयोग करना चाहिए। किन्तु यह अर्थ शुचितापूर्वक धर्माचरण करते हुए अर्जित किया जाना ही श्रेयस्कर है।

3.1.3 काम

चित्र 3.4: कामनाओं में आसक्ति

काम का अर्थ है– कामना या इच्छा। मनुष्य की एक ही महत्वपूर्ण इच्छा होती है कि वह सुखपूर्वक जीवन यापन करे। उसे जिस–जिस पदार्थ में सुख की अनुभूति होती है, वह उसे प्राप्त करना चाहता है, तथा जिससे दुःख की अनुभूति होती है, उसे छोड़ना चाहता है। समस्त सुख साधनों की इच्छा काम के अन्तर्गत आती है। उपस्थेन्द्रिय के माध्यम से प्राप्त सुख की अनुभूति मुख्य होने के कारण इसे काम का प्रधान लक्षण मान लिया गया है। समस्त कामनाएं, इच्छाएं मनुष्य के लिए सुख की खोज का अंग हैं, जिन्हें वह जन्म से मृत्युपर्यन्त (सम्पूर्ण जीवन में) चाहता रहता है और अन्ततः इस संसार से अतृप्त ही चला जाता है क्योंकि ये समस्त सुख–साधन क्षणिक सुखाभास के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। परमसुख (परमानन्द) का स्रोत तो परमात्मा है। अतः शास्त्रों में यह निर्देश है कि काम का उपयोग भी धर्म आधारित हो, जिससे हम उन कामनाओं में अटककर न रह जाएं और न ही उस परमलक्ष्य मोक्ष को भूल जाएं। इन्द्रिय सुखों का ध्यान रखकर भी उस परमसत्य तत्व की प्राप्ति का प्रयास करते रहें। अर्थ और काम का भोग मोक्ष की ओर ले जाने वाला तभी होगा जब हम धर्म के साथ इनका आचरण करेंगे अन्यथा यह बन्धन का कारण होकर हमें अनन्त दुःख के सागर में धकेल देगा।

3.1.4 मोक्ष

भारतीय संस्कृति मनुष्य जीवन को उद्देश्यपूर्ण मानती है। इसलिए जीवन के परम लक्ष्य के प्रति पथ प्रदर्शित करती है। पुरुषार्थ सिद्धान्त में अन्तिम मोक्ष का वर्णन किया गया है। धर्मपूर्वक अर्थ व काम का उपभोग करते हुए मानव मोक्ष की प्राप्ति करने का प्रयत्न करता है।

मोक्ष का शब्दार्थ है– बन्धन मुक्त होना। बन्धन का कारण अविद्या है। अविद्या के कारण मनुष्य बार–बार जन्म–मरण के फेर में पड़ा रहता है। उपनिषदों की मूल शिक्षा यही है कि मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है तो इसी जन्म में आनंदमय परमात्मा को पा लिया जाए तो यह मानव जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि होगी। अतः इसी जन्म में मोक्ष की प्राप्ति का साधन मनुष्य को करना चाहिए। जिससे इस संसार के समस्त दुःखों से छुटकारा प्राप्त करके उस परमसुख, परमानन्द को प्राप्त कर सकें जो केवल परमपिता परमेश्वर की सन्निधि में ही प्राप्य है। अतः जीवन के लक्ष्य मोक्ष तक पहुंचने के लिए भारतीय ऋषियों के बताए मार्गों का अनुसरण करते हुए जीवन यापन करने का आदेश और सन्देश हमारे शास्त्रों द्वारा प्रदान किया गया है।

यूनिटगत प्रश्न 3.1

1. मानव समाज ने यौगिक संस्कृति को कहां से प्राप्त किया है?

   ....

   ....

   ....

   ....

2. पुरुषार्थ का क्या अर्थ है?

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3. धर्म किसे कहते हैं?

   ....

   ....

   ....

टिप्पणी

4. चारों पुरुषार्थ के नाम लिखिए।

....

....

....

....

....

....

3.2 आश्रम व्यवस्था

भारतीय संस्कृति में सम्पूर्ण जीवनकाल को व्यवस्थित करने के लिए आश्रम व्यवस्था के रूप में नियोजित किया गया है। जीवन के सभी शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक–व्यावहारिक तथा अध्यात्मिक आयामों का विकास किया जा सके, इसलिए ऋषियों ने आश्रम व्यवस्था का निर्धारण किया था। मनुष्य अपनी आयु के विभिन्न पड़ावों पर भिन्न–भिन्न उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए अंतिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सके। इस व्यवस्था के अन्तर्गत जीवन की आयु को 100 वर्ष मानकर इसे चार आश्रमों में बांटा गया है और प्रत्येक आश्रम से सम्बन्धित व्यक्ति के दायित्वों एवं कर्तव्यों का निर्धारण किया गया है। प्रथम पच्चीस वर्ष शरीर, मन और बुद्धि के विकास के लिए निर्धारित किया गया है जिसे ब्रह्मचर्य आश्रम कहा गया है। द्वितीय पच्चीस वर्ष गृहस्थ आश्रम के लिए समर्पित किये गए हैं, जिसमें पति–पत्नी के रूप में धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए अपने नागरिक कर्तव्यों का पालन करते हुए जीवन यापन किया जाता है। तीसरे पच्चीस वर्ष गृहस्थ जीवन से मुक्त होकर पारमार्थिक जीवन जीने के लिए वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लिया जाता है। जीवन के अन्तिम पच्चीस वर्ष मोक्ष प्राप्ति के लिए संन्यास आश्रम में प्रवेश कर जाते हैं।

चारों पुरुषार्थों का भी इन चार आश्रमों से घनिष्टतम सम्बन्ध है। आश्रमों के माध्यम से चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति सम्भव होती है। ब्रह्मचर्य आश्रम से मनुष्य धर्म के तत्वों को जानकर ज्ञानी बनता है। गृहस्थ आश्रम में उसी ज्ञान के प्रयोग से अर्थ व काम प्राप्त करता है, और मानव के सदाचरण के नियमों का पालन करता हुआ ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यासी तीनों आश्रमों का पालन करने का दायित्व भी निर्वाह करता है। वानप्रस्थ आश्रम समाज सेवा के लिए रखा गया है। संन्यास आश्रम में मोक्ष प्राप्ति की साधना की जाती है। अतः चारों आश्रम व्यक्ति के चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम के विषय में विस्तार से जानने के लिए आइये क्रमशः इन पर दृष्टि डालते हैं।

टिप्पणी

3.2.1 ब्रह्मचर्य आश्रम

ब्रह्मचर्य आश्रम मानव जीवन का प्रथम सोपान है। प्राचीन काल में उपनयन संस्कार के साथ ही यह आश्रम प्रारंभ हो जाता था। इस आश्रम के अन्तर्गत गुरू बालक को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करके अपने आश्रम में रखकर विभिन्न विद्याओं में पारंगत करने का दायित्व निभाते थे। इस आश्रम में बालक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गुरु से शिक्षा ग्रहण करता था।

ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए ब्रह्मचारी का मुख्य कर्म है कि अपने गुरु से विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान एवं समस्त विद्याओं का प्रशिक्षण प्राप्त करे। इन विद्याओं का ज्ञान एवं प्रशिक्षण भौतिक संसार में उन्नति, बाधाओं से निपटने और संभावनाओं को साकार करने के लिए तथा पराभौतिक व्यक्तियों एवं आध्यात्मिक उन्नति से सम्बन्धित भी होता था।

इस आश्रम में ब्रह्मचारी का समग्र विकास हो सके, इस बात का ध्यान रखा जाता था। शारीरिक विकास के लिए खेलों, व्यायामशालाओं का प्रचलन था। सामाजिक एवं व्यावहारिक ज्ञान के लिए कथानकों एवं घटनाओं का सहारा लिया जाता था। धर्मानुसार आचरण करना, नीति, नियमों का पालन करना आदि सीखता था। मानसिक विकास एवं आध्यात्मिक विकास के लिए आसन–प्राणायाम और ध्यान का अभ्यास कराया जाता था। इस आश्रम में ब्रह्मचारी का प्रमुख धर्म गुरु की सेवा, गुरु की कृपा प्राप्त करना होता था। पच्चीस वर्ष की आयु तक शेष जीवन जीने की योग्यता प्राप्त कर अगले गृहस्थ आश्रम की ओर प्रस्थान करता था। आधुनिक शिक्षण व्यवस्था में गुरु–शिष्य का सम्बन्ध इस प्रकार का नहीं रहने के कारण समाज में अच्छे नागरिक नहीं मिल रहे हैं।

3.2.2 गृहस्थ आश्रम

प्रारंभिक ब्रह्मचर्य आश्रम का जीवन पूर्ण करने के बाद व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम को सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि इस आश्रम में रहकर परिवार, समाज, राष्ट्र की सेवा करने का अवसर प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम में रह रहे लोगों के भोजन, वस्त्र एवं अन्य आवश्यक सामग्री गृहस्थों से ही प्राप्त होती है।

गृहस्थ आश्रम में प्रवेश आचार्य की अनुमति मिलने के बाद ही होता था। जब आचार्य यह समझ लेते थे कि ब्रह्मचारी गृहस्थ धर्म के पालन में सक्षम है, तभी उसको अगले गृहस्थ में प्रवेश की आज्ञा मिल जाती थी। स्त्री–पुरुष के बीच विवाह संस्कार के साथ साथ ही एक दम्पत्ति के रूप में गृहस्थ आश्रम प्रारम्भ हो जाता है। विवाह का उद्देश्य यौन संतुष्टि और सन्तानोत्पत्ति होता है। सन्तान उत्पत्ति से समाज सन्तुलन और निरन्तरता बनी रहती है। गृहस्थ आश्रम में रहकर मनुष्य ऋणों से मुक्त होने के उपाय भी करता है। होम, यज्ञादि से देव ऋण से मुक्त होता है। वेद मंत्रों के यूनिटन, जपादि से ऋषि ऋण से मुक्ति प्राप्त होती है। माता–पिता की सेवा, व विधानयुक्त उनके अंतिम संस्कार से पितृ ऋण से मुक्ति मिलती है। अतिथियों की सेवा,

टिप्पणी

पशु–पक्षियों के लिए अन्न–जल का प्रबन्ध करना, वृक्षारोपण, नदियों का पूजन भी समाज–वातावरण के भार से मुक्त करता है।

3.2.3 वानप्रस्थ आश्रम

वानप्रस्थ आश्रम इस व्यवस्था का तीसरा महत्वपूर्ण आश्रम है। गृहस्थ आश्रम में रहकर विधिवत् धर्म का पालन करके जब गृहस्थ यह देखे कि उसके बाल श्वेत होने लगे हैं, और उसके पुत्र का भी पुत्र हो गया हो तो उस व्यक्ति को वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए। इस आश्रम का पालन करने के लिए व्यक्ति अपने निकट सम्बन्धियों से अलग होकर एकान्तवास के लिए वन की ओर प्रस्थान करता है। पत्नी को अपने पुत्रों के संरक्षण में या अपने साथ भी रख सकते हैं।

वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को सीमित करके तपस्या से युक्त जीवन–यापन करता है। इस आश्रम में सांसारिक मोह –माया से विमुख होकर व्यक्ति निष्काम कर्म में लग जाता है। वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति आश्रमों में गुरु का दायित्व निर्वहन करता है तथा विद्यार्थियों के ज्ञान–विद्यादि के शिक्षण–प्रशिक्षण के महत्वपूर्ण कार्यों में संलग्न हो जाता है। इस आश्रम में रहकर व्यक्ति को मानसिक रूप से संन्यास आश्रम के लिए अपने आपको तैयार करना होता है।

3.2.4 संन्यास आश्रम

आयु के अन्तिम पड़ाव में संन्यास ग्रहण करने का विधान किया गया था। आश्रम व्यवस्था में संन्यास आश्रम चतुर्थ और अन्तिम आश्रम है। संन्यास शब्द का सामान्य अर्थ है त्यागना, या त्याग कर देना। मनुष्य जब सांसारिक भोगों, इच्छाओं और फलों का त्याग कर देता है, तब वह संन्यासी हो जाता है। पिछले तीनों आश्रमों के बाद संन्यास आश्रम प्रारम्भ हो जाता है। संन्यास आश्रम में प्रवेश का वही अधिकारी माना गया है जिसने अपने पिछले तीनों आश्रमों में रहकर अपने कर्तव्यों का पालन कर लिया हो। वह तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है। इसलिए यज्ञोपवीत धारण नहीं करता।

संन्यासी सांसारिक सुखों का परित्याग कर देता है। उसके पास कोई घर, सम्पत्ति आदि नहीं होती है। वह भिक्षा से प्राप्त अन्न, वस्त्रादि ग्रहण करता है। वर्षा ऋतु में एक ही स्थान पर रहकर समय व्यतीत करता है तथा अन्य ऋतुओं में भ्रमणशील होकर रहता है। संन्यासी गेरुए वस्त्र धारण करता है। भिक्षा पात्र, दण्ड और कमण्डल लेकर विचरण करता है।

संन्यासी मोक्ष प्राप्ति के निमित्त मोह–माया, स्नेह, घृणा, प्रेम, द्वेष आदि से सदा ऊपर उठ जाता है। व्यक्ति इस आश्रम में मोक्ष प्राप्ति की साधना में निमग्न होकर उसे प्राप्त करता है।

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्न 3.2

1. आश्रम व्यवस्था से क्या तात्पर्य है?

2. जीवन की आयु को 100 वर्ष मानकर इसे कितने आश्रमों में बांटा गया है।

3. ब्रह्मचर्य आश्रम मानव जीवन का कौन–सा सोपान है?

3.3 विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व

भारतीय शास्त्रों में परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति हेतु विभिन्न साधनों का उल्लेख किया गया है। उनमें साधन चतुष्टय के रूप में विख्यात विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व को विशेष स्थान प्राप्त है। इनके माध्यम से साधक तत्व ज्ञान की प्राप्ति करके विरक्ति की ओर अग्रसर हो जाता है तथा साधन रूप में शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा व समाधान को अपनाकर उसका मुमुक्षुत्व दृढ़ हो जाता है। तब निश्चय ही मोक्ष रूपी परमपद की प्राप्ति सम्भव होती है। अतः इनके पालन के लिए साधक को निर्देश दिया गया है।

टिप्पणी

3.3.1 विवेक

मानवीय जीवन में विवेक का महत्वपूर्ण स्थान है। जो व्यक्ति विवेकयुक्त कार्य करते हैं उन्हें सफलता अवश्य प्राप्त होती है। विवेकहीन व्यक्ति ही संसार में असफलता को प्राप्त करते हैं। यह तो विवेक का लौकिक दृष्टिकोण हुआ। किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से विवेक का तात्पर्य है नित्यानित्यवस्तु विवेक। विवेक से तात्पर्य नित्य वस्तु एक मात्र ब्रह्म ही है। ब्रह्म के अतिरिक्त समस्त जगत अनित्य है, मिथ्या है। यही नित्यानित्यवस्तुविवेक है। आचार्य शंकर ने विवेक चूड़ामणि में लिखा है कि *ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्यः सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृतः।* अर्थात् ब्रह्म सत्य है, और जगत् मिथ्या है, ऐसा जो निश्चय है, यही नित्यानित्यवस्तु विवेक कहलाता है।

यह जो संसार दिखायी देता है, वह माया से उत्पन्न माना गया है। माया से उत्पन्न संसार नाशवान है। इसलिए यह अनित्य और मिथ्या है। माया का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। ब्रह्म की सत्ता से ही वह सत्तायुक्त है। जिस प्रकार हमारा शरीर इस ब्रह्माण्ड का एक अंश मात्र है। इस शरीर में जब तक चैतन्य स्वरूप आत्मा निवास करती है, तभी तक वह जीवित तथा उसका अस्तित्व बना रहता है। शरीर से आत्मा के निकलते ही शरीर निश्चेष्ट होकर पड़ा रह जाता है और अन्त में नष्ट कर दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार से इस विश्व ब्रह्माण्ड के भीतर भी एक आत्मा है जिसे ब्रह्म नाम से जाना जाता है। जब तक उसका संयोग ब्रह्माण्ड के साथ बना रहता है, तब तक ही जगत का अस्तित्व बना रहता है। उसके पश्चात् यह भी नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार इस शरीर की अवधि है उसी प्रकार इस जगत की अवधिपूर्ण होने पर नष्ट होकर अव्यक्त अवस्था में चला जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि एकमात्र ब्रह्म ही सत्य वस्तु है। इस प्रकार सत्य वस्तु ब्रह्म है, इसका निश्चय कर लेना ही विवेक है।

इस संसार में रहते हुए इस अनित्य, नाशवान नाम रूप जगत को सत्य न मानकर विवेकशील व्यक्ति आचरण करता है तो लिप्त न होने के कारण इससे स्वयं को अलग रूप में जान लेता है। आत्म तत्व नष्ट होने वाला नही है, तथा समस्त सृष्टि भी सदा रहने वाली नहीं है। इसलिए शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि, समस्त भोग, ऐश्वर्य आदि नाशवान होने से त्याज्य हैं। इसका विवेक ज्ञान बुद्धि में उत्पन्न हो जाता है तो वैराग्य भाव दृढ़ हो जाता है।

3.3.2 वैराग्य

वैराग्य के विषय में कहा गया है– *इहस्वर्गभोगेषु इच्छाराहित्यम्।* अर्थात् इस लोक और स्वर्ग आदि दिव्य लोकों के भोगों की इच्छा का परित्याग कर देना ही वैराग्य है। आचार्य शंकर लिखते हैं *तद्वैराग्यं जुगुप्सा या दर्शनश्रवणादिभिः। देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तूनि।* अर्थात् देखे एवं सुने हुए भोगों को देह से लेकर ब्रह्मलोकपर्यन्त सम्पूर्ण नाशवान भोग्य पदार्थों में जो घृणाबुद्धि है, वही वैराग्य है। जो मुमुक्षु हैं, वे वैराग्य भाव उत्पन्न करके ही उसकी ओर बढ़ सकते हैं। बिना वैराग्य के इस संसार में ही पुनः जन्म–मरण के चक्र में पड़े रहना पड़ता है।

टिप्पणी

3.3.3 षट्सम्पत्ति

षट्सम्पत्ति से तात्पर्य है शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान। इनका वर्णन निम्नानुसार है–

शम–मन का निग्रह करना शम कहलाता है। शम के विषय में कहा गया है– ***शमो नाम अन्तरिन्द्रिनिग्रहः*** अर्थात् शम से तात्पर्य है– ''अन्तरिन्द्रिय निग्रह करना''। अन्तरिन्द्रिय मन को कहा जाता है। शम को परिभाषित करते हुए आचार्य शंकर ने लिखा है– ***विरज्य विषयव्रताद् दोषदृष्ट्या मुहुर्मुहुः। स्वलक्ष्ये नियतावस्था मनसः शम उच्यते।*** अर्थात् बारम्बार दोष–दृष्टि करने से विषय–समूह से विरक्त होकर चित्त का अपने लक्ष्य में स्थिर हो जाना ही "शम" कहलाता है।

दम–दम के विषय में कहा गया है ***दमो नाम बाह्येन्द्रिय निग्रह*** अर्थात् बाह्य इन्द्रियों का निग्रह करना ही दम कहलाता है। शंकराचार्य जी ने दम को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ***विषेभ्यः परावर्त्य स्थापनं स्वस्वलोके। उभयेषामिन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः।*** अर्थात् कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनों को उनके विषयों से खींचकर अपने–अपने गोलकों में स्थित करना दम कहलाता है। इन्द्रियों से ही हम विषय–भोगों का सेवन करते हैं। इन्द्रियों का संयम करना दम के अन्तर्गत आता है।

उपरति–उपरति का अर्थ है उपराम हो जाना, विरति हो जाना। वस्तु की प्राप्ति होने पर भी उदासीन भाव धारण कर लेना उपरति है। इन्द्रियों को विषयों से विमुख कर सब कामनाओं का त्याग करना भी उपरति कहलाता है। आचार्य शंकर ने उपरति के विषय में कहा है कि उपरमः कः? ***स्वधर्मानुष्ठानमेव***। अर्थात् उपरम किसे कहते हैं? इस प्रकार का उत्तर देते हुए कहते हैं कि स्वधर्म यानि अपने धर्म का अनुष्ठान करना। अर्थात् जगत के विषयों में जो अनुराग है उसका परित्याग करके चित्त को स्वस्थ बनाकर अन्तरात्मा में लगाये रखना, इसी का नाम उपरति है।

तितिक्षा–तितिक्षा का दूसरा नाम तप भी है। समस्त कष्टों, कठिनाइयों को सहन करना ''**तितिक्षा**'' कहलाता है। शीत, उष्ण, सुख, दुःख, मान–अपमान आदि द्वन्द्वों को सहन करना ही तितिक्षा कहलाता है। आचार्य शंकर ने तितिक्षा के विषय में लिखा हैं ***सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम्। चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते।*** अर्थात् चिन्ता और शोक से रहित होकर बिना प्रतिकार किये सब प्रकार के कष्टों को सहन करना तितिक्षा कहलाता है। महर्षि पतंजलि ने तप का फल बताते हुए कहा है कि तप के प्रभाव से शरीर की अशुद्धियों का क्षय हो जाता है तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण प्राप्त हो जाता है।

श्रद्धा–वेद, वेदान्त एवं गुरु के कहे वाक्यों में दृढ़ निष्ठा एवं अटल विश्वास का नाम श्रद्धा है। जैसे कहा गया है ***"गुरुवेदान्तवाक्यादिषु विश्वासःश्रद्धा"*** अर्थात् अपने गुरु, वेद, वेदान्त आदि शास्त्रों के वाक्यों में जो दृढ़ विश्वास है, आस्था है, उसे ही श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा जहां होती

टिप्पणी

है वहां समर्पण होता है। श्रद्धा में संशय नहीं होता है। जहां संशय होता है, वहां श्रद्धा नहीं हो सकती। संशयरहित निश्चयात्मक स्थिति होना उत्थान का कारण है, इसी का नाम श्रद्धा है।

समाधान—चित्त की एकाग्रता का नाम समाधान है। चित्त में अनेक प्रकार के मल—विक्षेपों तथा संस्कारों के आवरणों के कारण वह चंचल, चलायमान रहता है। परन्तु मलों के क्षीण हो जाने पर चित्त स्वस्थ, एकाग्र और प्रशांत हो जाता है। तप, तितिक्षा, योगसाधनादि और गुरुसेवा के द्वारा मल—विक्षेपों को दूर कर लिया जाता है। तभी चित्त स्थिर होकर आत्मानुसंधान में लग जाता है। आचार्य शंकर ने समाधान को परिभाषित करते हुए लिखा है ***सर्वदा स्थापनं बुद्धेः शुद्धे ब्रह्मणि सर्वथा। तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम्।*** अर्थात् अपनी बुद्धि को सब प्रकार शुद्ध ब्रह्म में ही सदा स्थिर रखना, इसी को समाधान कहा है। चित्त की इच्छापूर्ति का नाम समाधान नहीं है।

3.3.4 मुमुक्षुत्व

संसार दुःखमय है, ऐसा सभी आप्तपुरुषों ने माना है। आध्यात्मिक दुःख, आधिभौतिक दुःख और आधिदैविक दुःख ये तीन दुःख या त्रिताप कहे गये हैं। इन्हीं तीनों दुःखों, त्रितापों से समस्त प्राणि त्रस्त, संतप्त है। अतः **इस दुःखमय संसार से तर कर मोक्षरूप अमृत की प्राप्ति करने की तीव्र इच्छा को मुमुक्षुत्व कहते हैं।**

मुमुक्षुत्व अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति की तीव्र इच्छा व लालसा का होना।

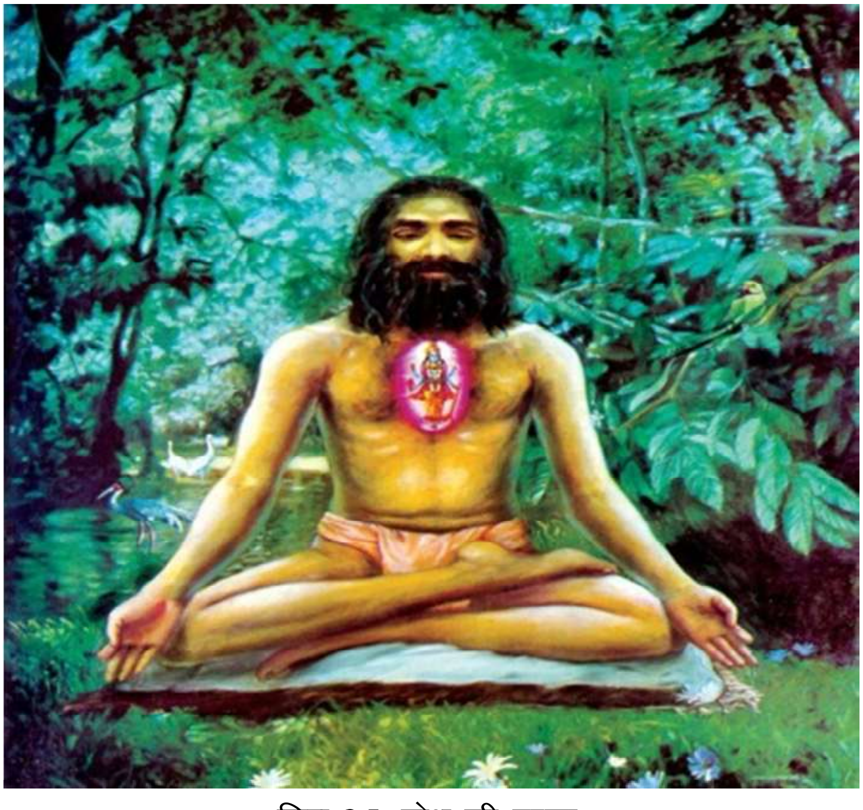

चित्र 3.5: मोक्ष की इच्छा

टिप्पणी

संसार की अनित्यता (नाशवान) सुखों की क्षणिकता, विषयों की प्राप्ति की चिंताओं की दाहकता, शरीरादि की क्षणभंगुरता को जब अनुभव कर लिया जाता है तो चित्त उन विषयों और पदार्थों से विमुख हो जाता है। तीव्र वैराग्य प्रकट होने पर नित्यानंद की प्राप्ति अर्थात् मोक्ष प्राप्ति की उत्कट इच्छा प्रकट हो जाती है। उसी अवस्था को मुमुक्षत्व कहा गया है। इसलिए मुमुक्षु पुरुष परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि ***संसार बन्धनिर्मुक्तः कथमेस्यात्कदाविभो।*** अर्थात् हे विभो! इस संसार में बारम्बार जन्म–मृत्यु रूप संसार बन्धन से मेरी कब और कैसे मुक्ति होगी? इस प्रकार संसार बन्धन से मुक्त होकर परम पद मोक्ष की प्राप्ति के लिए जिस पुरुष को उत्कट आकांक्षा या उत्कण्ठा जाग उठी हो, उसे ही मुमुक्षु पुरुष कहते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 3.3

1. भारतीय शास्त्रों में चतुष्टय के रूप में विख्यात चारों साधनों के नाम लिखिए।

....

....

....

....

....

2. वैराग्य क्या है?

....

....

....

....

....

3. षट्सम्पति से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

....

....

टिप्पणी

4. मुमुक्षत्व क्या है?

....

....

....

....

....

3.4 भारतीय जीवन मूल्य

भारतीय संस्कृति जीवन मूल्यों का पोषण, संरक्षण और उसके प्रचार–प्रसार करने वाली संस्कृति के रूप में विश्वविख्यात है। भारत की प्राचीन शिक्षण व्यवस्था में जीवन यापन की विविध विधाओं के साथ–साथ उच्च जीवन मूल्यों के शिक्षण की व्यवस्था भी थी। गुरुकुल जीवन मूल्यों के संवाहक, प्रसारक के रूप में कार्य करते थे। प्राचीन शिक्षा का आधार सत्य, अहिंसा, करुणा आदि मानवीय मूल्यों पर आधारित था। प्राचीनकाल में गुरुओं ने विद्यार्थियों में प्रेम, करुणा, दया का संचार तो किया ही, प्राणिमात्र के कल्याण की कामना भी की। **वसुधैव कुटुम्बकम्** की भावना यहीं पोषित और पल्लवित हई। भारत में आध्यात्मिक विकास के साथ–साथ चारित्रिक विकास पर बल दिया गया है। प्राचीन भारत में मनुष्यों में नैतिकता का विकास हो, दूसरों के प्रति प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा एवं सहयोग का भाव हो ऐसी मान्यता प्रचलित थी। भारतीय संस्कृति में उन्हीं विभूतियों को आदर्श माना गया है जिन्होंने उच्च मूल्यों को आधार मानकर जीवन जिया हो, जैसे– राम, कृष्ण, बुद्ध, नानक, महात्मा गांधी आदि।

भारतीय संस्कृति प्राचीन होने के साथ–साथ सबको साथ लेकर चलने वाली, विस्तृत एवं विविधता से परिपूर्ण है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मूल में भारतीय दर्शन रहा है। जिसकी सुदृढ़ पृष्ठभूमि पर भारतीय जीवन मूल्य प्रतिष्ठित हुए। भारतीय दर्शन आध्यात्मिक विकास को केन्द्र बिन्दु मानकर व्यावहारिक सामाजिक विकास का पक्षधर रहा है। भारतीय समाज में जीवन मूल्यों का प्रमुख स्रोत धर्म–दर्शन ही रहा है। धर्म ही जीवन मूल्यों के प्रति अटल तथा अविचल आस्था उत्पन्न करता है। यहां धर्म से तात्पर्य किसी वर्ग विशेष, सम्प्रदाय की बात नहीं की जा रही है। यहां धर्म का अर्थ जीवन में धारण करने वाले मूल्यों से है। जीवन मूल्य से तात्पर्य जीवन दृष्टि या स्थापित वैचारिक इकाई से है। मूल्य स्वयं एक व्यवस्था है जो सम्बन्धों को सन्तुलित करके व्यवहारों में एकरूपता स्थापित करते हैं। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण कहे गए हैं जो कि हर व्यक्ति को पालनीय हैं। मनुस्मृति में इनके विषय में कहा गया है– ***धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्।।*** अर्थात् धृति, क्षमा, दम(मन को वश में करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में करना), धी (बुद्धिमान होना), विद्या, सत्य एवं अक्रोध ये सभी धर्म के दस लक्षण हैं। योग जीवन मूल्यों का संवर्धन करने वाला रहा है। महर्षि पतंजलि ने भी पांच यमों को महाव्रतों की संज्ञा दी है। इन पांच महाव्रतों का पालन किसी भी देश,

काल, परिस्थिति में किया जा सकता है। पांच यम– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह कहे गए हैं। जैन दर्शन में भी इनको पांच महाव्रतों के रूप में स्वीकार किया गया है। बौद्ध धर्म में भी शील, समाधि और प्रज्ञा के माध्यम से इन्हीं गुणों को धारण करने का संदेश दिया गया है।

आधुनिक समय में मूल्यों का ह्रास

आधुनिकता एक प्रक्रिया है। हर समय परिवर्तन घटित होता रहता है। आज चारों तरफ जो वैज्ञानिक प्रगति, प्रौद्योगिक विकास, जीवन के रहन–सहन में उच्च स्तरीय परिवर्तन हुए हैं ये सभी आधुनिकता के परिचायक हैं। आधुनिकता का प्रभाव हमारे सम्पूर्ण जीवन पर पड़ा है किन्तु अब यह विकास भस्मासुर प्रतीत हो रहा है। भगवान शिव से वरदान पाकर भस्मासुर अन्त में अपने सिर के ऊपर हाथ रखकर स्वयं नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार आज की आधुनिकता बिना विवेक के मनुष्य के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगा रही है। आज के आधुनिक अर्थप्रधान युग में जीवन मूल्यों को नगण्य समझा जाने लगा है। आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण के अंधानुकरण में हमने अपने जीवन मूल्यों को खो दिया है। वर्तमान जीवन में जीवन मूल्यों की आवश्यकता को प्रत्येक मनुष्य अनुभव कर रहा है।

सामाजिक जीवन में हम देखते हैं कि व्यक्ति एक दूसरे से प्रतियोगिता एवं एक दूसरे की नकल करने का प्रयत्न कर रहा है। हम आन्तरिक तौर पर कितने ही बुरे क्यों न हों, किन्तु बाहर से हम साज–संवार करने में कोई मौका नहीं छोड़ते हैं। सभ्यता और फैशन के नाम पर उच्छृंखल होते जा रहे हैं। बालों की सजावट से लेकर नयी–नयी पोशाकों और आभूषणों पर सामर्थ्य से अधिक व्यय कर रहे हैं। नशे को हम अपने स्टेटस से जोड़कर देख रहे हैं। इस प्रकार की स्तरहीन सोच हमारे वैचारिक मूल्यों के स्तर में आई अवनति का परिणाम है।

आधुनिक युग में हम मूल्यहीनता की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। भारतीय समाज में ही नहीं, विश्व के अन्य देशों में भी जीवन मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है। मानव समाज में आज आतंकवाद, अलगाववाद, जातिवाद, रंगभेद, नस्लभेद जैसी समाज को बांटने वाली विचारधारा चल पड़ी है, जो मनुष्य के अस्तित्व के लिए संकट पैदा कर रही हैं। व्यक्तिगत, स्थानीय, राष्ट्रीय तथा वैश्विक स्तर पर भ्रष्टाचार, लूट, हिंसा, बलात्कार, पर्यावरणीय संकट बढ़े हैं, जिनका एक मात्र कारण जीवन मूल्यों में आई गिरावट ही है।

मनुष्य जब इस संसार में आता है तो नवजात शिशु के रूप में विकार रहित निश्छल, कोरे कागज की तरह होता है। जैसे–जैसे बड़ा होता है तो वह परिवार, समाज से सीखने लगता है। परिवार में माता–पिता और समाज संस्कारी होगा तो स्वाभाविक है कि पुत्र भी उच्च आदर्शों से युक्त संस्कारी होगा। यदि परिवार, समाज दोनों ही संस्कारहीन, मूल्यहीन व भ्रष्ट होंगे तो आने वाली पीढ़ी संस्कारी होगी, ऐसी आशा करना निरर्थक है। अतः परिवार, समाज और राष्ट्र की पहचान वहां रह रहे व्यक्तियों के चरित्र से होती है। उच्च आदर्शों, जीवन मूल्यों से परिपूर्ण समाज का

टिप्पणी

निर्माण करना है तो इन्हें अपने जीवन में धारण करने की आवश्यकता है। माली अपने बगीचे में नित्य जाता है तो उसकी साज, सज्जा बनी रहती है। अगर कुछ दिन माली बगीचे में न जाये तो बाग उजड़ सा जाता है। आज हमारे जीवन के साथ भी कुछ इसी तरह से हो गया है। इसके साज संवार पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। इस संदर्भ में एक उक्ति प्रचलित है, स्वास्थ्य चला जाये तो फिर से प्राप्त किया जा सकता है। धन चला जाये तो फिर से कमाया जा सकता है। परंतु चारित्रिक पतन हो जाए तो सब कुछ नष्ट हो जाता है। अर्थात् चरित्र के नष्ट होने पर फिर उसे बनाया नहीं जा सकता है।

जीवन मूल्यों की स्थापना–

वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से ओतप्रोत हमारी भारतीय संस्कृति है। जीवन मूल्यों के अवमूल्यन के इस दौर में मूल्यों की स्थापना के लिए हमें अपनी संस्कृति की गौरव गरिमा की ओर झांकना होगा। हमारे ऋषियों ने अपने जीवन को दांव पर लगाकर जीवन के आदर्शों, व सिद्धान्तों को खोजा था। ऋषियों ने अपनी साधना और तप के बल पर जीवन मूल्यों की स्थापना की थी। अतः समस्या के समाधान के लिए हमें एक बार फिर से इन जीवन मूल्यों को स्थापित करने की आवश्यकता है।

जीवन मूल्य–उपनिषदों में वर्णित ज्ञान भारतीय चिंतन की उत्कृष्टतम अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। उपनिषदों में जीवन के प्रत्येक आयाम के विकास हेतु श्रेष्ठतम उपायों का वर्णन किया गया है। मनुष्य की मुक्ति को केन्द्र मानकर रचे गये उपनिषदों में मानव जीवन के उच्चतम् मूल्यों का वर्णन किया गया है।

चित्र 3.6: जीवन मूल्यों की स्थापना

क्या करणीय है, क्या अकरणीय है, उपनिषदों में इसका प्रतिपादन जीवन में पालन करने वाले सदाचरण के रूप में वर्णन किया गया है। **''छान्दोग्यपनिषद्''** में कहा गया है कि चोरी, मद्यपान, गुरु निंदक और ब्रह्मज्ञानी को मारने वाला और इनसे सम्बन्ध रखने वाला पतन को प्राप्त होता है। ऐसे कर्म करने चाहिए जिससे हमारा कल्याण हो। **तैत्तरीयोपनिषद्** में दीक्षान्त में आचार्य अपने शिष्य को शपथ दिलाता है कि सत्य धर्म का पालन करो! स्वाध्याय में प्रमाद न करो! माता–पिता व

टिप्पणी

अतिथि का सत्कार करो! दान करो! हमारे सद्‌गुणों को धारण व अवगुणों को कभी धारण न करो।

महर्षि पतंजलि द्वारा रचित पातंजल योग सूत्र में यम–नियमों के रूप में जीवनमूल्यों की शिक्षा दी है जो इस प्रकार हैं–

यम–यम पांच हैं– *अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः।* अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये सभी यम कहलाते हैं जिनका वर्णन निम्नानुसार आगे किया जा रहा है।

i) **अहिंसा**–अहिंसा अर्थात् हिंसा न करना। मन, वचन एवं कर्म से किसी जीव को कष्ट न पहुंचाना ही अंहिसा कहलाती है।

ii) **सत्य**–सत्य वचन को ही सत्य कहा है। शास्त्रों में कहा गया है कि *"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात न ब्रूयात–सत्यम् अप्रियम"* अर्थात् सदा सत्य बोलें, प्रिय बोलें ऐसा वचन न बोलें जो सुनने में अप्रिय हो। अतः सत्य को मधुर भाषा में बोलें कटु करके नहीं।

iii) **अस्तेय**–अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना। *परद्रव्यापहरणं त्यागोऽस्तेयम्* अर्थात् बिना पूछे या बिना अनुमति के दूसरे व्यक्ति के किसी भी **द्रव्य** को लेने की इच्छा का परित्याग कर देना ही अस्तेय कहलाता है।

iv) **ब्रह्मचर्य**–मन, वाणी और शरीर से होने वाले सभी प्रकार के मैथुनों का परित्याग कर देना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है।

v) **अपरिग्रह**–स्वार्थवश आसक्तिपूर्वक धन, सम्पत्तियों का संचय न करना ही अपरिग्रह कहलाता है।

नियम– नियम भी पांच है यथा– *शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।* अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये नियम हैं।

i) **शौच**–शौच का अर्थ है शुद्धता, पवित्रता। शौच दो प्रकार का होता है बाह्य और आन्तरिक। बाह्य शौच के अन्तर्गत शरीर की अशुद्धि को स्नानादि से शुद्ध करना बाह्य शौच कहलाता है तथा मन को पवित्र विचारों से शुद्ध करना आन्तरिक शौच कहलाता है।

ii) **संतोष**–जो अपने पास है उसमें संतुष्टि अनुभव करना संतोष कहलाता है। संतोष का भाव लाने से मन की उदासी दूर हो जाती है।

iii) **तप**– *तपो द्वन्द्वसहनम्* अर्थात् सब प्रकार के द्वन्द्वों को सहन करना ही तप कहलाता है। तप का पालन करने से मनुष्य में सहनशीलता का विकास होता है।

टिप्पणी

iv) स्वाध्याय—मोक्ष शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। नित्य स्वाध्याय करने से विचारों में श्रेष्ठता बनी रहती है।

v) ईश्वर प्रणिधान—ईश्वर के प्रति शरणागति का भाव ही ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।

उपरोक्त यम—नियमों का पालन करने से स्वयं के जीवन में उत्कृष्टता आती है, साथ ही समाज के अन्य लोगों को भी उससे लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार इन जीवन मूल्यों का आचरण हम सभी के लिए अनुकरणीय है। हम निम्न बिन्दुओं पर विचार कर सकते हैं:

- हम अपनी संस्कृति को विश्व की प्राचीन संस्कृति मानते हुए गौरव का अनुभव करें।
- ऋषियों द्वारा खोजे गए ज्ञान—विज्ञान को अपने जीवन में आत्मसात् करने की कोशिश करें।
- प्राचीन ज्ञान—विज्ञान को किसी से कम न समझें, क्योंकि इनमें मानव सभ्यता बचाने के सूत्र छिपे हुए हैं।
- प्राचीन दर्शन, संस्कृति और परम्परा को बिना जाने—समझे, अंधविश्वास, रूढ़ि न मान बैठें।
- भारतीय ऋषियों के ज्ञान को वर्तमान विज्ञान के पैमाने पर खरा उतारने के लिए प्रयासरत रहें।
- हम अपने ज्ञान—विज्ञान को हीन और विदेशी ज्ञान को उच्चतम मानने के दुराग्रह में न फँसें।

चित्र 3.7: गुरुकुल शिक्षा पद्धति

- उच्च आदर्शों को अपने जीवन में धारण करें। इनके पालन में तत्पर रहें। इस मान्यता पर अडिग रहें।
- योग के अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि को जीवन का अंग बनाकर, इनका पालन करें।

जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए हमें अपनी शिक्षा व्यवस्था में इन मूल्यों को प्राथमिक स्थान देना होगा। प्रत्येक पाठ्यक्रम में जीवन मूल्यों को सम्मिलित करने की आवश्यकता है। विद्या में प्रवीण, कुशल होना पाठ्यक्रम का उद्देश्य होता है। विद्या में पारंगत होने के साथ–साथ संस्कारी और व्यवहार कुशल, उच्च आदर्शों से युक्त नागरिक बन जाए, यही शिक्षा की सार्थकता है।

यूनिटगत प्रश्न 3.4

1. किस उपनिषद में दीक्षांत के दौरान, आचार्य अपने शिष्यों को जीवन मूल्यों का पालन करने की शपथ दिलाते हैं?

2. किस योगसूत्र में यम नियमों के रूप में जीवन मूल्यों की शिक्षा दी है?

3. पातंजल योगसूत्र के अनुसार नियमों के नाम लिखिए।

टिप्पणी

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में हमने सीखा कि –

1. आध्यात्मिक एवं नैतिक स्वास्थ्य मानव जीवन और समाज के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

2. योग जीवन जीने की कला सिखाता है। जीवन में पूर्णतः संपूर्णता लाने के लिए मनुष्य को पुरुषार्थ करना चाहिए। पुरुषार्थ चार हैं – **धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।**

3. मनुष्य जीवन को 100 वर्ष की आयु मानकर उसे आश्रमों में विभाजित कर दिया गया।
   - **प्रथम पच्चीस वर्ष** शरीर, मन एवं बुद्धि विकास के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम;
   - **द्वितीय पच्चीस वर्ष** गृहस्थ आश्रम को समर्पित किये गए हैं, जो पति–पत्नी के रुप में धार्मिक रुप से नागरिकता का पालन करते हुए व्यतीत करने हैं;
   - **तृतीय पच्चीस वर्ष** गृहस्थ आश्रम के बाद परमार्थिक जीवन जीने के लिए वानप्रस्थ आश्रम की व्यवस्था है; तथा
   - **चतुर्थ पच्चीस वर्ष** मोक्ष प्राप्ति के लिए संन्यास आश्रम की व्यवस्था है।

4. भारतीय शास्त्रों में परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति हेतु विभिन्न साधनों का उल्लेख किया गया है। उनमें साधन चतुष्टय के रूप में विख्यात विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व को विशेष स्थान प्राप्त है। इनके माध्यम से साधक तत्व ज्ञान की प्राप्ति करके विरक्ति की ओर अग्रसर हो जाता है तथा साधन रूप में शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा व समाधान को अपनाकर उसका मुमुक्षुत्व दृढ़ हो जाता है। तव निश्चय ही मोक्ष रूपी परमपद की प्राप्ति सम्भव होती है।

5. मूल्य स्वयं एक व्यवस्था है जो सम्बन्धों को सन्तुलित करके व्यवहारों में एकरूपता स्थापित करते हैं। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण कहे गए हैं जो कि हर व्यक्ति को पालनीय हैं। मनुस्मृति में इनके विषय में कहा गया है ***धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्।।*** अर्थात् धृति, क्षमा, दम(मन को वश में करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में करना), धी (बुद्धिमान होना), विद्या, सत्य एवं अक्रोध ये सभी धर्म के दस लक्षण हैं। महर्षि पतंजलि ने पांच यमों को महाव्रतों की संज्ञा दी है। इन पांच महाव्रतों का पालन किसी भी देश, काल, परिस्थिति में किया जा सकता है। पांच यम **अंहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह** कहे गए हैं। जैन दर्शन में भी इनको पांच महाव्रतों के रूप में स्वीकार किया गया है। बौद्ध धर्म में भी **शील, समाधि और पज्ञा** के माध्यम से इन्हीं गुणों को धारण करने का संदेश दिया गया है।

टिप्पणी

6. आधुनिकता एक प्रक्रिया है। हर समय परिवर्तन घटित होता रहता है। आज चारों तरफ जो वैज्ञानिक प्रगति, प्रौधोगिक विकास, जीवन के रहन–सहन में उच्च स्तरीय परिवर्तन ये सभी आधुनिकता का परिचायक है। आधुनिकता का प्रभाव हमारे सम्पूर्ण जीवन पर पड़ा है। आधुनिकता बिना विवेक के मनुष्य के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगा रही है। आज के आधुनिक अर्थप्रधान युग में जीवन मूल्यों को नगण्य समझा जाने लगा है। आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण के अंधानुकरण में हमने अपने जीवन मूल्यों को खो दिया है। वर्तमान जीवन में जीवन मूल्यों की आवश्यकता को प्रत्येक मनुष्य अनुभव कर रहा है।

7. आधुनिक समय में प्राचीन संस्कृति को बहुत ही कम महत्व दिया जा रहा है जिसके कारण मानव मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र रुप से निच्छंद जीवन जीना चाहता है उसके लिए संस्कृति के मूल्य समझ नहीं आते क्योंकि यदि वह इनको धारण करता है तो बंधन में बंध जाता है। जबकि वह सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त रहना चाहता है। समाज में राग, द्वेष, ईर्ष्या, काम, क्रोध आदि विषय तेजी से पनप रहे हैं जिनसे जीवन में क्लेश होता है। परिवार व समाज में अशान्ति रहती है, मनुष्य यदि चाहे तो वह इन विषयों, क्लेशों और दु:खों से बच सकता है और योगमय जीवन जीते हुए जीवन के लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति कर सकता है।

यूनिटांत प्रश्न

1. यौगिक संस्कृति से क्या तात्पर्य है? पुरुषार्थ से मनुष्य जीवन में अपने लक्ष्य को कैसे प्राप्त कर सकता है? विवेचना कीजिए।
2. पुरुषार्थ का अर्थ स्पष्ट करते हुए धर्म तथा अर्थ के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
3. मनुष्य के जीवन को आयु के अनुरूप किन–किन आश्रमों में बांटा गया है। किन्हीं दो आश्रमों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. भारतीय संस्कृति में सम्पूर्ण जीवन काल को व्यवस्थित करने के लिए 'आश्रम व्यवस्था' में नियोजित किया गया है। इसकी विवेचना कीजिए।
5. भारतीय शास्त्रों में परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति हेतु कौन–कौन से साधनों का उल्लेख किया गया है? विस्तार से प्रकाश डालिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

3.1

1. हमारे ऋषियों–मुनियों एवं पूर्वजों से।
2. "पुरुषैः अथ्यते" अर्थात् मनुष्य जिसकी याचना करे, जिसको वह प्राप्त करना चाहता है।

टिप्पणी

3. जिसे धारण किया जाए उसे धर्म कहते हैं।
4. (i) धर्म, (ii) अर्थ, (iii) काम (iv) मोक्ष

3.2

1. भारतीय संस्कृति में संपूर्ण जीवन काल को व्यवस्थित करने के लिए जिसे व्यवस्था के रूप में नियोजित किया गया है, उसे आश्रम व्यवस्था कहते हैं।
2. चार आश्रमों में
3. प्रथम सोपान

3.3

1. विवेक, वैराग्य, षट्सम्पति और मुमुक्षुत्व।
2. इस लोक, स्वर्ग एवं अन्य दिव्य लोकों के भागों की इच्छा का परित्याग कर देना ही वैराग्य है।
3. षट्सम्पति से तात्पर्य है – यम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान।
4. दुःखमय संसार से तरकर मोक्ष रूप अमृत की प्राप्ति करने की तीव्र इच्छा को मुमुक्षुत्व कहते हैं।

3.4

1. तैत्तरीयोपनिषद में
2. पातंजल योगसूत्र में
3. नियम पांच हैं – शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान।

4

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अनुसार प्रमुख योग मार्ग

आप योग का अर्थ, परिभाषा व संक्षिप्त इतिहास पिछली यूनिट—योगः एक परिचय में पढ़ चुके हैं। अब आप समझ गए होंगे कि योग हमारे जीवन में कितना महत्वपूर्ण है और किस प्रकार सर्वांगीण विकास करता है। योग के द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण स्वास्थ्य से लेकर मोक्ष तक प्राप्त कर सकता है। इसके लिए विभिन्न योग साधन पद्धतियों की आवश्यकता होती है। जिनके माध्यम से मनुष्य कैवल्य की अवस्था तक पहुंच सकता है।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में बहुत ही सुन्दर ढंग से ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग की चर्चा की गई है। इस यूनिट में हम श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के आलोक में वर्णित ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग पर चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में वर्णन किए गए ज्ञानयोग का उल्लेख कर सकेंगे;
- श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के आधार पर कर्मयोग को समझा सकेंगे; तथा
- श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अनुसार भक्तियोग पर प्रकाश डाल सकेंगे;

टिप्पणी

4.1 श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग

श्रीमद्भगवद्गीता एक संपूर्ण योगशास्त्र है, इसको योग उपनिषद भी कहा गया है। इसमें मनुष्य की दिनचर्या से लेकर आहार–विहार, ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग का वर्णन किया गया है। यहां पर हम ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग को समझने का प्रयास करेंगे।

चित्र 4.1: योगेश्वर कृष्ण का योग संदेश

4.2 ज्ञान योग

ज्ञानयोग ऐसा योग है जिसमें मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर ईश्वर का साक्षात्कार करता है। श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 13 श्लोक संख्या 2 एवं 13 के अनुसार क्षेत्र (शरीर) और क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) को तत्व से जानना ज्ञान है।

दृश्यमात्र संपूर्ण जगत माया का कार्य होने से क्षणभंगुर, नाशवान, जड़ और अनित्य है तथा जीवात्मा नित्य, चेतन, निर्विकार और अविनाशी एवं शुद्ध बोद्य स्वरूप सच्चिदानंदधन परमात्मा का ही सनातन अंश है। इस प्रकार समझकर संपूर्ण मौलिक पदार्थों में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके परमपुरुष परमात्मा में ही एकीभाव से नित्य स्थित रहने का नाम उनको 'तत्व से जानना है' और यह ज्ञान है।

ज्ञान प्राप्ति के साधन को और भी विस्तार से श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 13 के 7वें श्लोक से 11वें श्लोक में वर्णन आता है, कि श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दम्भाचरण का अभाव, किसी भी प्राणी को किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, मन–वाणी आदि की सरलता, श्रद्धा भक्तिसहित गुरू की सेवा, बाहर–भीतर की शुद्धि, अन्तःकरण की स्थिरता और मन इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह तथा इस लोक और परलोक के संपूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुख और दोषों का बार–बार विचार करना तथा पुत्र–स्त्री–घर और धन आदि में आसक्ति का अभाव, ममता का न होना तथा प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना और मुक्त परमेश्वर में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति (बिना किसी शर्त के, स्वभाविक प्रगाढ़ प्रेम, स्नेह के वशीभूत होकर) तथा एकांत और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना। अध्यात्मज्ञान में नित्य स्थिति और तत्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को ही देखना यह सब ज्ञान है और जो इससे विपरीत है वह अज्ञान है।

टिप्पणी

ज्ञानयोग की निम्न विशेषताएं श्रीमद्भगवद्गीता में मिलती हैं :

1. **श्रेष्ठ** – द्रव्यमय (आहुति देकर किये जाने वाले) यज्ञ से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है – *'श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः'* (4:33) कारण कि द्रव्यमय यज्ञ में पदार्थों और क्रियाओं की मुख्यता रहती है, जबकि ज्ञानयज्ञ में विवेक–विचार की मुख्यता रहती है। विवेक–विचार में मनुष्य की जितनी स्वतंत्रता है, उतनी स्वतंत्रता पदार्थों और क्रियाओं में नहीं है।

2. **सुगम** – ज्ञानयोगी साधक परमात्व तत्व का ध्यान करते–करते संपूर्ण पापों से रहित होकर सुखपूर्वक परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। – 'सुखेन ब्रह्मसंस्पर्श'(6:28)

3. **शीघ्रसिद्धि** – श्रद्धावान ज्ञानयोगी ज्ञान को प्राप्त होकर शीघ्र ही परम गति को प्राप्त हो जाता है – *'ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति'* (4:39) कारण कि वह इन्द्रियों को वश में किये हुए होता है।

4. **पापों का नाश** – पापी से पापी भी ज्ञानरूपी नौका से संपूर्ण पापों से तर जाता है – *'सर्वज्ञानप्लवेनैव ....'(4:36)*। ज्ञानरूपी अग्नि संपूर्ण पापों को भस्म कर देती है – *'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते:* (4:37) कारण कि स्वरूप का बोध होने से शरीर – संसार से संबंधविच्छेद हो जाता है।

5. **संतुष्टि** – अपने स्वरूप का ध्यान करने वाला ज्ञानयोगी अपने आप में संतुष्ट हो जाता है – 'प्श्यन्नात्मनि तुष्यति' (6:20)। कारण कि उसकी जड़ता अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि आदि के साथ संबंध नहीं रहता।

6. **शान्ति की प्राप्ति** – ज्ञानयोगी, परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है। *'ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिम ....'*(4:39) कारण कि वह तत्व को जान जाता है। फिर उसके लिये कुछ भी जानना शेष नहीं रहता।

7. **समता की प्राप्ति** – जो संपूर्ण प्राणियों में अपने का और अपने में संपूर्ण प्राणियों को देखता है, वह समदर्शी हो जाता है अर्थात उसे समता की प्राप्ति हो जाती है –'सर्वल समदर्शनः'(6:29)। वह सुख–दुःख में सम हो जाता है – *'समदुखसुखः*(14/24) कारण कि उसकी तत्व से अभिन्नता हो जाती है।

8. **ज्ञान की प्राप्ति** – क्षेत्र (शरीर) अलग है और क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) अलग है – ऐसा विवेक होने पर ज्ञानयोगी को स्वरूप का बोध अर्थात् परमतत्व की प्राप्ति हो जाती है – *'यान्ति ते परम'* (13/34) कारण कि उसका प्रकृति और उसके कार्य से संबंध–विच्छेद हो जाता है।

9. **प्रसन्नता(स्वच्छता) की प्राप्ति** – ज्ञानयोगी अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त हो जाता है –'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा'(118:54)। भगवान उपदेश करते है; जिसे संतों ने भी बारम्बार अनुभव किया है कि सच्चिदानंदधन ब्रह्म में एकीभाव से स्थित प्रसन्न मन वाला योगी न तो किसी के लिए शोक करता है और न किसी की आकांक्षा ही करता है। ऐसा समस्त प्राणियों में समभाववाला योगी मेरी परमभक्ति को प्राप्त हो जाता है।

टिप्पणी

ज्ञानयोग के अधिकारी – जैसे भक्ति के सभी अधिकारी हैं, ऐसे ही ज्ञान के सभी अधिकारी हैं। भगवान ने गीता में बताया है कि जिस ज्ञान को मनुष्य श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरू की सेवा करके, उनके अनुकूल बनकर, जिज्ञासापूर्वक प्रश्न करके प्राप्त करता है और जिस ज्ञान को प्राप्त करके फिर कभी मोह हो ही नहीं सकता तथा जिस ज्ञान से साधक पहले संपूर्ण प्राणियों को अपने में और फिर परमात्मा में देखता है, वही ज्ञान (तीव्र जिज्ञासा होने पर) अत्यन्त पापी को भी प्राप्त हो सकता है (4:34–36)।

भगवान कहते हैं कि जगत का सबसे बड़ा पापी भी ज्ञानरूप नौका द्वारा निःसंदेह संपूर्ण पाप समुद्र से भलीभांति तर जायेगा; जैसे प्रदीप्त अग्नि लकड़ियों के ढेर को जलाकर भस्म कर देती है, ऐसे ही ज्ञानरूपी अग्नि संपूर्ण पापों को सर्वथा भस्म कर देती है (4:36–37)। जब पापी से पापी को भी ज्ञान हो सकता है तब जो श्रद्धावान है, अपनी साधना में तत्पर है और जितेन्द्रिय है, उसको ज्ञान प्राप्त हो जाय – इसमें तो कहना ही क्या है (4:39)।

कई तो ध्यानयोग के द्वारा, कई सांख्ययोग के द्वारा और कई कर्मयोग के द्वारा अपने आप में उस परमात्मतत्व का अनुभव करते हैं (13:24) परन्तु जो इन साधनों को नहीं जानते वे मनुष्य केवल तत्वज्ञ महापुरुषों से सुनकर उनकी आज्ञा के अनुसार चलकर ही ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। (13:25)

तात्पर्य है कि मनुष्य चाहे श्रद्धावान साधक हो, चाहे पापी से पापी हो, चाहे अनजान से अनजान हो अगर वह ज्ञान चाहता है तो उसे ज्ञान हो सकता है।

ज्ञानयोग की व्यापकता – हमारे देखने, सुनने और समझने में जो कुछ दृश्य आता है, वह सब अदृश्यता में परिवर्तित हो रहा है। इन्द्रियों और अन्तःकरण के जितने विषय हैं, वे सब के सब पहले नहीं थे और फिर आगे नहीं रहेंगे तथा अभी वर्तमान में भी प्रतिक्षण उनका ह्रास चला जा रहा है। किन्तु विषय तथा उसके अभाव को जानने वाला तत्व सदा ज्यों का त्यों ही रहता है। उस तत्व का कभी अभाव पूर्वकाल में हुआ नहीं, न अभी वर्तमान में अभाव है, न आगे अभाव होगा और हो सकता भी नहीं। उसी तत्व से मैं–मेरा, तू–तेरा, यह–इसका और वह–उसका ये चारों प्रकाशित होते हैं। वह तत्व (प्रकाश) इन सबमें ज्यों का त्यों परिपूर्ण है। जैसे प्रज्वलित अग्नि काठ को भस्म कर देती है, ऐसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सब कर्मों को, पापों को भस्म कर देती है (4:37)। अर्थात् उस ज्ञानरूपी अग्नि में, मैं–मेरा, तू–तेरा, यह–इसका और वह–उसका–ये सभी लीन हो जाते हैं।

जिनका बाह्य पदार्थों का संबंधजन्य सुख मिट गया है, जिसको केवल परमात्मतत्व में ही सुख मिलता है, जो परमात्मतत्व में ही रमता जाता है, ऐसा ब्रह्मभूत साधक निर्वाण ब्रह्म को प्राप्त होता है। जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनकी द्विविधा मिट गयी है और जो संपूर्ण प्राणियों के हित में रहते हैं, वे निर्वाण ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। जो काम क्रोध से रहित हो चुके हैं, जिनका मन अपने अधीन है और जो तत्व को जान गये हैं (अर्थात् जिन्हें ज्ञान प्राप्त हो चुका है) – ऐसे साधकों को जीते–जी और मरने के बाद शान्त ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ऐसे ज्ञानी महात्माओं के लिए शान्त परब्रह्म परमात्मा सभी ओर परिपूर्ण हैं।(5:24–26)

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्न 4.1

1. ज्ञानयोग क्या है?

....

....

2. ज्ञानयोग की किन्हीं दो विशेषताओं का नाम लिखिए।

....

....

3. श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 13 के 7वें श्लोक से 11वें श्लोक में वर्णित किन्हीं दो साधनों के नाम बताइए।

....

....

....

4.3 भक्तियोग

भक्तियोग प्रेम की उच्च पराकाष्ठा है। ईश्वर के प्रति अत्यधिक प्रेम ही भक्ति है जब व्यक्ति संसार के भौतिक पदार्थों से मोह त्याग कर अनन्य भाव से ईश्वर की उपासना करता है तो वह भक्ति कहलाती है।

भक्ति शब्द संस्कृत व्याकरण के 'भज् सेवायाम धातु में 'क्तिन प्रत्यय लगाकर भक्ति शब्द बनता है जिसका अर्थ सेवा, पूजा उपासना और संगतिकरण करना आदि होता है। भक्ति भाव से ओतप्रोत साधक पूर्ण रूप से ब्रह्म, ईश्वर के भाव में भावित होकर सर्वतोभावेन तदरूपता की अनुभूति को अनुभव करता है।

भक्तियोग की सबसे बड़ी विलक्षणता है कि जब भक्त भगवान के प्रति सर्वथा समर्पित हो जाता है, अपने आपको भगवान को दे देता है, तो फिर करना—करवाना सब भगवान के द्वारा ही होता है। उस स्थिति में भक्त केवल निमित्तमात्र बनता है। अतः भक्तियोग के प्रकरण में भगवान ने अपने प्रिय भक्त अर्जुन से कहा कि यहां सेना में जितने भी योद्धा लोग खड़े हैं, वे सब मेरे द्वारा पहले से ही मारे हुए हैं। इनके मारने में तू निमित्तमात्र बन जा—निमित्तमात्र भव। (11:33)

भक्तियोग के अधिकारी — सभी प्राणी चाहे कैसा भी दुराचारी हो बिना किसी अपवाद के

टिप्पणी

भगवान की भक्ति कर सकता है। कारण कि भगवान का अंश होने से मात्र प्राणियों का भगवान के साथ अखंड, अटूट और नित्य संबंध है। प्रायः प्राणी मात्र से गलती यह हुई कि उन लोगों ने जो अनित्य है उनसे तो पूरा आसक्ति का संबंध बना लिया और जो नित्य तत्व हैं (ईश्वर) जो खास अपने हैं, उनको अपना मानना छोड़ दिया।

भक्त के प्रकारः— श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार भक्त के भेद के परिप्रेक्ष्य में आप समझ सकते हैं

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। गीता (7/16)

अर्थात् हे भरतवंशी अर्जुन। चार प्रकार के पुण्यशाली मनुष्य मेरा भजन करते हैं यानि उपासना करते हैं। वे हैं आर्त, जिज्ञासु, अर्थाथी तथा ज्ञानी।

1. **आर्त भक्त—** शिक्षार्थियों आप द्रोपदी के चीर हरण की कथा का स्मरण कीजिए। द्रोपदी ने दुःशासन द्वारा चीर हरण के दौरान आर्त भाव से भगवान कृष्ण को पुकारा है और भगवान कृष्ण स्वयं उसकी रक्षा के लिए प्रकट हुए। तात्पर्य है कि आर्त भक्त वो कहलाते हैं जब वे गम्भीर संकट में फंस जाते हैं तो वे अपने आराध्य को आर्त भाव से पुकारते हैं और उसकी शरण में जाते हैं।

2. **जिज्ञासु भक्त —** जिज्ञासु जैसा नाम से स्पष्ट है कि ईश्वर के विषय में जिज्ञासा रखने वाले— अर्थात् आत्मा एवं ब्रह्मम को जानने की इच्छा रखने वाले भक्त जिज्ञासु भक्त कहलाते हैं।

3. **अर्थार्थी भक्त—** समस्त संसार के व्यक्ति इस श्रेणी में आते है ऐसे भक्त जो किसी सांसारिक वस्तु , मकान, जमीन, धन, स्त्री ,वैभव, मान—सम्मान, परीक्षाओं में सफलता आदि के लिए अपने आराध्य को स्मरण करते हैं। ऐसे भक्त अर्थार्थी भक्त कहलाते हैं।

4. **ज्ञानी भक्त—** ज्ञानी भक्त ऐसे भक्त है जो आत्म—कल्याण, ब्रह्म की प्राप्ति के लिए अपने आराध्य को पूजते हैं।

चित्र 4.2: मीराबाई—भक्तियोग

उपरोक्त चार प्रकार के भक्तो में ज्ञानी भक्त श्रेष्ठ हैं।

इस श्लोक में भगवान कहते हैं कि पवित्र कर्म करने वाले **अर्थार्थी**, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी — ये चार प्रकार के मनुष्य मेरा भजन करते हैं। अर्थार्थी भगवान से ही अपनी धन की इच्छा

पूरी कराना चाहता है। आर्त भगवान से ही अपना दुःख मिटाना चाहता है। जिज्ञासु भगवान से ही अपनी जिज्ञासा शान्त कराना चाहता है। किन्तु जब भक्त एवं भगवान के सिवाय कुछ भी नहीं चाहता, तब वह ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्त होता है। इन चार भक्तों में मुझमें निरंतर लगा हुआ अनन्य भक्तिवाला ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्त श्रेष्ठ है, क्योंकि ज्ञानी भक्त को मैं अत्यंत प्रिय हूँ और वह मुझे अत्यंत प्रिय है। (7:17) ये चारों भक्त बड़े उदार हैं परन्तु ज्ञानी तो मेरा स्वरूप ही है –भक्त ऐसा मेरा मत है। कारण कि वह मुझसे अभिन्न है और जिससे श्रेष्ठ दूसरी कोई गति नहीं है, वह मुझमें ही दृढ़ स्थित है। (7:18)

तत्वज्ञानी में तो सूक्ष्म अहं रहता है, पर भक्त में अहं का सर्वथा नाश हो जाता है, इसलिए भगवान कहते हैं – *'ज्ञानी त्यात्मंव में मतम'*(7:18)। गीता में 'महात्मा' शब्द केवल भक्त के लिए ही आया है। इसी तरह 'उदार' 'युक्ततम''सर्ववित्' आदि शब्द भी भक्त के लिए ही आये हैं।

गीता में भक्तियोग की महत्ता

1. **श्रेष्ठ –** भगवान में तल्लीन अन्तःकरण वाला श्रद्धावान भक्त संपूर्ण योगियों में श्रेष्ठ है – *'स मे युक्ततमो मतः'*(6:47)। सांख्ययोगी और भक्तियोग में भक्तियोगी श्रेष्ठ है (12:2)। कारण कि विह नित्य निरंतर भगवान में ही लगा रहता है।

2. **सुगम –** भक्त का अर्पित किया हुआ पत्र, पुष्प, फल, जल आदि भगवान स्वीकार कर लेते हैं किन्तु अगर किसी के पास पत्र, पुष्पादि न हो तो वह जो कुछ करता है उसे भगवान के अर्पण करने से वह संपूर्ण बंधनों से मुक्त होकर भगवान को प्राप्त हो जाता है – *' पत्रं पुष्पं फलं तोयं ....* 9:26 से 28)। कारण कि भगवान भावग्राही हैं अतः भक्त के भाव को ग्रहण कर लेते हैं।

3. **शीघ्रसिद्धि –** ईश्वर में लगे हुए चित्त वाले भक्त का उद्धार भगवान बहुत जल्दी कर देते हैं – *तेवामंह समुद्धर्ता ....* (12:7)। कारण कि वह केवल भगवान के ही परायण रहता है, अतःउसका उद्धार करने की जिम्मेवारी भगवान पर आ जाती है।

4. **पापों का नाश –** अपने शरणागत भक्तों को शीघ्र ही भगवान संपूर्ण पापों से मुक्त कर देते हैं *'अहं' तवा सर्वपापेभ्लो मोक्षयिष्यामि'*(18:66)।

5. **संतुष्टि –** भगवान में मन लगाने पर भक्त संतुष्ट हो जाता है (10:9)। कारण कि भगवान में ज्यों–ज्यों मन लगता है उसे निरंतर संतोष होता है कि मेरे समय का सबसे अच्छा प्रयोग हो रहा है। सिद्ध हो जाने पर वह संतोष स्वतः ही रहने लगता है – *संतुष्ट सततं योगी* (12:14)। कारण कि उसको भगवान की प्राप्ति हो गयी होती है।

6. **शान्ति की प्राप्ति –** भक्त परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है – *'शान्तिं निर्वाणपरमाम'* (6:15)

   'शश्वच्छान्तिं निगच्छति'(9:31)। कारण कि उसके आश्रम में केवल भगवान ही रहते हैं।

टिप्पणी

7. **समता की प्राप्ति** – अपने भक्त को भगवान वह समता देते हैं,जिससे वह भगवान को प्राप्त हो जाता है– *ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते'* (10:10) I कारण कि वे केवल भगवान की इच्छा एवं आज्ञा पालन में ही लगे रहते हैं, भगवान के सिवाय कुछ भी नहीं चाहते I

8. **ज्ञान की प्राप्ति** – भगवान स्वयं अपने भक्त के अज्ञान का नाश करते हैं – *'तेषामेवानुकम्पार्थ................ ज्ञानदीपेन भास्वता'*(10:11) I कारण कि चूंकि भक्त भगवान में ही हमेशा लगा रहता है, भगवान के सिवाय कुछ चाहता ही नहीं; अतः भगवान अपनी ओर से ही उसके अज्ञान का नाश करके भगवत्तत्वका ज्ञान करा देते हैं I

9. **प्रसन्नता की प्राप्ति** – भक्त का अन्तःकरण प्रसन्न स्वच्छ एवं प्रशांत हो जाता है (6:14) I कारण कि वह भगवान का ध्यान करता रहता है I

भक्तियोग संपन्न करने हेतु भक्त बनना पड़ता है जिसके लक्षण गीता में इस प्रकार वर्णित है I

जो पुरुष...... द्वेषभाव से रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतु रहित दयालु है तथा ममता से रहित, अहंकार से रहित, सुख दुखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात् अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है; तथा जो योगी निरंतर संतुष्ट है, मन इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चय वाला है– वह मुझमें अर्पण किए हुए मन, बुद्धि वाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है (12:13,14)

जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष , अमर्ष, भय और उद्वेगादि से रहित है – वह भक्त मुझको प्रिय है I(12:15)

जो पुरुष आकांक्षा से रहित, बाहर, भीतर से शुद्ध, चतुर, पक्षपात से रहित और दुखों से छूटा हुआ है – वह सब आरम्भों का त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है I (12:16)

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ संपूर्ण कर्मों का त्यागी है (अर्थात् राग–द्वेषरहित है) वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है I(12:17)

जो शत्रु मित्र में और मान–अपमान में सम है तथा सर्दी–गर्मी और सुख–दुखादि द्वन्द्वों में सम है और आसक्ति से रहित है, जो निंदा–स्तुति को समान समझने वाला, मननशील और जिस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान में ममता और आसक्ति से रहित है– वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान पुरुष मुझको प्रिय है I (12:18, 19)

गीता में ज्ञानयोग से पराभक्ति (प्रेम) की प्राप्ति (18:54) और कर्मयोग से ज्ञान की प्राप्ति (4:38) बतायी गई है; किन्तु भक्ति से भगवान के दर्शन, भगवत्तत्व का ज्ञान और भगवत्तत्व में प्रवेश– ये तीनों हो जाते हैं (11:54) I यह विशेषता भक्तियोग में ही है, दूसरे योग में नहीं I अतः भक्तियोग सबसे श्रेष्ठ एवं उत्तम मार्ग है और कलिकाल के लिए तो यह विशेष उपयोगी है I

यूनिटगत प्रश्न 4.2

निम्नलिखित कथनों के सामने सही या गलत लिखिए:

1) जिज्ञासु भगवान से अपनी धन की इच्छा पूरी कराना चाहता है। ( )

2) भक्तियोग में भक्त भगवान के प्रति सर्वथा समर्पित हो जाता है। ( )

3) ईश्वर में लगे हुए चित्त वाले भक्त का उद्धार भगवान शीघ्र नहीं करते। ( )

4) भक्त परमशान्ति को प्राप्त कर लेता है। ( )

4.4 कर्मयोग

कर्मयोग अर्थात् कर्म के माध्यम से योग (जीवात्मा का परमात्मा से मिलन) को फलीभूत करने को कहते है। कर्म शब्द 'कृ' धातु से निकलता है, 'कृ' धातु का अर्थ है करना। अतः कर्मयोग में कर्म शब्द का अभिप्राय 'कार्य' ही है।

जो व्यक्ति भगवान के प्रति कर्तव्य भावना से अधिक प्रेरित होते हैं वे कर्मयोग के मार्ग से भगवान तक पहुँचना चाहते हैं – इसी पद्धति को कर्मयोग का मार्ग कहा गया है। भगवतप्राप्ति के विभिन्न मार्ग जैसे ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, हठयोग, मंत्रयोग, नादयोग आदि बिल्कुल पृथक्–पृथक् विभाग नहीं हैं। प्रधानता के आधार पर ये विभाग किये गये हैं। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होता जिसमें कर्म के अतिरिक्त भक्ति, ज्ञान आदि की शक्ति ही न हो, उसी प्रकार ऐसा व्यक्ति भी नहीं देखा जाता जिसमें केवल भक्ति या केवल ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ न हो। ये विभाग मनुष्य की प्रधान प्रवृत्ति के अनुसार किए गए हैं। अन्ततोगत्वा सभी मार्ग एक ही लक्ष्य पर जाकर एक हो जाते हैं।

कर्मयोग का विवेचन प्रधानतः दो ही प्रश्नों के उत्तर में परिसमाप्त हो जाता है।

1. पहला; किस प्रकार का कर्म करना चाहिए?
2. दूसरा; उसे करने की यथार्थ विधि क्या है?

श्रीमद्भगवतगीता जो समस्त शास्त्रों का सार है पहले प्रश्न के उत्तर में कहती है –

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।। (16:24)

अर्थात्

कौन सा कर्म करना चाहिए और कौन सा नहीं करना चाहिए इसका निर्णय करने के लिए तुम्हारे पास शास्त्र ही प्रमाण है। इस विषय में शास्त्र की आज्ञा जानकर तुम्हें उसी के अनुसार कर्म करने चाहिए।

टिप्पणी

नियतं कुरु कर्म त्वं (गीता 3:8) अर्थात् तू शास्त्रविहित कर्तव्यकर्म कर–के द्वारा भी भगवान ने स्पष्टतः शास्त्र अनुमोदित कर्म ही करने की आज्ञा सभों को दी है।

हमलोग इस जन्म से पहले असंख्य बार इस संसार में जन्म ले चुके हैं। उन पूर्वजन्मों में भी मनुष्य योनि कभी तिर्यग्योनि और कभी कीटपतंग आदि की योनि प्राप्त हुई होगी। उन जन्मों में हम जो कुछ कर्म कर आये हैं उन्हीं के संस्कार इस जन्म में वासनारूप से हमारे चित्त में मौजूद हैं और बहुधा हमें अनुचित कर्म करने को प्रेरित करते हैं। अध्यात्ममार्ग में आगे बढ़ने के लिए (जिसके बिना मनुष्य का उद्धार हो ही नहीं सकता), यह आवश्यक है कि हम सारी इच्छाओं और आसक्तियों से सर्वथा मुक्त हो जायें। इच्छा और आसक्ति से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है –शास्त्र विहित कर्म करना। ऐसा करने से हम अपनी दूषित इच्छाओं और आसक्तियों से मुक्त हो जाते हैं और सदाचार एवं धर्म में स्थित होकर अपना एवं विश्व का मंगल कर सकते हैं।

गीता के नवें अध्याय के श्लोक संख्या 21 में भगवान कहते हैं – सकाम कर्म को करने वाले उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्ग के साधनरूप तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्म का आश्रय लेने वाले और भोगों की कामनावाले पुरुष बार–बार आवागमन को प्राप्त होते हैं अर्थात् पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग में जाते हैं और पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आते हैं।

केवल स्वर्ग ही नहीं ब्रह्मलोक तक की भी प्राप्ति मनुष्य कामना सहित कर्म करते हुए पा ले तो भी उसे जन्म मरण के चक्र से मुक्ति नहीं मिलती। भगवान ने गीता के 8:16 में निर्णय दिया है कि ब्रह्मलोक पर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती (जिसको प्राप्त होकर पीछे संसार में आना पड़े) है, परंतु मुझको (भगवान को) प्राप्त करके पुनर्जन्म नहीं होता। अतः केवल भगवत प्राप्ति एवं प्रीति के निमित्त कर्तव्य कर्म करना चाहिए।

हमारा दूसरा प्रश्न कि कर्म करने की यथार्थ/सही विधि क्या है, के उत्तर में गीता को भगवान का उपदेश इस प्रकार से मनुष्य के परम कल्याण हेतु बता दिया गया है।

1. अनासक्त होकर कर्त्तव्य कर्म करने का आदेश। (3:19)
2. कर्म के सम्पादन में फलाकांक्षा का त्याग। (2:47)
3. युद्धस्तर पर कर्तव्य कर्म करने की आज्ञा (8:7)
4. कर्तापन के अभिमान को त्यागकर कर्तव्य कर्म करने की आज्ञा। (3:27)
5. धृति/धैर्य और उत्साह से युक्त होकर कर्तव्य कर्म करने की आज्ञा। (18:26)
6. समस्त कर्तव्यकर्मों को परमात्मा में अर्पित कर कर्म बंधन से मुक्त हो जायें। (3:41)
7. लोक संग्रह (लोक शिक्षा एवं कल्याण) के लिये कर्तव्य कर्म करें। (3:25)
8. कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। (3:8)
9. केवल ईश्वर के लिए संपूर्ण कर्तव्य कर्मों को करना। (11:55)

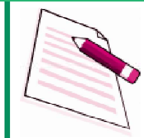

टिप्पणी

सारांश में जो पुरुष शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है वह न सिद्धि को प्राप्त होता है न परम गति को और न सुख को ही। (16:23) भगवान का वादा है कि मेरे परायण हुआ कर्मयोगी संपूर्ण कर्तव्य कर्मों को सदा करता हुआ मेरी कृपा से सनातन अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जाता है।

तीन प्रकार के कर्म गीता में भगवान ने बताए हैं :

1. जो कर्म शास्त्र विधि से नियत किया हुआ कर्तापन के अभिमान से रहित हो तथा फल न चाहने वाले पुरुष द्वारा बिना राग द्वेष के किया गया हो वह सात्विक कहा जाता है। (18:23)

2. परन्तु जो कर्म बहुत परिश्रम से युक्त होता है तथा भोग को चाहने वाले अहंकारी पुरुषों द्वारा किया जाता है वह कर्म राजस कहा गया है। (18:24)

3. जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न विचारकर केवल अज्ञान से आरंभ किया जाता है वह कर्म तामस कहा जाता है। (18:25)

तीन प्रकार के कर्मों के कर्ता के लक्षण भगवान ने गीता में बताए हैं –

1. जो कर्ता संगरहित, अहंकार के वचन न बोलने वाला, धैर्य और उत्साह से युक्त तथा कार्य के सिद्ध होने और न होने से हर्ष शोकादि विकारों से रहित है – वह सात्विक कहा जाता है। (18:26)

2. जो कर्ता आसक्ति से युक्त, कर्मों के फल को चाहने वाला और लोभी है तथा दूसरों को कष्ट देने के स्वभाव वाला, अशुद्धाचारी और हर्ष शोक से लिप्त है– वह राजस कहा जाता है। (18:27)

3. जो कर्ता आयुक्त, शिक्षा से रहित, घमण्डी, धूर्त और दूसरों की जीविका का नाश करने वाला तथा शोक करने वाला, आलसी और दीर्घसूत्री (देर से करने वाला) है– वह तामस कर्ता कहा जाता है। (18:28)

गीता में कर्मयोग की महत्ता

1. **श्रेष्ठ –** कर्मयोग ज्ञान से श्रेष्ठ है (5:2) कारण कि कर्मयोग में संपूर्ण कर्म कर्तव्य परंपरा सुरक्षित रखने के लिए अर्थात् दूसरों के लिए ही किये जाते हैं। अतः अपने सुख–आराम, आदर, महिमा, विद्या–बुद्धि का अभिमान, भोग और संग्रह की इच्छा आदि का त्याग सुगमता से हो जाता है, जबकि ज्ञानयोग में विवेक विचार के द्वारा अपने सुख आराम का त्याग करने में कठिनता पड़ती है। कर्मयोग ध्यानयोग से भी श्रेष्ठ है। (12:12)

2. **सुगम –** कर्मयोगी सुखपूर्वक बंधन से मुक्त हो जाता है – *'सुखं बन्धात्प्रभुच्यते'* (5:3) कारण कि उसमें राग द्वेष नहीं होते, प्रत्युत समता रहती है। ऐसे तो संपूर्ण मनुष्य कर्म करते ही हैं, पर राग द्वेष होने से, सिद्धि असिद्धि में सुखी दुखी होने से वे बंधन से मुक्त नहीं हो पाते।

टिप्पणी

3. **शीघ्रसिद्धि** – समता युक्त कर्मयोगी बहुत जल्दी परमात्मतत्व को प्राप्त हो जाता है – *'योगयुक्तोमुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति'* (5:6)। कारण कि उसमें कर्म और कर्मफल की आसक्ति नहीं होती और संसार का आश्रय नहीं रहता। (4:20)
4. **पापों का नाश** – जो केवल यज्ञ के लिए अर्थात् कर्तव्य परंपरा को सुरक्षित रखने के लिए ही कर्म करता है उसके संपूर्ण कर्म, पाप विलीन हो जाते हैं। (4:23)
5. **संतुष्टि** – कर्मयोगी अपने आपमें संतुष्ट हो जाता है (2:55)(3:17)। कारण कि उसमें संपूर्ण कामनाओं का सर्वथा त्याग होता है। अतः उसकी संतुष्टि पराधीन नहीं होती।
6. **शान्ति की प्राप्ति** – कर्मयोगी शान्ति को प्राप्त हो जाता है (2:71)(5:12)। कारण कि उसमें कामना, ममता आदि नहीं रहते अर्थात् उसका संसार से संबंध नहीं रहता।
7. **समता की प्राप्ति** – कर्मयोगी सिद्धि और असिद्धि में सम हो जाता है – *'समः सिद्धावसिद्धौ च'* (4:22)। कारण कि उसको कर्म की सिद्धि असिद्धि, पूर्ति – आपूर्ति में हर्ष शोक, राग–देष नहीं होते।
8. **ज्ञान की प्राप्ति** – कर्मयोग से सिद्ध हुए मनुष्य को अपने स्वरूप का ज्ञान (बोध) अपने आप हो जाता है (4:38)। कारण कि उसमें संसार का आकर्षण, जड़ता नहीं रहती। जड़ता न रहने से स्वतः सिद्ध स्वरूप रह जाता है।
9. **प्रसन्नता (स्वच्छता) की प्राप्ति** – कर्मयोगी, अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त हो जाता है – *'प्रसादमधिगच्छति'* (2:64)। कारण कि राग द्वेष–पूर्वक विषयों का सेवन करने से ही अन्तःकरण में अशान्ति होती है परन्तु कर्मयोगी राग द्वेष रहित होकर साधना करता है जिससे उसका अन्तःकरण स्वच्छ, निर्मल हो जाता है।

यूनिटगत प्रश्न 4.3

निम्नलिखित कथनों के सामने सही या गलत लिखिए।

1) कर्म योग में कर्म शब्द का अभिप्राय कार्य से है। ( )
2) मनुष्य को अनासक्त होकर कर्तव्य पालन करना चाहिए। ( )
3) मनुष्य को फल की इच्छा करते हुए कर्म करना चाहिए। ( )
4) कर्मयोगी सुखपूर्वक बंधन से मुक्त हो जाता हे। ( )

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आप समझ चुके हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता में बहुत ही सुन्दर ढंग से ज्ञान योग, कर्म योग तथा भक्तियोग का वर्णन किया गया है। वास्तव में श्रीमद्भगवद्गीता एक सम्पूर्ण

योग शास्त्र है। जिसे योग उपनिषद भी कहा गया है। इसमें मनुष्य की दिनचर्या से लेकर आहार विहार, ज्ञान योग, भक्ति योग एवं कर्म योग को स्पष्ट रूप से समझाया गया है, जो मनुष्य को योगमय जीवन जीने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है और उत्कृष्ट मार्ग दर्शन देता है।

ज्ञान योग ऐसा योग है जिसके माध्यम से मनुष्य ईश्वर से साक्षात्कार करता है और भक्ति योग प्रेम की उच्च पराकाष्ठा है। जबकि कर्म योग कर्म के माध्यम से जीवात्मा का परमात्मा से मिलन कराता है।

यूनिटांत प्रश्न

1. श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित ज्ञान योग का उल्लेख कीजिए।
2. श्रीमद्भगवद्गीता में मुख्य रूप से प्रकाशित ज्ञान योग, कर्म योग एवं भक्ति योग को विस्तार पूर्वक समझाइए।
3. भक्ति योग क्या है? श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार भक्ति योग पर प्रकाश डालिए।
4. श्रीमद्भगमवद्गीता के अनुसार कर्म योग का उल्लेख कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

4.1

1. ज्ञान योग ऐसा योग है जिसमें मनुष्य तत्व ज्ञान को ग्रहण कर ईश्वर से साक्षात्कार करता है।
2. ज्ञान योग की दो विशेषताएं –

   क) श्रेष्ठ

   ख) संतुष्टि
3. दो साधन :

   क) श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव

   ख) दम्भाचरण का अभाव

4.2

1) जिज्ञासु भगवान से अपनी धन की इच्छा पूरा कराना चाहता है। (गलत)

2) भक्तियोग में भक्त भगवान के प्रति सर्वथा समर्पित हो जाता है। (सही)

टिप्पणी

3) ईश्वर में लगे हुए चित्त वाले भक्त का उद्धार भगवान शीघ्र नहीं करते। (गलत)

4) भक्त परमशान्ति को प्राप्त कर लेता है। (सही)

4.3

1) कर्म योग में कर्म शब्द का अभिप्राय कार्य से है। (सही)

2) मनुष्य को अनासक्त होकर कर्तव्य पालन करना चाहिए। (सही)

3) मनुष्य को फल की इच्छा करते हुए कर्म करना चाहिए। (गलत)

4) कर्मयोगी सुखपूर्वक बंधन से मुक्त हो जाता हे। (सही)

5

पातंजल योगसूत्र

प्रिय शिक्षार्थियों, योग के स्वरूप को व्यवस्थित ढंग से समझने के लिए यह परम आवश्यक है कि, योग के ऐतिहासिक और दार्शनिक विकास क्रम को सही रूप में समझा जाये। पिछली यूनिट में आप, योग परिचय, उद्भव एवं इतिहास, योग के मुख्य पंथ और ग्रंथ आदि के विषय में अध्ययन कर चुके हैं। आप जान चुके हैं कि योग प्राचीन काल से मानव की संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। योग के इतिहास से यह स्पष्ट हो चुका है कि सभी प्राचीन ग्रंथों (वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, भगवद् कथाओं, श्रीमद्भगवद्गीता आदि) में योग का उल्लेख मिलता है। आज योग पर, योग दर्शन, घेरण्ड संहिता, हठयोग प्रदीपिका, शिव संहिता, वशिष्ठ संहिता आदि मुख्य ग्रंथ सुप्रसिद्ध हैं, जिनके माध्यम से योग के सही स्वरूप को विस्तार से समझा जा सकता है। इन सभी ग्रंथों में पातंजल योग सूत्र, एक सुप्रसिद्ध योग ग्रंथ है, जिसमें सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध तरीके से योग का वर्णन मिलता है। इस यूनिट में हम पातंजल योग सूत्र पर चर्चा करेंगे और योग की विचारधारा को व्यवस्थित रूप से समझने के लिए, इसके ऐतिहासिक एवं दार्शनिक पक्षों को समझेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन के पश्चात् आप–

- भारतीय परम्परा में योग के स्वरूप को समझा सकेंगे
- योग के महत्वपूर्ण तथा अद्वितीय ग्रंथ का परिचय करा सकेंगे,

टिप्पणी

- योग सूत्र के ऐतिहासिक महत्व एवं स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे,
- योग सूत्र के अनुसार योग की परिभाषा पर प्रकाश डाल सकेंगे।

5.1 भारतीय परम्परा में योग का स्वरूप

भारतीय परम्परा में योग का स्वरूप समझने के लिए हमें, भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं के विभिन्न आयामों पर विचार करना आवश्यक है। आइये सबसे पहले ऐतिहासिक संदर्भों में योग के स्वरूप को समझे।

5.1.1 ऐतिहासिक संदर्भों में योग

भारतीय परम्परा विश्व की सबसे प्राचीन परम्परा है, जो हमारे पूवर्जों की अनमोल धरोहर है। सिन्धु घाटी की सभ्यता विभिन्न दृष्टिकोण के माध्यम से विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यता रही है। 1921—1922 में हुई खुदाई के दौरान प्राप्त योग सम्बंधी सामग्री, ध्यान मुद्रा में स्थित मूर्तियां तथा कई अन्य आसनों से सम्बंधित अवशेष इस बात का स्पष्ट संकेत करते हैं कि उस समय लोगों को, योग के विभिन्न पहलुओं की जानकारी थी।

यदि योग के आदि प्रवर्तक की चर्चा की जाये तो महाभारत के अनुसार सांख्य के आदि वक्ता कपिल और योग के आदि वक्ता हिरण्यगर्भ हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि हिरण्यगर्भ एक ऋषि थे। वैसे हिरण्यगर्भ का अर्थ परमात्मा भी है। जिन्होंने योग का प्रथम उपदेश किया और बाद में अन्य आचार्यों ने अपने—अपने ग्रंथों से योग प्रणाली का विस्तार दिया। पतंजलि महर्षि ने भी इसी क्रम में अपने योग सूत्रों को सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध तरीके से उस समय उपलब्ध ा योग प्रणालियों के आधार पर रचना की। इसी कारण महर्षि पतंजलि को योग सूत्र का सम्पादक या संकलन कर्ता कहा जाता है।

उपरोक्त आधार पर यह बिल्कुल स्पष्ट है कि, हिरण्यगर्भ ही एक मात्र ऐसे पहले ऋषि हुए जिन्होंने सर्वप्रथम योग की आधारशिला रखी। और पातंजल योग सूत्र के बाद अन्य कोई योग का ऐसा ग्रंथ प्राप्त नहीं होता, जिसके द्वारा योग का इतना व्यवस्थित स्वरूप प्राप्त हो सके। इस प्रकार वेद, उपनिषद, महाभारत आदि ग्रथों और सिन्धु घाटी की सभ्यता से प्राप्त तथ्यों के आधार पर योग की ऐतिहासिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

5.1.2 दार्शनिक संदर्भों में योग

प्रिय शिक्षार्थियो, ऐतिहासिक संर्दभों में योग को जानने के पश्चात्, इसके दार्शनिक पक्ष पर विचार करें। भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं ने, इसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सबसे पहले हम, वैदिक विचारधारा पर नजर डालें, तो योग का उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर मिलता है। इस प्रकार सांकेतिक रूप से योग का स्वरूप, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, वेदों में देखने को मिलता है। हमारे सभी दर्शन वेदों में अपनी प्रमाणिकता सिद्ध करते हैं। योग के साक्ष्य वेदों में मिलने के कारण, हम यह कह सकते हैं कि, योग भी वेद सम्मत है।

यदि हम अन्य दर्शनों पर दृष्टि डालें, तो वहाँ भी योग, विस्तार से देखने को मिलता है। बौद्ध जैन आदि अवैदिक कहे जाने वाले दर्शनों में भी योग के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

आप समझ सकते हैं कि जिस दर्शन में साधना है, वहाँ साधना के केन्द्र में योग है। और योग, प्रत्येक दर्शन की उपासना पद्धति का महत्वपूर्ण अंग है।

यूनिटगत प्रश्न 5.1

सत्य/असत्य बताईये—

क) योग के प्रथम वक्ता हिरण्यगर्भ माने जाते हैं। ( )

ख) सांख्य के आदि वक्ता कपिल हैं। ( )

ग) बौद्ध दर्शन वैदिक है। ( )

घ) सिन्धु घाटी की सभ्यता विश्व की प्राचीन सभ्यता है। ( )

5.2 योग सूत्र के प्रणेता का परिचय

योग पर बहुत से ग्रंथ लिखे गये जिनमें, सार रूप में बहुत सी जानकारियाँ उपलब्ध होती हैं। इन ग्रंथों में योग परक विभिन्न दार्शनिक सिद्धांतों को सार रूप में प्रस्तुत करने का हर संभव प्रयास किया गया है। योग सूत्र इसी प्रकार का एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सुव्यवस्थित ग्रंथ है।

इसका परिचय प्राप्त करने के लिए आईये, सर्वप्रथम योग सूत्र के संकलनकर्ता महर्षि पतंजलि के विषय में जानें —

विद्वानों के अनुसार पतंजलि नाम के आचार्य का विवरण मुख्य रूप से तीन संदर्भों में प्राप्त होता है—

1. योग सूत्र के रचयिता के संदर्भ में
2. पाणिनी व्याकरण के महाभाष्यकार के संदर्भ में
3. आयुर्वेद के किसी संदेहास्पद ग्रंथ के रचयिता के संदर्भ में

इस विषय में एक बड़ा सुन्दर एवं प्रसिद्ध श्लोक मिलता है—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचामलं शरीरस्यच वैद्यकेन।

योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतंजलि प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।

जिसका अर्थ है कि मैं ऐसे पतंजलि मुनि को करबद्ध होकर प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने योग के द्वारा चित्त की शुद्धि, व्याकरण द्वारा वचन शुद्धि और आयुर्वेद द्वारा शरीर की शुद्धि का उपाय

टिप्पणी

बताया। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि इन तीनों कार्यों का श्रेय पतंजलि मुनि को जाता है।

यह मान्यता प्राचीन काल से ही प्रचलन में है और भर्तृहरि, भोजराज, समुद्रगुप्त आदि महान विभूतियों ने इस श्लोक को अनेक बार दोहराया है।

पतंजलि के विषय में विद्वानों के अलग–अलग मत हैं।

एक प्रचलित मान्यता में पतंजलि को शेषनाग का अवतार बताया जाता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि ये कश्मीर में रहने वाले नागू जाति के ब्राह्मणों के बीच पैदा हुए थे। अद्भुत शास्त्र ज्ञान एवं प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण इनको एक हजार जीभ वाली शेषनाग अवतार की काल्पनिक उपाधि मिल गई होगी।

कहीं पर ऐसा विवरण भी है कि पतंजलि अपने शिष्यों को पर्दे के पीछे से पढ़ाते थे और पर्दा उठाकर न देखने के कड़े निर्देश थे।

एक दिन किसी ने जिज्ञासा वश पर्दा उठाकर देख लिया, तो उन्होंने अपनी एक हजार जिह्वाओं से विष फेंककर सबकुछ नष्ट कर दिया। भाग्यवश कोई एक आदि छात्र बचकर भाग आया, जिसके बाद उनके उपदेशों का संग्रह हुआ।

कहीं इस प्रकार की दंतकथा भी मिलती है, कि एक बार प्रातःकाल एक ब्राह्मण नदी में खड़े होकर सूर्य को अर्घ्य दे रहे थे तभी उनकी अंजलि में एक बालक आ गिरा, जिसके कारण इनका नाम पतंजलि पड़ा।

चित्र 5.1: महर्षि पतंजलि

टिप्पणी

5.3 योग सूत्र

प्रिय शिक्षार्थियों, आप यह महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर चुके हैं कि पतंजलि, योग सूत्र के मूल लेखक नहीं अपितु संकलनकर्ता माने जाते हैं। उन्होंने अपने समय में प्रचलित योग की विभिन्न पद्धतियों का संग्रह किया और सूत्र के रूप में अपने ग्रंथ में, संग्रहित किया। योग सूत्र योग के विभिन्न बड़े–बड़े सिद्धांतों और विषयों पर लिख गया संक्षिप्त रूप है। इसमें बड़े–बड़े सिद्धांतों तथा दार्शनिक विचारों को बड़े ही सरल, सुव्यवस्थित एवं प्रमाणिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। योग सूत्र को चार पादों में विभाजित किया गया है–

योग सूत्र (कुल सूत्र–195)

समाधि पाद	साधन पाद	विभूति पाद	कैवल्य पाद
(51सूत्र)	(55सूत्र)	(55सूत्र)	(34सूत्र)

1. समाधि पाद

समाधि पाद योग सूत्र का प्रथम पाद है, जिसमें कुल 51 सूत्र हैं। इसमें समाधि से सम्बंधित सभी दार्शनिक सिद्धांतों और विषयों का व्यवस्थित वर्णन मिलता है, साथ ही समाधि की स्थिति को प्राप्त करने के लिए यौगिक पद्धतियों का वर्णन मिलता है।

इस पाद में सबसे पहले, योग की परिभाषा बताई गई है। यहाँ पर भाष्यों के अंतर्गत यह भी स्पष्ट किया गया है कि योग समाधि है। समाधि के दो भाग बताएं गये हैं, सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। समाधि की स्थिति को प्राप्त करने के, साधनों के विषय में विस्तार से बताया गया है। जिसमें सर्वप्रथम अभ्यास तथा वैराग्य की चर्चा की है।

विद्वानों के अनुसार यह समझाया गया है कि इस पाद के अन्तर्गत बताए गये अभ्यास सामान्य योगाभ्यासी के लिए नहीं हैं, अपितु उच्च कोटि के साधकों के लिए हैं, जिनका चित्त पहले से ही स्थिर हो चुका है। उन्हीं साधकों को ध्यान में रखते हुए, यहाँ पर अभ्यासों की चर्चा की है।

ईश्वर प्रणिधान और ईश्वर के स्वरूप की चर्चा भी इसी पाद में की गई है। इस प्रकार विभिन्न विषयों की विस्तार से चर्चा करने के साथ–साथ, योग के दार्शनिक स्वरूप को बहुत ही सुन्दर ढंग से समझाने का प्रयास किया गया है। किन्तु समाधि के भेद प्रभेद, चित्त निरोध आदि के उपाय आदि का वर्णन इसी पाद में मिलता है।

2. साधन पाद

साधन पाद में योग प्राप्ति के विभिन्न साधनों का वर्णन किया गया है। जैसा कि प्रथम पाद में स्पष्ट किया गया है कि समाधि पाद के अंतर्गत बताए गये अभ्यास मध्यम और

साधारण साधकों के लिए उपयुक्त नहीं है। न ही वे उन अभ्यासों को कर पाने में सक्षम हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर, इस पाद के प्रारम्भ में ही स्पष्ट किया गया है कि, मध्यम अधिकारी के लिए क्रियायोग ही सर्वोत्तम साधन है। इस क्रिया योग में, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान का उल्लेख किया गया है। पंच क्लेशों का विस्तृत वर्णन भी इसी पाद में मिलता है। साथ ही साधारण साधकों के लिए अष्टांग योग का, सुन्दर वर्णन इसी पाद में समझाया गया है, जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही उनसे प्राप्त सिद्धियों का भी वर्णन किया गया है।

इस पाद में इसके पश्चात्, विभिन्न दार्शनिक विषयों का वर्णन किया गया है। इसमें द्रष्टा और 'दृश्य' प्रमुख हैं। यहाँ पर पुरूष को द्रष्टा और प्रकृति को दृश्य कहा गया है। इन दोनों में विवेकज्ञान का प्राप्त होना ही, योग की प्राप्ति है। जबकि इन दोनों की मिली हुई अवस्था के कारण ही अविद्या की स्थिति बनी रहती है।

चतुर्व्युहवाद का भी स्पष्ट विवेचन, इसी पाद में किया गया है। हेय–दुख का वर्णन, हेय–हेतु–दुख के कारण मोक्ष प्राप्ति का उपाय सम्मिलित किया गया है। और कर्म फल का सिद्धांत भी इसी पाद के अन्तर्गत रखा गया है।

3. विभूति पाद

धारणा ध्यान समाधि के वर्णन से इस पाद का प्रारम्भ किया गया है। इसमें बड़े ही रहस्यास्पद एवं रोचक विषयों का समावेश किया गया है। यहाँ दार्शनिक विषयों का उल्लेख बहुत कम मिलता है। इसमें धर्म–धर्मी आदि का स्वरूप, चित्त के परिणाम आदि की विवेचना मिलती है। धारण–ध्यान, समाधि को यहाँ, सम्मिलित रूप से संयम बताया गया है।

विभूतिपाद का प्रमुख विषय संयम जनित विभूतियां हैं। इसी कारण इसका नाम विभूति पाद रखा गया है। विभूति का अर्थ यहाँ पर सिद्धियों से है।

उदाहरण के लिए– चन्द्रमा में संयम करने से तारों का ज्ञान, ध्रुव तारे में संयम करने से तारों की गति का ज्ञान, सूर्य में संयम करने से भुवनों का ज्ञान, कंठ कूप में संयम करने भूख'–प्यास की निवृत्ति आदि विभिन्न सिद्धियां तथा विभूतियां, संयम के परिणाम से प्रकट होनी बताई गई है। उपरोक्त सब विषयों के समावेश के कारण यह पाद, बहुत ही रोचक ढंग से योग दर्शन की प्रस्तुति प्रदान करता है और अपने नाम के अनुसार सार्थकता दर्शाता है। यहाँ पर एक और महत्वपूर्ण बात ध्यान देने योग्य है, कि इन सब विभूतियों का वर्णन करने के साथ–साथ यह भी स्पष्ट किया गया है कि ये सभी सिद्धियां और विभूतियां योग मार्ग में बाधक हैं। इनका साधन नहीं करना चाहिए अन्यथा योग के लक्ष्य को पाना संभव नहीं है। ये सारी विभूतियां तो योग मार्ग में हमारी सही स्थिति का आंकलन कराती हैं, जिससे योग पथ पर संदेह के बिना आगे बढ़ा जा सके।

टिप्पणी

4. कैवल्य पाद

योग सूत्र में कैवल्य पाद चौथा एवं अन्तिम पाद है, जिसमें कुल 34 सूत्र हैं। जैसे कि नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह पाद योग के लक्ष्य, कैवल्य की स्थिति को बताने वाला है। इस पाद में आप यह भी देखेंगे कि इसमें योग के दार्शनिक स्वरूप की भी चर्चा विस्तार से मिलती है।

इस पाद के प्रारम्भ में पांच प्रकार से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का वर्णन किया गया है। इसमें बताया गया है कि सिद्धियां निम्नांकित पांच प्रकार से प्राप्त होती हैं–

अ) जन्म से

ब) औषधि से

स) मंत्र से

द) तप से

ड) समाधि से

इसमें समाधि से प्राप्त होने वाली सिद्धि को शुद्ध माना गया है, जिसमें स्पष्ट किया गया है कि समाधि में वासना जन्य संस्कार नहीं होते, इसीलिए समाधि से प्राप्त होने वाली सिद्धि भी पवित्र संस्कार वाली होती है इस पाद में निर्माण चित्त, चतुर्विध कर्म, वासना आदि पर बड़े सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला है। जीवन मुक्त की मनोवृत्ति का समुचित वर्णन करते हुऐ (अन्त में) कैवल्य का स्वरूप बताकर, योग सूत्र का समापन किया गया है। अन्य पादों को देखते हुए, यह पाद सबसे छोटा है। परन्तु यह सबसे महत्वपूर्ण पाद है, इसके बिना योग सूत्र की पूर्णता नहीं हो सकती। अतः इस पाद की महत्ता और अधिक बढ़ जाती है।

यूनिटगत प्रश्न 5.2

1. सत्य/असत्य का चयन कीजिए–

क) योग सूत्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि हैं। ( )

ख) योग सूत्र में कुल चार पाद हैं। ( )

ग) कैवल्य का वर्णन योग सूत्र के प्रथम पाद में किया गया है। ( )

घ) योग सूत्र के प्रथम पाद में 51 सूत्र, द्वितीय में 55, तृतीय में 55 और चतुर्थ में 34 सूत्र हैं। ( )

ङ) क्रिया योग के अंतर्गत तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान का समावेश है। ( )

टिप्पणी

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

   क) योग सूत्र में कुल ..... पाद हैं।

   ख) क्रिया योग ..... के सर्वोत्तम साधन हैं।

   ग) पंच क्लेशों की विस्तृत चर्चा ...... पाद में मिलती है।

   घ) समाधि पाद के अंतर्गत बताए गये अभ्यास ..... के अधिकारी के लिए है।

5.4 योग सूत्र के अनुसार योग की परिभाषा

प्रिय शिक्षार्थियों, अभी तक आप योग सूत्र के ऐतिहासिक पक्ष एवं बाहरी स्वरूप को जान चुके हैं। योग सूत्र के अनुसार, योग की परिभाषा जानने से पहले हम विभिन्न मतों में दी गई योग की परिभाषाओं पर विचार करेंगे ताकि योग सूत्र में दी गई परिभाषा पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाल सकें।

5.4.1 विभिन्न मतों में योग की परिभाषा

जैसा कि आप अपनी प्रथम यूनिट में, योग की विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन कर चुके हैं। आप समझ चुके हैं कि विभिन्न ग्रंथों में योग को अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया गया है जो उनके सिद्धांतों के अनुरूप, योग की स्थिति का वर्णन करती हैं।

श्रीमद्भगवतद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण, अपने योग संदेश में जब योग का वर्णन करते हैं तो मानव को योगमय होने, कर्म करने और जीवन जीने पर प्रकाश डालते हैं। इसमें हम योग की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं में से, सबसे महत्वपूर्ण दो प्रमुख परिभाषाओं पर विचार करेंगे–

1) **योगः कर्मसु कौशलम्**' अर्थात कुशलता पूर्वक कर्म करना योग है।

   कहने का तात्पर्य यह है कि, आसक्ति को त्याग कर, मनुष्य को कुशलता पूर्वक, कर्म करने चाहिए। आसक्ति रहित, निष्काम भाव के कर्म इसी श्रेणी में आते हैं।

2) **समत्वं योग उच्यते**' अर्थात सर्वत्र स्थितियों में सम बने रहना है। अर्थात् लाभ–हानि, सुख–दुख, सम्मान–अपमान, यश–अपयश आदि जीवन की सभी स्थितियों में मनुष्य का समभाव में बने रहना योग कहलाता है।

   ये दोनों परिभाषाएं योग के क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध हैं और योग की अभिव्यक्ति श्रीमद्भगवद् गीता के संदर्भ में प्रस्तुत करती हैं।

आइये अब अन्य परिभाषाओं पर विचार करें–

पाणिनी अष्टाध्यायी में योग शब्द तीन अलग–अलग रूपों में व्यक्त किया गया है–

1. युज– समाधों अर्थात् योग समाधि है।

टिप्पणी

2. युजिर्—योगे अर्थात् योग जोड़ना है।

3. युज—संयमने अर्थात् योग संयम है।

लगभग सभी शास्त्रों में योग का प्रयोग उपर्युक्त इन्हीं तीन अर्थों में किया गया है।

सात्वत संहिता में शाण्डिल्य के अनुसार, **आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को जानना, योग हैं।** महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने योग को परिभाषित करते हुए बताया है कि, *—संयोग योग इत्युक्तो जीवात्म परमात्मनो'* अर्थात् जीवात्मा, परमात्मा के संयोग की अवस्था का नाम योग है।

सिद्ध—सिद्धांत पद्धति में, *आत्मा—परमात्मा के मिलन को योग बताया गया है।*

तंत्र के अनुसार जीव और शिव का एक रूप हो जाना योग है। विभिन्न ग्रंथों की ये परिभाषाएं लगभग एक जैसी और एक ही मत की ओर झुकी हुई प्रतीत होती हैं। जबकि कुछ विद्वानों के अनुसार योग को इस प्रकार भी परिभाषित किया गया है।

श्रीराम शर्मा के अनुसार— *'स्वयं को जानना योग है'* वही श्री अरविंद जी योग की परिभाषा देते हैं कि, *सम्पूर्ण जीवन योग है।'* और अरविंद आश्रम की श्री माँ *योग को आध्यात्मिक मनोविज्ञान के रूप में* परिभाषित करती हैं।

इस प्रकार विभिन्न मतों में योग की परिभाषाओं को देखने पर यह पता चलता है कि योग इन विभिन्न मतों में, एक साधन के रूप में विद्यमान है। योग जीवन शैली, योग साधना, योग दर्शन के बिना विभिन्न दर्शन, मत और साधना विज्ञान अपूर्ण है।

योग सूत्र में योग की परिभाषा

आइये अब, योग सूत्र में दी गई योग पर आधारित परिभाषा को जानें। योग सूत्र में समाधि पाद के अन्तर्गत, दूसरे सूत्र में योग को इस प्रकार परिभाषित किया गया है।

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।। (पातांजल योग सूत्र—1/2)

अर्थात् *चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है।* इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि योग उस विशेष अवस्था का नाम है, जिसमें चित्त में चल रही सभी वृत्तियां रूक जाती हैं। व्यास भाष्य में यह स्पष्ट किया गया है कि, योग समाधि है। और समाधि तक पहुंचने के लिए विभिन्न अभ्यास किए जाते हैं। आप पहले ही यह जान चुके हैं कि युज धातु को तीन अर्थों में प्रयोग किया गया है जो योग की परिभाषा के अनुसार बिल्कुल उपयुक्त हैं।

यहाँ आप विचार कर रहे होंगे कि यह चित्त क्या है? इस परिभाषा को ठीक से समझने के लिए हमें चित्त और वृत्ति को समझना परम आवश्यक है। आइये चित्त, वृत्तियों और इसके सम्बंध को व्यावहारिक रूप से जानें—

चित्त स्मृतियों, कल्पनाओं, संस्कारों आदि का भण्डार गृह है। आपने देखा होगा कि कुछ

टिप्पणी

बच्चे स्वभाव से बडे चंचल होते हैं और हर समय कुछ न कुछ करते रहना उनके स्वभाव में शामिल होता है। यह चंचलता उनके चंचल चित्त के कारण ही होती है। उनके चित्त में जिस प्रकार की वृत्ति यानि दृश्य कल्पनाएं, स्मृतियां, वस्तुएं आदि आती रहती हैं, उसी प्रकार के कार्य करने को अग्रसर होते हैं। लेकिन एक योगी का चित्त बिल्कुल शान्त होता है। उसमें किसी प्रकार की कोई हलचल नहीं होती, यही स्थिति योग कहलाती है। इसमें बहुत से स्तर आते हैं। इन स्तरों को योग में विभिन्न उपलब्धियों के द्वारा समझा जा सकता है। योग की वह अंतिम उपलब्धि, जिसमें चित्त बिल्कुल शान्त हो, चित्त की समाधिमय स्थिति कहलाती है।

योग विद्वानों ने चित्त की कल्पना एक सरोवर से की है। सरावर का शान्त जल, जिसमें कोई लहरें नहीं उठती, यही समाधि है जोकि एक योगी की स्थिति है।

चित्र 5.2: सरोवर की तरह योगी का चित्त

इसके विपरीत एक सामान्य जन का चित्त सरोवर के उस अशान्त जल की तरह है जैसे सरोवर के जल में कोई पत्थर पड़ते ही, लहरें उठने लगती हैं।

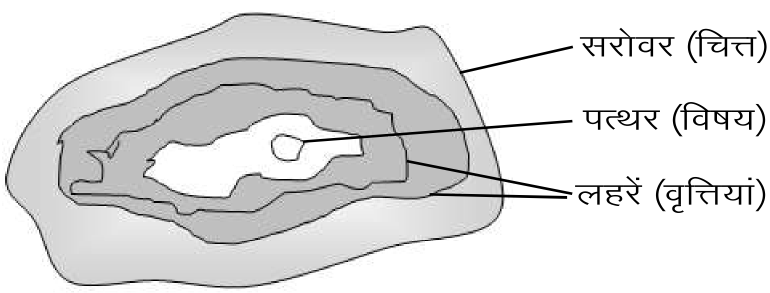

चित्र 5.3: सामान्य जन का चित्त

प्रिय शिक्षार्थियों, यहाँ यह समझना परम आवश्यक है कि पातंजल योग में, योग को समाधि कहा गया है। अन्य ग्रंथों में योग की परिभाषा, उन ग्रन्थों के अनुसार अलग अलग समझाई गई है मगर सभी का लक्ष्य एक ही है– समाधि।

संक्षिप्त सारांश में हम कह सकते हैं कि पातंजल योग सूत्र में चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियों का निरोध योग कहा गया है।

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्न 5.3

रिक्त स्थान भरिए–

क) योग कर्मसु........ ।

ख) समत्वं ...... उच्यते ।

ग) शाण्डिल्य के अनुसार *''आत्मा और ......का मिलन''* योग है ।

घ) श्री अरविन्द जी के अनुसार ...... योग है ।

ड) समाधिपाद में योग की परिभाषा, ''योगश्चित्त वृत्ति .....'' दी गई है ।

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आपने सीखा कि–

- योग हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है, जो प्राचीन काल से, ही हमारी विभिन्न परम्पराओं से जुड़ा है ।
- योग साधना का लक्ष्य, कैवल्य प्राप्ति है ।
- वैदिक ग्रंथ, उपनिषद, पुराण और दर्शन आदि में योग का वर्णन मिलता है जिससे यह बात प्रमाणित हो जाती है कि योग वैदिक काल से ही सृष्टि में उपलब्ध है ।
- सिन्धु घाटी मोहन–जोदड़ो आदि ऐतिहासिक स्थलों की खुदाई में प्राप्त अवशेष, योग की प्रमाणिकता को सिद्ध करते हैं ।
- हिरण्यगर्भ नामक. ऋषि निश्चित रूप से योग के प्रवर्तक माने जाते हैं, लेकिन महर्षि पतंजलि का योगदान, भारतीय योग दर्शन के क्षेत्र में सबसे बड़ी उपलब्धि है ।
- महर्षि पतंजलि ने योग को व्यावहारिक, सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध तरीके से पातंजल योग सूत्र में प्रस्तुत किया है ।
- पातंजल योग सूत्र में कुल चार पाद हैं जिसमें 195 सूत्र हैं ।
- महर्षि पतंजलि ने, योग शब्द को समाधि के अर्थ में प्रयुक्त किया है । और व्यास जी ने योग समाधि कहकर, योग शब्द का अर्थ, समाधि ही किया है ।
- चित्त की वृत्ति का निरोध करना ही योग है । चित्त का तात्पर्य अंतः करण से है । बाह्यकरण ज्ञानेन्द्रियां, जब विषयों को ग्रहण करती हैं, मन उस ज्ञान को आत्मा तक पहुँचाता है ।

टिप्पणी

- आत्मा साक्षी भाव से देखती है, तब बुद्धि और अहंकार विषय का निश्चय कर, उसमें कर्तव्य भाव लाते हैं। इस सम्पूर्ण क्रिया के दौरान चित्त में जो प्रतिबिम्ब बनता है, वह वृत्ति कहलाता है। चित्त दर्पण के समान है। विषय उसमें आकर प्रतिबिम्बित होता है।
- इस प्रकार चित्त विषयाकार हो जाता है। इस चित्त को विषयाकार होने से रोकना ही वास्तव में योग है।

यूनिटांत प्रश्न

1. भारतीय परम्परा में, योग के स्वरूप का, विस्तार में वर्णन कीजिए।
2. महर्षि पतंजलि के पांतजल योग सूत्र का परिचय देते हुए, इसके ऐतिहासिक महत्व और स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
3. चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है। समझाइये।
4. विभिन्न मतों में, योग की परिभाषाओं को स्पष्ट कीजिए।
5. महर्षि पतंजलि का परिचय देते हुए, योग सूत्र के चारों पादों पर विस्तार प्रकाश डालिए।
6. निम्न पर टिप्पणी कीजिए–
   (i) ऐतिहासिक संदर्भों में योग
   (ii) समाधि पाद
   (iii) साधन पाद
   (iv) विभूति पाद
   (v) कैवल्य पाद

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

5.1

(क) सत्य, (ख) सत्य (ग) असत्य (घ) सत्य

5.2

1. (क) सत्य (ख) सत्य (ग)असत्य (घ) सत्य (ड) सत्य
2. (क) चार (ख) माध्यम साधकों के लिए (ग) साधन (घ) उच्चकोटि

5.3

(क) कौशलम (ख) योग (ग) परमात्मा (घ) सम्पूर्ण जीवन (ग) निरोधः

6

अष्टांग योग

अब तक आप योग की परिभाषा, योग का अर्थ, योग दर्शन और योग की मुख्य धाराओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। महर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्रों में योग तथा योगांगों के विभिन्न पहलुओं को क्रमबद्ध रूप से प्रतिपादित किया है, जिससे साधक भलीभांति अवगत हो सके और अपना सर्वांगीण विकास करते हुए, अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ हो सके।

इस यूनिट के अंतर्गत हम अष्टांग योग का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- महर्षि पतंजलिकृत अष्टांग योग दर्शन को अभिव्यक्त कर पाएंगे;
- योग के आठ अंगों के क्रमिक नामों का उल्लेख कर सकेंगे;
- यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि आठ अंगों को परिभाषित कर सकेंगे;
- अष्टांग योग के व्यावहारिक स्वरूप और लाभ को स्पष्ट कर पाएंगे।

टिप्पणी

6.1 अष्टांग योग

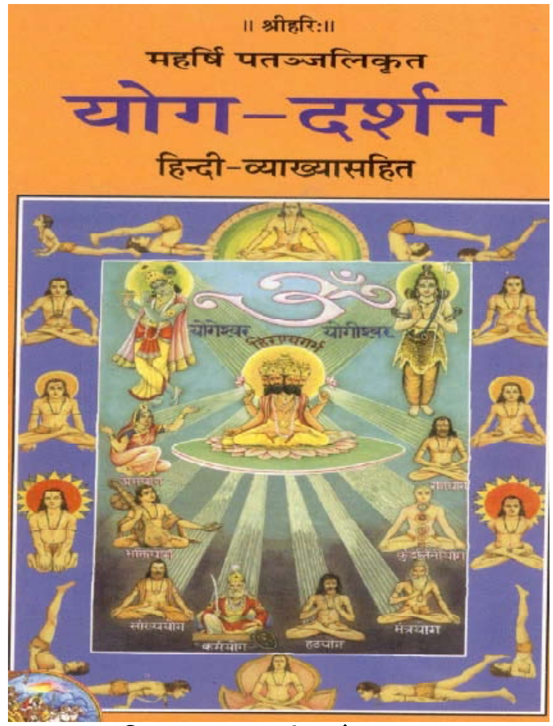

चित्र 6.1: अष्टांग योग

अष्टांग योग साधकों के लिए महत्वपूर्ण और परम उपयोगी दर्शन है। इसमें अन्य दर्शनों की भांति खंडन–मण्डन के लिए युक्तिवाद का अवलम्बन न करके सरलतापूर्वक, बहुत ही कम शब्दों में योग के व्यावहारिक पहलू का निरूपण किया गया है। योग के अंगों के अनुष्ठान होने पर अशुद्धि का नाश होकर ज्ञान के प्रकाश, विवेक व ख्याति की प्राप्ति होती है। अष्टांग योग को महर्षि पतंजलि के द्वारा परिष्कृत ढंग से प्रतिपादित किया गया है जिसमें उन्होंने योग के आठ अंगों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इन अंगों से पंचक्लेशों अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष व अभिनिवेश का नाश होता है।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि। (पा.यो. सूत्र/29)

योग के ये आठ अंग हैं –

1. यम
2. नियम
3. आसन
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6. धारणा
7. ध्यान
8. समाधि

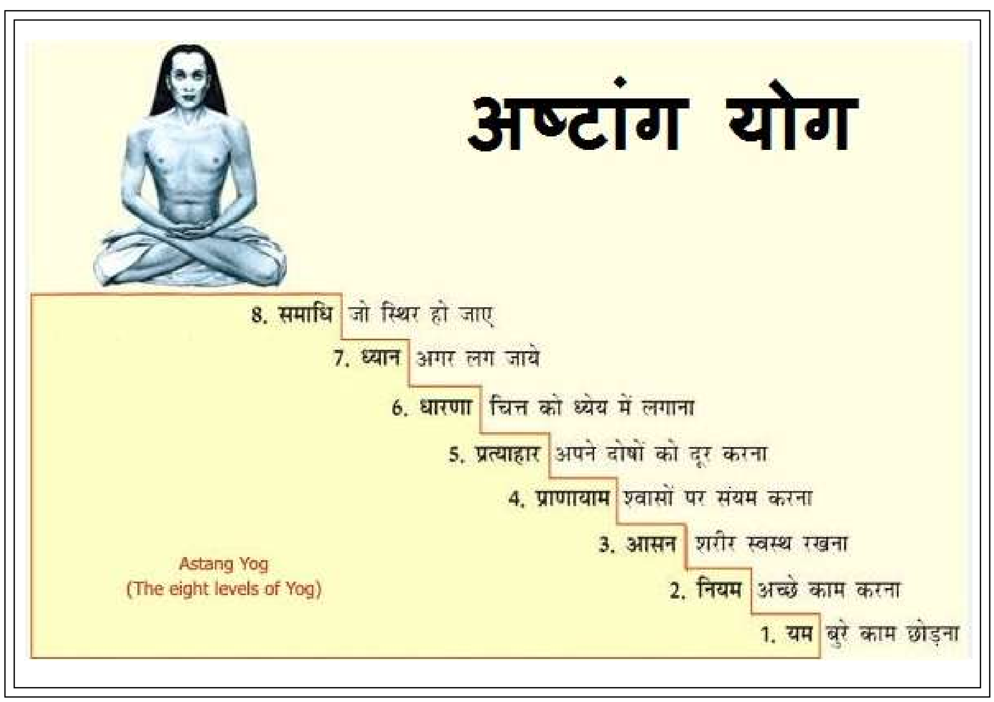

चित्र 6.2: अष्टांग योग

टिप्पणी

इन सब योगांगों का पालन किए बिना कोई भी व्यक्ति योगी नहीं हो सकता। यह अष्टांग योग केवल योगियों के लिए ही नहीं अपितु जो भी व्यक्ति जीवन में पूर्ण सुखी होना चाहता है तथा प्राणिमात्र को सुखी देखना चाहता है, उन सबको अष्टांग योग का पालन करना परम उपयोगी साधन है। अष्टांग योग धर्म, अध्यात्म, मानवता एवं विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है। अष्टांग योग में जीवन के सामान्य व्यवहार से लेकर ध्यान एवं समाधि सहित अध्यात्म की उच्च अवस्थाओं का अनुपम समावेश है। यदि कोई व्यक्ति अपने अस्तित्व की खोज में लगा है तथा जीवन के पूर्ण सत्य से परिचित होना चाहता है, तो उसे अष्टांग योग का अवश्य ही पालन करना चाहिए।

आइए, पतंजलि योग दर्शन में दिए गए योग के आठ अंगों के बारे में विस्तार से चर्चा करते हैं:—

महर्षि पतंजलि ने योग के समूचे क्षेत्र को दो भागों में विभक्त किया है—

अष्टांग योग

बहिरंग योग → यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार

अंतरंग योग → धारणा, ध्यान, समाधि

1. **बहिरंग योग** — बहिरंग योग का तात्पर्य उन अभ्यासों से है जिनका उद्देश्य बाहरी तौर पर मानव जीवन का परिशोधन करना है। इसके माध्यम से क्रमशः सामाजिक, वैयक्तिक, शारीरिक, प्राणिक व इन्द्रियगत शुद्धि करना संभव है। जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार आते हैं।

2. **अंतरंग योग** — अंतरंग योग के अभ्यास (धारणा, ध्यान व समाधि) में साधक का उद्देश्य आत्म जागृति व विवेक ख्याति की प्राप्ति है। बहिरंग योग और अंतरंग योग परस्पर आश्रित होते हैं। साधनों में साधक को इन अंगों का सम्बन्धित अभ्यास करते हुए आगे बढ़ना आवश्यक होता है। धारणा, ध्यान व समाधि तीनों को महर्षि पतंजलि का संयम भी कहते हैं।

   समझदार साधक वही माना जाता है जो धैर्यपूर्वक धीरे—धीरे अष्टांग योग के सभी अंगों का अभ्यास करता है। अष्टांग योग के अंगों का अभ्यास समूह में किया जाए तो बड़ा लाभ होता है क्योंकि साधक को कुछ समय तक अन्य साधकों के साथ रहने का अवसर

टिप्पणी

मिलता है तथा उसे समुचित वातावरण भी प्राप्त होता है। प्रारंभ के कुछ महीने या वर्ष साधक किसी अच्छे योग अध्यापक के पवित्र सानिध्य में रहकर साधना करे तथा अपने शरीर और मन को परिस्थिति के अनुकूल कर ले जिससे आगे चलकर कठिनाई का सामना न करना पड़े।

यूनिटगत प्रश्न 6.1

1. अष्टांग योग के आठ अंगों के नाम लिखिए।

....

....

....

....

2. बहिरंग योग से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

....

6.1.1 यम

आठ अंगों में प्रथम अंग है– यम। यम से अभिप्राय है– सामाजिक नियम व अनुशासन। यम को महाव्रत भी कहा जाता है। व्रत से तात्पर्य होता है 'शपथ के रूप में लिया गया संकल्प। इस प्रकार महाव्रत का अर्थ हुआ सर्वमान्य सार्वभौम व्रत। यानि ऐसा संकल्प जो हर समय, हर स्थान पर और हर देश में पालन करने योग्य है। योग–मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए यम, नींव के पत्थर के समान है। इसके पालन से ही योग की भव्य इमारत का निर्माण संभव हो पाता है। आइए, यम के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करें :

यम पांच हैं–

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।। (पा.यो.सू. 2/30)

1. अहिंसा
2. सत्य
3. अस्तेय
4. ब्रह्मचर्य
5. अपरिग्रह

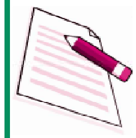

टिप्पणी

1. **अहिंसा :**

अहिंसा का अर्थ है – बुद्धि, वाणी और शरीर से किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न देना।

सभी प्राणियों से प्रेम करना, दूसरों का अहित न करना, जीव हत्या न करना, दूसरों को कष्ट न पहुँचाना, शत्रुता के विचारों को मन में न आने देना तथा दूसरों को किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचाना, आदि अहिंसा के दायरे में आता है।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अर्थात् सभी भूतों (प्राणियों) में एक ही आत्मा को देखना। ऐसी अनुभूति से जब जीवन रंग जाता है तब किसी प्राणी के द्वारा कष्ट, अपमान और हानि पाकर भी उत्तेजित न होना, अहिंसा की असली साधना है।

'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः' (पा.यो.सू. 2) अर्थात् अहिंसा में दृढ़ व्यक्ति के आस–पास संपूर्ण वैर भाव का त्याग हो जाता है। अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने पर उस महाव्रती के संपर्क में आने वाले हिंसक पशु भी हिंसा का त्याग कर देते हैं; यह अहिंसा का मापदंड है।

2. **सत्य**

सत्य के पथ पर चलने वाला साधक सत्य और केवल सत्य कथन ही करता है। उसका कहा सौ प्रतिशत सही होता है। सत्य के पालन द्वारा उसके भीतर एक शक्ति का जागरण होता है। जब, साधक का मन, दर्पण के समान निर्मल होता है तो उसकी वाणी सिद्ध हो जाती है। सत्य का पालन करने से साधक अपने कर्मों का इच्छित फल प्राप्त करने में सक्षम होता है। वह अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा बोलने के पूर्व प्रत्येक शब्द को तौलता है। इस तरह वह अपनी वाणी पर नियंत्रण रखता है। किसी भी बात को बुद्धि से निश्चय करना, फिर उसे वाणी द्वारा प्रकट करना और अंत में वैसा ही व्यवहार करना पूर्ण सत्य होता है।

अन्तःकरण और इन्द्रियों द्वारा जैसा निश्चय किया हो, हित की भावना से, बिना किसी भेदभाव के प्रिय शब्दों में वैसे का वैसा ही प्रकट करने का नाम 'सत्य' है।

3. **अस्तेय**

मन, वचन तथा कर्म द्वारा किसी प्रकार से भी किसी के हक को न चुराना, या न छीनना अस्तेय है।

सबसे अच्छी बात यह है कि मनुष्य भगवान के द्वारा दिये गये द्रव्य आदि का ही उपभोग करे, और माता–पिता, आचार्य तथा सत्पुरुषों के द्वारा मिले द्रव्यों (वस्तुएँ) पर संतोष करें, परन्तु द्रव्य की अभिलाषा कभी न करें।

'परद्रव्येषु लोष्ठवत्'

अर्थात् दूसरे के द्रव्य को मिट्टी के समान समझे। इसी को अस्तेय कहा गया है।

टिप्पणी

4. ब्रह्मचर्य

ब्रह्म+ चर्या= अर्थात ब्रह्म अनुरूप जीवन शैली।

ब्रह्म सबसे बड़ी सत्ता को कहते हैं तथा चर्य का तात्पर्य रहना होता है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ ब्रह्म में विचरना होता है। परन्तु इसका व्यावहारिक अर्थ है – तमाम विषयों पर रोक। मन, इंद्रियों और शरीर द्वारा होने वाले काम विकार के सर्वथा अभाव का नाम ब्रह्मचर्य है। किसी भी प्रकार से विषय भोग–भावना बुद्धि में उत्पन्न न होने देना ब्रह्मचर्य का पालन करना है।

> पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और पाँचों कर्मेन्द्रियों पर नियंत्रण रखना ब्रह्मचर्य कहलाता है।

5. अपरिग्रह

अपरिग्रह का अर्थ है – संचय न करना ।

सत्य की खोज करने वाला, अहिंसा बरतने वाला परिग्रह(संचय) नहीं कर सकता। परमात्मा परिग्रह नहीं करता। अपने लिए जरुरी चीज़ वह रोज़ की रोज़ पैदा करता है। इसलिए अगर हम उस पर भरोसा रखते हैं, तो हमें समझना चाहिए कि हमारी ज़रूरत की चीजें वह प्रतिदिन देता है और देगा।

मुख्य रूप से हम समझ सकते हैं कि – शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि से संबंधित किसी भी भोग सामग्री का संग्रह न करना अपरिग्रह है, या दूसरे शब्दों में कहें कि आवश्यकता से अधिक संचय ना करना अपरिग्रह कहलाता है।

यूनिटगत प्रश्न 6.2

1. अहिंसा का क्या अर्थ है?

2. दैनिक जीवन में अस्तेय का पालन कैसे करेंगे?

टिप्पणी

3. ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं?

....

....

....

....

4. अपरिग्रही व्यक्ति की पहचान कैसे करेंगे?

....

....

....

....

6.1.2 नियम

यम के बाद अगला अंग है 'नियम'। नियम वैयक्तिक अनुशासन व आत्म परिशोधन है। नियम के अंतर्गत हम देखेंगे कि हमें अपने आप से कैसा व्यवहार करना चाहिए। अपने आप से व्यवहार करने से अभिप्राय है कि हम अपने शरीर को कैसा रखें, अपनी बुद्धि को कैसा रखें, कैसे उन्हें शुद्ध व पवित्र रखते हुए अपनी शक्तियों को बढ़ाएं अर्थात् अपना उत्थान और कल्याण कैसे करें। नियम पाँच हैं।

शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।। (पा. यो. सू. 2/32)

1. शौच (पवित्रता)
2. संतोष
3. तप
4. स्वाध्याय
5. ईश्वर–प्रणिधान

1. **शौच–** शौच से अभिप्राय है– शुद्धता–पवित्रता। इसे दो भागों में बांटा जा सकता है – (i) बाह्य शुद्धि (ii) आंतरिक शुद्धि।

   i) बाह्य शुद्धि – (प.यो.द. 2/40),

   बाह्य शुद्धि में बाहर की वस्तुएं, बाहर का वातारण, हमारा शरीर और रहन–सहन इत्यादि आ जाता है। जहां तक घर की सफाई, रख–रखाव इत्यादि का प्रश्न है, कई लोग इसमें बड़े निपुण होते हैं। अपनी सभी चीजों को सफाई से रखते हैं। शारीरिक स्वच्छता से अभिप्राय है– अपने शरीर को व्याधियों से मुक्त रखना, सभी अंग प्रत्यंगों को निरोग एवं पुष्ट रखना, सात्विक आहार से युक्त रखना, प्रतिदिन

टिप्पणी

योगाभ्यास द्वारा शरीर के मलों को निष्कासित करते रहना, यह सभी बाह्य शुद्धि में आता है।

ii) आंतरिक शुद्धि – (प.यो.द. 2/41)

बाह्य के साथ–साथ आंतरिक शुद्धि, जिसे हम अनदेखा करते रहते हैं, का भी बड़ा महत्व है। आंतरिक शुद्धता से अभिप्राय है 'मन की स्वच्छता, यानि हमारे मन में दूसरों के प्रति ईर्ष्या–द्वेष न हो। हम स्वार्थी या विषयों के प्रति लालायित न बने रहें। अहंकार, ममता, राग, द्वेष, ईर्ष्या, भय आदि दुर्गुणों के त्याग से भीतरी पवित्रता आती है।

2. **संतोष** – *संतोषादनुत्तमसुखलाभः*। (पा. यो. सू. 2/42)

संतोष से जो सुख प्राप्त होता है, वह सबसे उत्तम सुख है। संतोष को ही मोक्ष सुख भी कहते हैं। सुख–दुःख, लाभ–हानि, यश–अपयश, सिद्धि–असिद्धि, अनुकूलता–प्रतिकूलता आदि के प्राप्त होने पर सदैव संतुष्ट प्रसन्नचित रहने का नाम संतोष है।

व्यावहारिक जीवन में लोभ, मोह, राग, आशा आदि के वशीभूत न होकर सदा संतोष का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

संतोषपूर्ण जीवन के लिए किसी कवि ने कहा है –

गोधन, गज धन, बाजिधन, और रतन धन खान।

जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान।।

3. **तप**–मन और इन्द्रियों के संयमरूप धर्म पालन करने के लिए कष्ट सहना तथा व्रतादि का अनुष्ठान करते रहना ही तप कहलाता है। (प. यो. द. 2/43)

आत्मदर्शी महापुरुषों का, गुरुजनों का, विशेष विद्वानों का यथायोग्य सत्कार करना, शुद्धि और सरलता रखना, ब्रह्मचर्य और सत्य–अहिंसा का पालन करना भी तप कहलाता है। तप से पापों का नाश होता है तथा सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

4. **स्वाध्याय** – जिस अध्ययन प्रक्रिया को दैनिक जीवन में अपनाने से 'स्व' को (अपने आपको) जानने समझने में सहायता मिले, वही स्वाध्याय कहलाता है।

कल्याणप्रद शास्त्रों का अध्ययन और अपने इष्ट के नाम का जप, सुमिरन, पठन–यूनिटन एवं गुणानुवाद करने का नाम भी स्वाध्याय है। अपने इष्ट के स्वरूप को बुद्धि में धारण कर अपने अन्तःकरण में उनका गुणानुवाद करना स्वाध्याय साधना की एक विधि है। इससे अहंकार मिटता है, अन्तःकरण शुद्ध होता है तथा 'स्व' को जानने की क्षमता का विकास होता है। (प. यो. द. 2/44)

5. **ईश्वर–प्रणिधान**

आप ईश्वर के जिस स्वरुप को मानते हो, अपने सभी कर्म उसी ईश्वर को अर्पण करते जाना तथा उन कर्मों के फलों को भी अपने भगवान के चरणों में अर्पण कर देना ही ईश्वर–

प्रणिधान कहलाता है। ईश्वर प्रणिधान में भावना यह होती है कि यह सब भगवान के आदेश पालन हेतु कर रहा हूँ। इस प्रकार बुद्धि से, वाणी से, शरीर से जितने भी पुण्य कर्म किये जायें वे सब उस भगवान को समर्पित करते जाना पूर्ण ईश्वर–प्रणिधान है।

यूनिटगत प्रश्न 6.3

1. नियम कितने हैं? इनके नाम क्रम से लिखें।

   ....

   ....

   ....

2. जीवन में संतोष कैसे ला सकते हैं?

   ....

   ....

3. असली तप की क्या पहचान है?

   ....

   ....

4. ईश्वर–प्रणिधान का क्या अर्थ है?

   ....

   ....

5. क्या आप अपने जीवन में नियमों का पालन करेंगे? और क्यों?

   ....

   ....

6.1.3 आसन

मनुष्य जीवन में शरीर की ऐसी स्थिति जिसमें 'स्थिरता और सुख' का आभास हो उसे 'आसन' कहते हैं।

'स्थिरसुखमासनम्।' (पातंजल योगसूत्र 2/46)

सुखपूर्वक स्थिरता से बहुत समय तक एक ही शारीरिक स्थिति में बैठे रहने का नाम 'आसन' है। इस सूत्र में मुख्यतः ध्यानात्मक आसन की बात कही गयी है।

टिप्पणी

कम से कम एक प्रहर (3 घंटे का समय) तक एक आसन में सुखपूर्वक स्थिर और अचल भाव से बैठने को 'आसन सिद्धि' कहते हैं।

आसन विशेष प्रकार की शारीरिक मुद्रायें हैं जो मन और शरीर को स्थैतिक खिंचाव के द्वारा स्थिरता प्रदान करती हैं। इनका उद्देश्य तंत्रिका पेशीय खिंचाव और साधारण पेशीयतान में उचित सामन्जस्य स्थापित करना है। आसनों को करने के दो मूलभूत सिद्धांत हैं – सुखानुभूति और स्थिरता। इसका तात्पर्य है कि आसनों की प्रवृत्ति केवल शारीरिक न होकर मनोशारीरिक है। प्रत्येक आसन सहजता के साथ क्षमतानुसार करना चाहिए। शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक स्वास्थ्य लाभ करने के लिए योगासन अत्यन्त उपयोगी हैं। अतः शारीरिक क्षमता एवं लोच को बढ़ाने के लिए उपयोगी योगासनों का अभ्यास भी करना उचित बताया गया है।

चित्र 6.3: आसन

योगासनों द्वारा आन्तरिक अवयवों की मालिश हो जाती है। अतः पूर्ण रूप से स्वस्थ रहने के लिए आसन लाभकारी हो जाते हैं।

आसन के लाभ

- योगासन के द्वारा शारीरिक ढांचे व उसमें अन्तर्निहित संपूर्ण मांसपेशियों का व्यायाम होता है।
- शरीर सुंदर, स्वस्थ, सुडौल तथा लचीला बन जाता है।
- मांसपेशियों में अपूर्व बल आता है।
- अधिक से अधिक कार्य करने पर भी थकावट नहीं होती।

- आसनों के नियमित अभ्यास से सभी नस–नाड़ियों में रक्त का संचार आसानी से होने लगता है।
- शरीर को ऊर्जा मिलती है जिससे व्यक्ति तनाव मुक्त, व्याधि मुक्त, कष्ट मुक्त होकर श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर सकता है।

6.1.4 प्राणायाम

प्राण का अर्थ-जीवनी शक्ति है, और ''आयाम'' का अर्थ है – खिंचाव, विस्तार, फैलाव, विनियमन, आत्मसंयम अथवा नियंत्रण। इस प्रकार, प्राण का विस्तार करना तथा उसको बढ़ाना प्राणायाम कहलाता है। यदि सामान्य रूप से हम कहें तो ''प्राणायाम श्वास लेने की योग कला है''

महर्षि पतंजलि ने विशेष रूप से सांस लेने तथा बाहर छोड़ने की प्रक्रिया को नियंत्रित करने के रूप में प्राणायाम को परिभाषित किया है।

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। (पा.यो. सूत्र 2/49) अर्थात् आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास–प्रश्वास की गति का स्वतः रुक जाना 'प्राणायाम' कहलाता है। इस प्रकार प्राणायाम श्वसन क्रिया की एक तकनीक है जो सांस लेने वाले अंगों को तीव्रता से, लयबद्धता तथा गहनता के साथ क्रियाशील बनाती है।

इससे पहले आपको पूरक, रेचक तथा कुम्भक को समझना आवश्यक है–

- पूरक क्रिया द्वारा लंबी गहरी श्वास देर तक अंदर ली जाती है।
- रेचक द्वारा श्वास देर तक बाहर छोड़ी जाती है।
- कुम्भक द्वारा श्वास को रोका जाता है।

पूरक श्वसन संस्थान को उद्दीप्त करता है।
रेचक दूषित तथा विषैली वायु को बाहर निकालता है।
कुम्भक संपूर्ण शरीर के भीतर ऊर्जा का वितरण करता है।

प्राण तथा मानसिक दबाव, मानसिक दबाव तथा बौद्धिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति तथा आत्मा, आत्मा तथा ईश्वर के बीच घनिष्ठ संबंध होता है। इस प्रकार, प्राणायाम का उद्देश्य शरीर में प्रेरणा, प्रोत्साहन, नियंत्रण तथा ओजस्वी शक्ति को संतुलित करना है। प्राणायाम के बिना योग परिपूर्ण नहीं होता। जिस प्रकार शरीर को स्वच्छ एवं शुद्ध करने के लिए स्नान करना आवश्यक है। इसी तरह से मस्तिष्क को तरो–ताजा एवं शुद्ध करने के लिए प्राणायाम आवश्यक है।

प्राणायाम के लाभ

- प्राणायाम का अभ्यास करने से फेफड़े मजबूत होते हैं।
- अधिक से अधिक मात्रा में शरीर में आक्सीजन पहुँचती है।

टिप्पणी

- मन की चंचलता दूर होती है।
- प्रश्वास की धारा के साथ शरीर के विकार निकलते हैं।
- शरीर और मन की शुद्धता होती है।
- प्राणायाम के द्वारा भावनाएं नियंत्रित होती हैं जो कि स्थिरता, एकाग्रता तथा मानसिक संतुलन प्रदान करता है।

चित्र 6.4: प्राणायाम

- प्राणायाम के अभ्यास से साधक के फेफड़ों की क्षमता बढ़ती है तथा अधिकतम वायु संचार करने में फेफड़े सक्षम होते हैं।

यद्यपि पातंजल योग सूत्र में किसी भी प्राणायाम का नाम उल्लेखित नहीं किया गया है, फिर भी हठयोग के ग्रन्थों में महत्वपूर्ण प्राणायाम के नाम निम्नलिखित हैं —

1. उज्जायी
2. शीतली
3. सीत्कारी
4. चन्द्रभेदी
5. सूर्यभेदी
6. भस्त्रिका
7. प्लावनी
8. भ्रामरी
9. मूर्च्छा
10. केवली

टिप्पणी

6.1.5 प्रत्याहार

महर्षि पतंजलि ने प्रत्याहार को इस प्रकार परिभाषित किया है—

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्यस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः

(पा. यो. सूत्र 2/54)

अपने—अपने विषयों के संग से अलग होने पर, इन्द्रियों का चित्त के रुप में विलय हो जाना 'प्रत्याहार' है। प्रत्याहार के द्वारा साधक का इंद्रियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है शब्द, स्पर्श, रूप,रस व गंधादि की आसक्ति व्यक्ति को आत्म कल्याण के रास्ते से दूर हटाती है। इन्द्रियों की आसक्ति मन को विचलित कर देती है। इसलिए अभ्यास और वैराग्य द्वारा यथार्थ बोध से ही प्रत्याहार सिद्ध होने पर, इन्द्रियजय होता है। फिर साधक को भगवान में प्रीति, परम रस व परम सुख का अनुभव होने लगता है।

प्रत्याहार के साधन मानसिक शक्ति को विकसित करते हैं प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियां वश में हो जाती हैं। महर्षि पतंजलि कहते हैं— ***ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।*** (पा.यो. सूत्र 2/55) अष्टांग योग के अंतरंग का प्रवेश द्वार प्रत्याहार है।

6.1.6 धारणा

देशबंधश्चित्तस्य धारणा। (पा. यो. सूत्र 3/1)

नाभिचक्र, हृदयकमल आदि शरीर के भीतरी देश हैं और आकाश या सूर्य—चन्द्रमा आदि देवता या कोई भी मूर्ति तथा कोई भी वस्तु, बाहर के देश हैं, उनमें से किसी एक देश में चित्त की वृत्ति को लगाने का नाम 'धारणा' है।

धारणा का अर्थ है — 'धारण करना'। मन में जब किसी विषय को धारण करने की योग्यता आ जाए, और कुछ देर तक उस विषय पर टिकने का, अभ्यास हो जाये तो मन की वैसी अवस्था धारणा है। धारणा में मन का विचरण व स्थान सीमित और निश्चित रहता है। धारणा के अभ्यास से मानसिक शक्ति का विकास होता है। मानसिक एकाग्रता के लिए यह उत्तम साधन है।

अष्टांग योग के उपर्युक्त अंग का अभ्यास चित्त एकाग्र करने का उपाय कहा जा सकता है। इस प्रकार मन को स्थूल विषय से प्रारंभ कर, सूक्ष्म लक्ष्य आत्मा—परमात्मा पर केन्द्रित करने को धारणा कहते हैं। धारणा, ध्यान की नींव है। जैसे—जैसे धारणा का अभ्यास परिपक्व होगा, वैसे—वैसे ध्यान का अभ्यास भी साथ—साथ होने लगेगा।

6.1.7 ध्यान

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। (पा. यो. सूत्र 3/2)

जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाए, उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना अर्थात् केवल ध्येय मात्र की एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी भी दूसरी वृत्ति का न उठना 'ध्यान' कहलाता है।

अथवा

टिप्पणी

यदि सरल शब्दों में कहें तो **चित्त की निरंतर सजगतापूर्वक एकाग्र रहने की क्रिया को ध्यान कहते हैं।**

ध्यान हमारे जीवन के साथ प्रतिपल जुड़ा हुआ है। भारतीय संस्कृति में तो ध्यान शब्द प्रत्येक क्रिया से जुड़ा होता है जब भी हमारे घर व परिवार के बड़े बुजुर्ग किसी कार्य को विधिवत संपन्न करने हेतु कहते हैं तो सर्वत्र यही वाक्य होता है भाई ध्यान से पढ़ना, ध्यान से चलना, प्रत्येक कार्य को ध्यान से करना। आज हम ध्यान शब्द का प्रयोग तो करते हैं, परन्तु यह ध्यान क्या है, उस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है। लेकिन जीवन के प्रत्येक कार्य के साथ जुड़े इस ध्यान शब्द से हम यह तो जान ही सकते हैं कि ध्यान जीवन का अपरिहार्य अंग है, जिसके बिना जीवन अधूरा है, और हम ध्यान के बिना अपने किसी भी भौतिक व आध्यात्मिक लक्ष्य में सफल नहीं हो सकते। ध्यान से ही हम सदा आनंदमय व शांतिमय जीवन जी सकते हैं।

चित्र 6.5: ध्यान

अपने आंतरिक जीवन के साथ लय, व सामंजस्य स्थापित करना ही ध्यान है। ध्यान द्वारा ही चेतना का विकास, इंद्रियों पर नियंत्रण तथा अपने ज्ञान व प्रकाश स्वरूप से सारूप्य स्थापित होता है।

6.1.8 समाधि

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।। (पा. यो. सूत्र 3/3)

ध्यान करते—करते जब चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है, तथा उसके अपने स्वरूप का अभाव सा हो जाता है, और उसको ध्येय से भिन्न उपलब्धि नहीं होती, उस समय उस ध्यान का नाम 'समाधि' हो जाता है।

ध्यान ही जब केवल अर्थ या ध्येय (आत्मा या ईश्वर के स्वरूप या स्वभाव) को प्रकाशित करने वाला तथा अपने स्वरूप से शून्य हो जाता है तब उसे 'समाधि' कहते हैं।

टिप्पणी

समाधि वह अवस्था है, जहाँ साधक चेतना के उस बिंदु पर पहुँचता है जिससे परे कोई चेतना नहीं होती। यह चेतना का गहनतम स्तर है जहाँ व्यक्तित्व का बोध तो समाप्त हो जाता है पर अन्तर्बोध व सर्वबोध की शुरुआत हो जाती है। यह सजगता की वह उच्च अवस्था है, जहाँ साधक का मन भी कार्य नहीं करता और वह परम् शून्य की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। जैसे अग्नि के बीच लोहा डालने पर वह भी अग्नि रूप हो जाता है, इस प्रकार परमेश्वर के दिव्यज्ञान आलोक में आत्मा प्रकाशमय होकर, शरीर भाव से ऊपर उठकर स्वयं को परमेश्वर के आनंद स्वरुप और पूर्ण ज्ञान में 'परिपूर्ण' हो जाती है, जिसे समाधि कहते हैं।

चित्र 6.6: समाधि

समाधिस्थ को कोई भी अस्त्र–शस्त्र काट या छेद नहीं कर सकता। कोई मनुष्य, हिंसक पशु एवं विषैले जीव उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। उस पर मारण–उच्चाटन मंत्र–तंत्र का भी प्रभाव नहीं होता और किसी भी प्रकार की वासना उसे फँसा नहीं सकती। योग से अष्ट सिद्धियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं। (समाधि के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान की सिद्धि एवं युक्ताहार–विहार अनिवार्य है, एकाएक समाधि लगाना उचित नहीं है)

यूनिटगत प्रश्न 6.4

रिक्त स्थान भरिए –

1. शरीर की ऐसी स्थिति जिसमें स्थिरता और सुख का आभास हो उसे .... कहते हैं।
2. श्वास–प्रश्वास की गति को नियंत्रित करना .... कहलाता है।
3. अष्टांग योग के अंतरंग का प्रवेश द्वार .... है।
4. चित्त को निरंतर एकाग्र करने की क्रिया को .... कहते हैं।
5. शरीर के किसी एक देश में चित्त की वृत्ति को लगाने का नाम ....है।

टिप्पणी

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में हमने सीखा कि –

- महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन में योग के आठ अंगों को वर्णन करके परिष्कृत ढंग से प्रतिपादित किया है।

महर्षि पतंजलि ने समूचे योग क्षेत्र को दो भागों में विभक्त किया है –

योग

बहिरंग योग — यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार

अंतरंग योग — धारणा, ध्यान, समाधि

- आठ अंगों में प्रथम अंग है– यम। यम से अभिप्राय है– सामाजिक नियम व अनुशासन। यम को महाव्रत भी कहा जाता है। व्रत से तात्पर्य होता हैं 'शपथ के रूप में लिखा गया संकल्प।

- यम के बाद दूसरा अंग है 'नियम'। नियम वैयक्तिक अनुशासन व आत्म परिशोधन है। नियम के अंतर्गत हमने जाना कि हमें अपने आप से कैसा व्यवहार करना चाहिए।
- तीसरा अंग है– आसन मनुष्य जीवन में शरीर की ऐसी स्थिति जिसमें 'स्थिरता और सुख' का आभास हो उसे 'आसन' कहते हैं। *'स्थिरसुखमासनम्।'* (पातन्जल योगसूत्र 2/46)
- चतुर्थ अंग है – प्राणायाम। प्राण का अर्थ है जीवनी शक्ति और ''आयाम'' का अर्थ है – खिंचाव, विस्तार, फैलाव, विनियमन, आत्मसंयम अथवा नियंत्रण। इस प्रकार, प्राणायाम का अर्थ प्राण का विस्तार करना तथा उसको बढ़ाना है।
- पाँचवां अंग है– प्रत्याहार। अपने–अपने विषयों के संग से अलग होने पर, इन्द्रियों का चित्त के रुप में विलय हो जाना 'प्रत्याहार' है। प्रत्याहार के द्वारा साधक का इंद्रियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता हैं शब्द, स्पर्श, रूप,रस व गंधादि की आसक्ति व्यक्ति को आत्म कल्याण के रास्ते से दूर हटाती है।
- छठा अंग है – धारणा। नाभिचक्र, हृदयकमल आदि शरीर के भीतरी देश हैं और आकाश या सूर्य–चन्द्रमा आदि देवता या कोई भी मूर्ति तथा वस्तु बाहर के देश हैं, उनमें से किसी एक देश में चित्त की वृत्ति को लगाने का नाम 'धारणा' है।

टिप्पणी

- सॉंतवां अंग है – ध्यान। जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाए, उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना।
- आठवां अंग है– समाधि। ध्यान करते–करते जब चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है, व उसके अपने स्वरूप का अभाव सा हो जाता है, और उसको ध्येय से भिन्न उपलब्धि नहीं होती, तो उस समय उस ध्यान का नाम 'समाधि' हो जाता है।
- प्रथम दोनों अंग यम व नियम बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इन अंगों को अपने जीवन में धारण करने के बाद ही योग आसनों, प्राणायाम ओर ध्यान का समुचित लाभ योगी को मिल पाता है।

यूनिटांत प्रश्न

1. अष्टांग योग के आठ अंग कौन –कौन से हैं? प्रथम दो अंगों पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिये।
2. महर्षि पतंजलि ने योग क्षेत्र को कितने भागों में विभक्त किया है? अंतरंग के तीनों अंगों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. बहिरंग से क्या तात्पर्य है? इसके किन्हीं तीन अंगों का वर्णन कीजिए।
4. प्राणायाम के लाभ लिखिए।
5. यम से आप क्या समझते हैं? पाँचों यमों पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

6.1

1. आसन
2. प्राणायाम
3. प्रत्याहार
4. ध्यान
5. धारणा

1. यम, नियम, आसन,प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि
2. उन अभ्यासों से है, जिनका लक्ष्य बाहर परन्तु शरीर समाज तथा अन्य विषयों के संदर्भ में होता है।

टिप्पणी

6.2

1. बुद्धि, वाणी और शरीर से किसी भी प्राणी को किसी प्रकार से कष्ट न देना।
2. दूसरे के द्रव्य को मिट्टी के समान समझे।
3. ब्रह्म में विचरना होता है।

6.3

1. पाँच होते हैं– **शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान**
2. सुख–दुःख, अनुकूलता–प्रतिकूलता आदि के प्राप्त होने पर सदैव संतुष्ट रहने का नाम '**संतोष**' है।
3. मन और इन्द्रियों के संयमरूप धर्म पालन करने के लिए कष्ट सहना ही '**तप**' कहलाता है।
4. कर्मों के फलों को भी अपने ईश्वर के चरणों में अर्पण कर देना ही ईश्वर प्रणिधान है।

7

हठयोग

प्रिय शिक्षार्थियों, पिछली यूनिट में आपने, अष्टांग योग के विषय में अध्ययन किया, जिसमें योग के आठ अंगों की चर्चा की गई – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। आध्यात्मिक दृष्टि से योग का तात्पर्य 'समाधि' ही है। समाधि तक पहुंचने के लिए योग के विभिन्न पथ या परम्पराएं हैं जैसे – ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्मयोग, राज योग, मंत्रयोग, लय योग, हठयोग आदि।

हठयोग के आदि प्रणेता भगवान शिव माने जाते हैं। उन्हीं की परंपरा में मत्स्येन्द्रनाथ, गुरू गोरक्षनाथ, मीननाथ, भर्तृहरि आदि से लेकर स्वामी स्वात्माराम एवं गोपीचंद पर्यन्तनाथों ने इस परंपरा को जीवित रखा है। इस यूनिट में हम हठयोग पर चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- हठयोग का सामान्य परिचय दे सकेंगे;
- हठयोग का अर्थ एवं मुख्य परिभाषाएं बता सकेंगे;
- मानव शरीर में चक्र, कुण्डलिनी एवं नाड़ियों का उल्लेख कर सकेंगे;
- घरेण्ड सहिंता के अनुसार हठयोग के सप्तांगों पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- हठयोग अभ्यास के लाभों का वर्णन कर सकेंगे।

टिप्पणी

7.1 हठयोग

'हठ' शब्द की उत्पति दो बीज मंत्र 'हं' तथा 'ठ' के योग से हुई है। सृष्टि में दो विपरीत धारायें या शक्तियां एक साथ कार्य करती हैं – ये हैं धनात्मक एवं ऋणात्मक। प्राण शक्ति का स्रोत पिंगला नाड़ी है, जो शारीरिक क्रियाओं से संबंधित है! बीज मंत्र 'हं', पिगंला नाड़ी में प्रवाहित सूर्य प्रवाह का परिचायक है। मानसिक शक्ति का स्रोत, इड़ा नाड़ी है जो, बीज मंत्र 'ठं' इड़ा नाड़ी में बहने वाले चन्द्र प्रवाह की ओर संकेत करता हैं। इन दोनों प्रवाहों के मध्य संतुलन लाने की विद्या को ही हठयोग कहते हैं। संतुलन की स्थिति में, प्राण का प्रवाह, आत्म शरीर में स्थित महत्वपूर्ण सुषुम्ना नाड़ी में प्रारंभ हो जाता है।

हठयोग का प्रवर्तक, भगवान शिव को माना जाता है। तंत्र शास्त्रों के अनुसार, भगवान शिव ने सर्वप्रथम पार्वती को तंत्र का उपदेश दिया। इन्हीं तन्त्र आगमों से ही हठयोग की उत्पत्ति हुई। हठयोग विद्या की उत्पत्ति के समय के संबंध में, विद्वानों में बड़ा मतभेद है किन्तु सामान्यतया इसे सातवीं सदी के बाद का माना जाता है। इस विद्या को, परिष्कृत रूप में, समाज के सामने प्रस्तुत करने का श्रेय गुरु मत्स्येन्द्र नाथ तथा गुरु–गोरखनाथ को जाता है।

चित्र 7.1: हठयोग

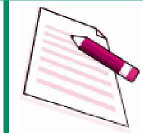

टिप्पणी

हठयोग के महान आचार्यों में गुरु गोरखनाथ के अतिरिक्त स्वामी स्वात्माराम, महर्षि घेरण्ड तथा श्रीनिवास भट्ट आदि का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है!

हठयोग के प्रमुख ग्रन्थ हैं – गोरक्षसंहिता, शिव संहिता, हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता तथा हठरत्नावामी आदि। हठयोग के ग्रंथों में योग के अंगों के विषय में मतभेद हैं। राजयोग का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ, पतंजलि योग सूत्र, योग के आठ अंग मानता है। गुरुगोरखनाथ अष्टरांग योग से यम, नियम को हटाकर केवल छः योगांग मानते हैं। स्वामी स्वात्माराम योग के चार अंग मानते हैं और घेरंड संहिता के लेखक महर्षि घेरंड सप्तांग की ही चर्चा करते हैं। किन्तु सामान्यतः सभी एक बात पर एकमत हैं कि हठयोग का शारीरिक पक्ष है तथा राजयोग मानसिक पक्ष है। स्वामी स्वात्माराम अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ में हठयोग को राजयोग का साधन मानते हैं –

'' प्रणम्य श्री गुरूनाथं स्वात्मारामेण योगिना।

केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते''।।

अर्थात् श्रीनाथ गुरु को प्रणाम करके, योगी स्वात्माराम केवल, राजयोग की लिए हठविद्या का उपदेश करते हैं।

हठयोग की परम्परा के अनुसार मनुष्य के अंदर दो शक्तियां प्राणशक्ति और मन शक्ति साथ–साथ कार्य करती है। किन्तु अधिकांश व्यक्तियों में ये शक्तियां सामान्यतः सुषुप्त एवं निष्क्रिय रहती हैं। हमारी शक्ति का अधिकांश भाग उपयोग ही नहीं हो पाता है। विज्ञान भी इस बात को मानता है कि मनुष्य का मस्तिष्क अपार शक्ति का केन्द्र है किन्तु उस संपूर्ण शक्ति का दस–पन्द्रह प्रतिशत ही मनुष्य उपयोग कर पाता है। योग विद्या मनुष्य की इस सम्पूर्ण शक्ति का सर्वाधिक उपयोग कर, उसे परम पुरुषार्थ मोक्ष तक पहुंचाने की ही कला है। योग मनुष्य की एकाग्रता शक्ति विकसित कर उसे मोक्ष तक पहुँचा देती है। योग में एकाग्रता शक्ति को विकसित करने का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

7.1.1 हठयोग का अर्थ एवं परिभाषा

यौगिक साहित्य के अनुसार हठ दो शब्दों 'हं' और 'ठं' से मिलकर बना है। योग शिखोपनिषद् में हठयोग की बहुत सुन्दर ढंग से व्याख्या की गई है–

हकांरेण तु सूर्यः स्यात् ठकारेणोन्दुस्च्यते।
सूर्य चन्द्रमसौरेक्यं हठ इत्यभिधीयते।।

(योग शिखोपनिषद्)

'हं' से तात्पर्य हकार अर्थात् सूर्य स्वर तथा 'ठं' से तात्पर्य ठकार अर्थात् चन्द्र स्वर।

सूर्य स्वर व चन्द्र स्वर का एकीकरण हठयोग है।

टिप्पणी

इन दो दिव्य विग्रहों के लिए, संस्कृत में कई नामों का उल्लेख मिलता है यथा –

हठ = 'ह +	'ठ'
हं	ठं
पिंगला	इड़ा नाड़ी
सूर्य स्वर	चन्द्र स्वर
शिव	शक्ति
ब्रह्म	जीव

जब इड़ा और पिंगला नाड़ी एक समान चलने लगें, तो सुषुम्ना का जागरण होता है और जब सुषुम्ना निरन्तर चलने लगती है तो शरीर में सूक्ष्म रूप में विद्यमान कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है, जब यह कुण्डलिनी छः चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार में जाकर परमशिव से मिलती है तो आध्यात्मिक अर्थों में यह हठयोग कहलाता है।

परिभाषायें

विभिन्न ग्रंथों में हठयोग की चर्चा मिलती है और हठयोग को परिभाषित किया गया है। मुख्य परिभाषाओं का उल्लेख यहां किया जा रहा है :

सिद्ध सिद्धान्त पद्धति के अनुसार

हकारःकथितःसूर्य ठकारचन्द्र उच्यते।
सूर्य चन्द्रमसोर्योगात् हठयोग निगधते।।

अर्थात हकार सूर्य स्वर और ठकार से चन्द्र स्वर चलते हैं। इन सूर्य और चन्द्र स्वरों को प्राणायाम आदि के विशेष अभ्यास से प्राण की गति को सुषुम्ना में प्रवाहित करना ही हठयोग है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार

अपाने जुहहति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणपानगती रूद्धवा प्राणायामपरायणाः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 4/20)

अर्थात् प्राण और अपान वायु को प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा मिलाकर सम कर लेना ही हठयोग है।

शिवसंहिता के अनुसार

प्राणपानौ नाद बिन्दु जीवात्मा, परमात्मनौ।
मिलित्वा घटते यस्मसत्तस्माद् वै घट उच्यते।।

(शिव संहिता 3/63)

टिप्पणी

अर्थात् जिसमें प्राण और अपान, नाद और बिंदु, जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाता है। उसी को घट अवस्था या हठयोग कहते हैं। जब प्राणायाम और बंध का अभ्यास कर अपान को ऊपर खींचकर प्राण में मिलाया जाता है तो यह हठयोग साधना कहलाती है।

योग ग्रंथों में शरीर में विद्यमान पांच प्राणों की चर्चा की गई है — उदान, प्राण, समान, अपान और व्यान। ये पांच प्राण हैं। ये शरीर में अलग—अलग स्थानों के कार्यों एवं ऊर्जाओं का नियंत्रण व नियमन करते हैं। उदान मुख में, प्राण हृदय में, समान नाभि, अपान गुह्य प्रदेश एवं व्यान संपूर्ण शरीर के क्रिया कलापों व ऊर्जा का नियंत्रण नियमन करता है। हठयोग में इसी प्राण को प्राणायाम के माध्यम से मिलाकर मन को नियंत्रित किया जाता है।

प्राण तथा अपान का, समान में मिल जाना ही, हठयोग है।

नाद ब्रह्मांड में व्याप्त और विलग ब्रह्म का ही रूप है। बह्मा सृष्टि का आरंभ नाद से ही माना जाता है। नाद वह ऊर्जा है जो सभी तत्वों को उत्पन्न करने वाली है। ऊर्जा न कभी जन्मती है और न नष्ट होती है। इसी नाद का ज्ञान हो जाना ही हठयोग की साधना है।

परिभाषाओं में जीवात्मा और परमात्मा के एक होने की प्रक्रिया को हठयोग कहा गया है। वस्तुतः जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं परन्तु अविद्या, अज्ञान के कारण वह अलग—अलग दिखाई पड़ते हैं। अज्ञानवश जीवात्मा शरीर, इन्द्रियों को अपना स्वरूप समझ लेता है एवं दुःख भोगता है। हठयोग के माध्यम से जब अज्ञान हटता है तो उनके एक होने का आभास हो जाता है।

यूनिटगत प्रश्न 7.1

1. सत्य/असत्य बताईये —

   (i) हठयोग के आदि प्रणेता भगवान शिव माने जाते हैं। ( )

   (ii) योग के ग्रंथों में पांच प्राण — प्राण, अपान, व्यान, समान एवं उदान की चर्चा मिलती है। ( )

   (iii) हठयोग, हठ का योग है। ( )

   (iv) जीवात्मा परमात्मा के एक होने की प्रक्रिया को हठयोग कहा गया है। ( )

   (v) यौगिक साहित्य के अनुसार हठ दो शब्दों 'हं' और 'ठं' से मिलकर बना है। ( )

टिप्पणी

7.2 चक्र

हठयोग में एकाग्रता का केन्द्र बिन्दु 'चक्र' होते है। तन्त्र और हठयोग परम्परा में चक्रों की संख्या सात मानी गयी है। चक्र का शाब्दिक अर्थ गोलाकार होता है। हठयोग और तंत्र परम्परा में चक्रों को ऊर्जा का केन्द्र माना जाता है, जिसके माध्यम से अंतरिक्ष ब्रह्माण्ड की ऊर्जा मानव शरीर में प्रवाहित होती है, ये चक्र हमारे शरीर में वे विशेष स्थान हैं, जहाँ से संपूर्ण शरीर में व्याप्त प्राणों को नियंत्रित किया जाता है। प्रत्येक चक्र एक स्विच की भांति होते हैं, जो मस्तिष्क के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों को जागृत करते हैं। *सामान्यतया,* हमारे ये चक्र सुषुप्त तथा निष्क्रिय रहते हैं। योग का अभ्यास कर इन चक्रों में प्राण का प्रवाह बढ़ाकर, इन्हें जागृत किया जाता है, जिससे इन केन्द्रों पर बाधित ऊर्जा मुक्त होती है और साधक चेतना के उच्च स्तरों की ओर अग्रसर होता है। ये चेतना के निम्न स्तर से सर्वोच्च स्तर तक साधक को पहुंचाकर उसकी समस्त सुषुप्त शक्तियों को जागृत कर देते हैं। इन सातों चक्रों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

चित्र 7.2: चक्र आसन

7.2.1 मूलाधार चक्र

मूलाधार चक्र – सबसे नीचे का चक्र होने के कारण इसे आधार चक्र भी कहा जाता है। पुरुष शरीर में इसका स्थान जननेन्द्रिय और गुदा द्वार के बीच में है तथा स्त्री शरीर में गर्भाशय ग्रीवा में होता है। यह पृथ्वी तत्व का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए इसकी पंचतन्मात्रा गंध है। इसका चिन्ह गहरे लाल रंग का चतुर्दलीय कमल है, जिसकी पंखुड़ी पर वं, शं, षं तथा सं लिखा हुआ है इसके केन्द्र में पृथ्वी तत्व का यंत्र पीला वर्ग है और इसका बीज मंत्र 'लं' है।

मूलाधार चक्र को मूल केन्द्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि यहाँ प्राथमिक महत्व की शक्ति जिसे कुंडलिनी शक्ति कहते है, निवास करती है। यह कुंडलिनी यहां सुषुप्त रूप में है जो इसके केन्द्र के अंदर स्थित शिवलिंग के चारों **ओर साढ़े लपेटा** लिए हुए है। संपूर्ण ब्रह्माण्डीय एवं मानवीय

शक्तियों का यह केन्द्र है। इस शक्ति का प्रकटीकरण काम शक्ति, संवेदना एवं आत्मिक शक्तियों के रूप में होता है। सामान्य व्यक्ति इस शक्ति को काम शक्ति के रूप में अभिव्यक्त करता है। इसी कारण सामान्य व्यक्ति अपनी शक्ति का क्षय कर पतनोन्मुखी रहता है। योग का अभ्यास कर इस शक्ति को जगाकर साधक अपनी चेतना को उर्ध्वगामी बनाकर परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। **हठयोग की विभिन्न क्रियाओं एवं एकाग्रता का अभ्यास कर, साधक अपनी असीम शक्ति को जागृत कर उसे ऊपर के चक्रों से ले जाते हुए अन्ततः सहस्त्रार में प्रवेश कर, पवित्र चेतना शिव से संयोग कर लेता है, यही योग है। शिव एवं शक्ति के संयोग को ही योग कहा जाता है।** यही हठयोग का अंतिम लक्ष्य भी है।

7.2.2 स्वाधिष्ठान चक्र

स्वाधिष्ठान चक्र— मूलाधार चक्र से लगभग दो अंगुल ऊपर मेरूदण्ड में जननेन्द्रिय के ठीक पीछे स्वाधिष्ठान चक्र की स्थिति है। स्वाधिष्ठान, स्व और अधिष्ठान के संयोग से बना है जिसका शब्दिक अर्थ है, स्वयं का निवास स्थान। इस चक्र का चिन्ह तेज लाल रंग का षट्दलीय पद्म है। दलों पर मंत्र — बं, भं, मं, यं, रं, लं लिखा हुआ है। इसका बीज मंत्र 'वं' है। यह जल तत्व का प्रतिनिधि चक्र है। जिसकी तन्मात्रा रस है।

प्रिय शिक्षार्थियों, स्वाधिष्ठान चक्र का प्रमुख संबंध, उत्सर्जक एवं प्रजनन अंगों से है। वस्तुतः यह इन्द्रिय सुखोपभोग की अभिलाषा का प्रतीक है अर्थात इस स्तर में आरूढ़ व्यक्ति इन्द्रिय सुखोपभोग की लालसा में ही प्रयासरत रहता है। इस स्तर का व्यक्ति स्वादिष्ट भोजन, मद्य सेवन तथा मैथुन में ही संलग्न रहता है, इस कारण उसकी शक्ति अतीनिद्रय स्तर की सुखानुभूति से वंचित रह जाती है। यह चक्र अचेतन मन का स्थान है। इस केन्द्र का शुद्धिकरण कर मनुष्य पाशविक प्रवृत्ति से ऊपर उठ कर उर्ध्वगामी हो जाता है।

7.2.3 मणिपुर चक्र

मणिपुर का शब्दिक अर्थ मणियों का नगर होता है। मणि का एक अर्थ अतीव प्रकाश भी होता है, जो व्यक्ति की उर्जा एवं आभा का प्रतीक है। यह अग्नि तत्व का केन्द्र है जिसकी तन्मात्रा रूप है। मणिपुर चक्र का वर्ण दस दलों वाले पद्म के रूप में होता है, जिसका रंग पीला है। इन दलों पर डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं अंकित हैं। बीज मंत्र 'र' है।

मणिपुर चक्र की स्थिति, नाभि के पीछे, रीढ़ में होती है, जिसका संबंध पाचन तथा भोजन के अवशोषण से होता है। इसके अतिरिक्त यह अग्नाशय, पित्ताशय तथा पाचक द्रव, अम्ल, रस आदि के श्राव का नियन्त्रण करता है। मणिपुर चक्र, किडनी के ऊपर स्थित एड्रिनल ग्रंथि का भी नियंत्रण करता है। जो लोग आलस्य, सुस्ती , निराशा, अवसाद, अपचन और मधुमेह से पीड़ित है, उन्हें मणिपुर चक्र पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। यहां प्राण एवं अपान का मिलन होता है, जिसके परिणामस्वरूप आवश्यक ताप की उत्पत्ति होती है जो जीवन रक्षा के लिए अनिवार्य है।

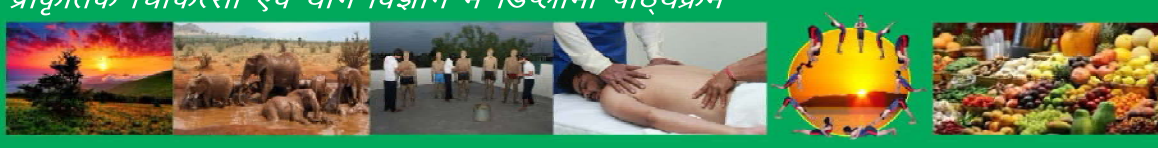

टिप्पणी

7.2.4 अनाहत चक्र

अनाहत का शाब्दिक अर्थ आहत रहित या आघात रहित होता है। भौतिक जगत की समस्त ध्वनियां, दो वस्तुओं के टकराव से होती हैं। परन्तु हठयोग की मान्यतानुसार भौतिक जगत के परे की ध्वनि आहत रहित होती है। इसे ही अनाहत ध्वनि कहते हैं। हृदय केन्द्र वह स्थान है, जहां से ये ध्वनियां उत्पन्न होती है। हठयोगी इस आंतरिक ध्वनि की तरंगों को ग्रहण करता है। यह वक्ष के केन्द्र में पीछे मेरूदण्ड में स्थित होता है।

अनाहत चक्र बारह दल वाले नीले कमल के रूप में दर्शाया जाता है। दलों पर अंकित वर्ण हैं— कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञ, टं, ठं। यह चक्र वायु तत्व का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी तन्मात्रा स्पर्श है। इसका बीज मंत्र 'यं' है।

भौतिक स्तर पर अनाहत चक्र का सम्बंध हृदय व फेफड़ों से है। साथ ही इसका रुधिर एवं श्वसन संस्थान से भी इसका सम्बंध पाया जाता है। इस प्रकार शिक्षार्थियों, हृदय रोग, रक्तचाप की समस्या, क्षय रोग (टी.बी.) और अस्थमा आदि रोग, इस चक्र से सम्बंधित हैं। अनाहत चक्र पर मन को एकाग्र करने से, उक्त रोगों से निजात मिलती है। यह निःस्वार्थ प्रेम, करुणा, मातृत्व तथा क्षमाशीलता विकसित करता है।

7.2.5 विशुद्धि चक्र

विशुद्धि का शाब्दिक अर्थ है विशेष रूप से शुद्ध। चूंकि इस चक्र पर शुद्धिकरण (मन एवं शरीर) की प्रक्रिया बहुत तेज हो जाती है, इसलिए ही इसे विशुद्धि चक्र कहा जाता है। यह चक्र गर्दन के पीछे कण्ठ कूप के पीछे, मेरूदण्ड में स्थिति होता है। इसका सांकेतिक चिन्ह सोलह पंखुड़ियों वाला कमल दल है, जिसका रंग जामुनी मिश्रित धुएं का रंग है। इन दलों पर — अं, आं,इं,ईं,उं,ऊं ऋं, ॠं,ऌं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः स्वर अंकित हैं। इसका बीज मंत्र 'हं' है। यह आकाश तत्व का प्रतिनिधित्व करता है तथा इसकी तन्मात्रा शब्द है।

विशुद्ध चक्र विवेक एवं सही समझ जागृत करने का स्थान है। यह कंठ नलिका, लैरिन्क्स, थायराइड एवं पैराथायराइड ग्रंथियों का नियमन करता है। शरीर के इन अंगों में उत्पन्न रोगों को, इस चक्र पर एकाग्रता करने से ठीक किया जा सकता है। ग्रीवा का यह केन्द्र वह स्थान है, जहां दिव्य रस अमृत का पान किया जा सकता है। खेचरी मुद्रा के अभ्यास द्वारा इस रस की ग्रंथि को क्रियाशील बनाया जा सकता है।

7.2.6 आज्ञाचक्र

आज्ञा का शाब्दिक अर्थ आदेश होता है। चेतना की गहन अवस्था में इस चक्र से आदेश दिया जाता है, जो शरीर के समस्त अंगों तक पहुंचता है, इसी कारण इसे आज्ञाचक्र कहते हैं। मध्य मस्तिष्क में, भ्रूमध्य के पीछे मेरूदण्ड के शीर्ष पर, इस चक्र की स्थिति है। इस चक्र को तीसरा नेत्र, ज्ञान, चक्षु, त्रिकुटी, त्रिवेणी, भ्रूमध्य, गुरूनेत्र या शिव चक्र कहते हैं। यह चक्र कमल की दो

टिप्पणी

पंखुडियों के रूप में दर्शाया जाता है। ये दो पंखुडियां सूर्य तथा चन्द्र, पिंगला तथा इड़ा का प्रतीक हैं। इसका रंग हल्का भूरा या सफेद है। दलों पर हं, क्षं लिखा होता है, जो प्राणशक्ति के ऋणात्मक एवं धनात्मक प्रवाह का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसका बीज मंत्र ऊँ है। इस चक्र का तत्व मन है। जब आज्ञा चक्र जागृत होता है, तब मन स्थिर एवं शक्तिशाली हो जाता है, तथा प्राणों के ऊपर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त होता है। यह चक्र अतीमानसिक शक्तियों जैसे – अतीन्द्रिय दृष्टि, अतीन्द्रिय श्रवण तथा दूर संवेदन के जागरण के लिए उत्तरदायी होता है।

7.2.7 सहस्रार

सहस्त्रार का शाब्दिक अर्थ एक हजार होता है। इसका प्रतीक एक हजार दल वाले प्रकशित कमल के रूप में है। यह सिर के शीर्ष भाग, जहां छोटे बच्चे की कोमल अस्थि होती है, पर अवस्थित होता है। वस्तुतः यह चक्र नहीं, बल्कि उच्च चेतना का निवास स्थान है। कमल के केन्द्र पर, एक उज्जवल शिवलिंग है। जो पवित्र चेतना का प्रतीक है। यह अनादि–अंनत एवं असीम चेतना का स्थान होता है। यह वही स्थल है जहां शिव–शक्ति का योग, चेतना का शक्ति से संयोग तथा व्यक्तिगत आत्मा का असीम आत्मा से मिलन होता है। यही हठयोग का परम लक्ष्य है। प्रकृति का पुरुष से मिलन ही योग है। इसे ही कुण्डलिनी जागरण कहते हैं।

7.3 कुण्डलिनी

कुण्डलिनी शब्द की उत्पत्ति कुण्डल शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ सांप होता है। हठयोग एवं मंत्र दर्शन की मान्यता है, कि कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र पर साढ़े तीन लपेटा लिए हुए सोई है। उसकी सही सुषुप्ति स्थिति ही जीवात्मा का बंधन है। शक्ति सुषुम्ना के मार्ग को अवरूद्ध करते हुए, वहीं सोई हुई है। हठयोग के अंगों – यथा षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, बंध, मुद्रा तथा ध्यान–समाधि आदि का अभ्यास कर कुंडलिनी शक्ति को जागृत किया जाता है। यह शक्ति मूलाधार से होते हुए सभी चक्रों का बेधन कर अतंतः सहस्रार पर आकर विराम लेती है। इस शक्ति का सहस्रार पर आकर शिव में लीन हो जाना ही, कुण्डलिनी जागरण कहलाता है। जागृति के उपरान्त कुण्डलिनी सब चक्रों से होती हुई सहस्रार पर पहुंचती है तथा उसी स्रोत में उसका विलीनिकरण हो जाता है, जहां से उसकी उत्पत्ति हुई है।

7.4 नाड़ी

नाड़ी का शाब्दिक अर्थ है– धारा या प्रवाह। आधुनिक समय में नाड़ी शब्द का अर्थ 'नस या तंत्रिका' शब्द से लिया गया है। किन्तु, हठयोग के अनुसार नाड़ी और नसें एक नहीं हैं, क्योंकि नाड़ी की रचना सूक्ष्म तत्वों से होती है। नसों और तंत्रिकाओं की स्थिति भौतिक शरीर में होती है। किन्तु नाड़ियां अतीन्द्रिय शरीर में होती है। ये वे सूक्ष्म नलिकायें हैं जो हमारे सूक्ष्म शरीर में स्थित होती हैं। इन्हीं के माध्यम से प्राण शक्ति एक जगह से दूसरे जगह पर जाती है। हठयोग ग्रंथों के अनुसार, हमारे सूक्ष्म शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियां पायी जाती हैं। शिव संहिता के अनुसार, हमारे शरीर में साढ़े तीन लाख नाडियां हैं। किन्तु अधिकतर हठयोग ग्रंथ बहत्तर हजार नाड़ियों पर एकमत हैं। इन नाड़ियों में 14 नाड़ियां बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनमें से भी 3

टिप्पणी

नाड़ियां सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये तीन नाड़ियां हैं– **इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना**। इन तीनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है– सुषुम्ना नाड़ी। सभी बहत्तर हज़ार नाड़ियां इसी सुषुम्ना नाड़ी की 34 नाड़ियां हैं। शिक्षार्थियों, आइये इन तीन प्रमुख नाड़ियों का संक्षिप्त परिचय समझें–

प्रमुख नाड़ियां

इड़ा | पिंगला | सुषुम्ना

7.4.1 इड़ा नाड़ी

इड़ा नाड़ी मूलाधार चक्र के बांयी ओर से निकलकर, प्रत्येक चक्र में से वक्राकार बहती हुई, अन्त में आज्ञा चक्र के बांयी ओर समाप्त होती है। इड़ा का रंग नीला माना गया है। यह ऋणात्मक होती हैं, जिसे चंद्र नाड़ी भी कहते हैं। यह हमारी मानसिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। यह नाड़ी शीतलता प्रदान करती है, जिसके कारण इसे, परानुकंपी तंत्रिका का नियन्त्रक माना जाता है। जब व्यक्ति की इड़ा नाड़ी चल रही होती है, तो **मानसिक शक्तियों की प्रधानता होती** है। **मन अंतर्मुखी होता है। इस अवधि में चिंतन, मनन तथा एकाग्रता का कार्य करने में सरलता होती है**। इड़ा नाड़ी का प्रवाह अधिकतर निद्रावस्था में होता है।

> यदि भोजन के समय इड़ा नाड़ी का प्रवाह होता है तो पाचन क्रिया ठीक नहीं होती है तथा अपचन हो जाता है।

7.4.2 पिगंला नाड़ी

पिंगला नाड़ी – मूलाधार चक्र के दांयी ओर से निकलकर, प्रत्येक चक्र में इड़ा नाड़ी की विपरीत दिशा में वक्राकार बहने वाली पिंगला नाड़ी, अंततः आज्ञाचक्र के दांयी ओर समाप्त होती है। **इसका रंग लाल होता है। यह धनात्मक होती है जिसे सूर्य नाड़ी भी कहते हैं। यह नाड़ी प्राणशक्ति एवं उर्जा शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है**। यह सक्रिय बहिर्मुखी एवं पुरूष जातीय है। दांये नथुने के प्रवाहकाल में प्राणशक्ति अधिक क्रियाशील होती है, इससे शारीरिक कार्य, पाचन आदि में सहायता मिलती है। इसका प्रवाह गर्म होता है इसी कारण, इसके प्रवाह काल में मन बहिर्मुखी रहता है एवं शरीर में अधिक ताप उत्पन्न होता है।

> यदि रात्रि में पिंगला का प्रवाह अधिक होता है तो व्यक्ति को कठिनाई से नींद आती है।

7.4.3 सुषुम्ना नाड़ी

सुषुम्ना नाड़ी – सुषुम्ना नाड़ी मेरूदण्ड के केन्द्र में, इड़ा तथा पिंगला के मध्य में स्थित होती है। सुषुम्ना नाड़ी का प्रवाह, मेरूदण्ड में मूलाधार से सहास्रार तक होता है। इस सुप्त नाड़ी का रंग चांदी सा है। यह आध्यात्मिक मार्ग है, जो सामान्यतया सुप्त ही रहता है। जब इड़ा तथा

पिंगला नाड़ी को षट्कर्मों तथा अन्य हठयौगिक क्रियाओं के अभ्यास से शुद्ध कर दिया जाता है तो, प्राण का प्रवाह संतुलित हो जाता है। जब इड़ा एवं पिंगला नाडियां, शुद्ध तथा संतुलित हो जाती हैं तथा मन में नियंत्रण आ जाता है और सुषुम्ना नाड़ी में प्राण प्रवाहित होने लगता है। ध्यान में सफलता के लिए, सुषुम्ना का प्रवाहित होना आवश्यक है। जब सुषुम्ना प्रवाहित होती है तब कुण्डलिनी जागृत होकर, चक्रों से ऊपर चढ़ती हुई, सहस्रार की ओर उन्मुख होती है।

यूनिटगत प्रश्न 7.2

A. सुमेल कीजिए—

1.	मूलाधार चक्र	क.	अग्नि तत्व का प्रतिनिधित्व
2.	स्वाधिष्ठान चक्र	ख.	वायु तत्व का प्रतिनिधित्व
3.	मणिपुर चक्र	ग.	पृथ्वी तत्व का प्रतिनिधित्व
4.	अनाहत चक्र	घ.	आकाश तत्व का प्रतिनिधित्व
5.	विशुद्धि चक्र	ङ.	जल तत्व का प्रतिनिधित्व

B. रिक्त स्थान भरिए —

1. कुण्डलिनी शब्द की उत्पत्ति .... शब्द से हुई हैं।
2. नाड़ी शब्द का अर्थ है .... ।
3. नाड़ियों में तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाड़ियां हैं — इड़ा, पिंगला और .... ।

7.5 हठयोग के अंग

महर्षि पतजंलि का राजयोग, योग के आठ अंगों को मानता है। ये अंग हैं : **यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान तथा समाधि**। किन्तु हठयोग ग्रंथ, यम तथा नियम को छोड़कर आगे बढ़ते हैं। गोरख संहिता 6 अंगों को ही प्रमुखता देती है। हठयोगप्रदीपिका योग के चार अंग—आसन, कुम्भक (प्राणायाम) मुद्रा तथा नादानुसंधान को ही महत्व देती है। घेरंड संहिता, सप्तांग योग की चर्चा करती है। यह ग्रंथ हठयोग का एक प्रामाणिक ग्रंथ है जो हठयोग की विस्तृत विवेचना करता है। इसलिए हम यहां संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं। ये सात अंग इस प्रकार है —

षटकर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद्दृढ़म्।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता।।
प्राणायाल्लाधवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनः।
समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः।।

टिप्पणी

सप्तांग योग

षट्कर्म | आसन | मुद्रा | प्रत्याहार | प्राणायाम | ध्यान | समाधि

षट्कर्मों से शरीर शुद्धि और आसनों से दृढ़ता, मुद्राओं से स्थिरता तथा प्रत्याहार से धैर्य की प्राप्ति होती है। प्राणायाम से शारीरिक हल्कापन, ध्यान से आत्म–साक्षात्कार और समाधि से निर्लिप्तता तथा बिना संशय मुक्ति प्राप्त होती है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

7.5.1 षट्कर्म

स्थूल शरीर को शुद्ध करने के लिए, षट्कर्म का अभ्यास आवश्यक है। शरीर के विषाक्त तत्व या अशुद्धियों को दूर किये बिना उच्च योगाभ्यास में सफलता मिलना कठिन है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हठयोगियों द्वारा, इन 6 वैज्ञानिक व यौगिक क्रियाओं का विकास किया गया है। इन्हीं 6 यौगिक क्रियाओं को ही षट्कर्म कहते हैं। ये षट्कर्म हैं – **धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक, कपालभाति**।

षट्कर्म

धौति | वस्ति | नेति | नौलि | त्राटक | कपालभाति

A) **धौति** – धौति का शाब्दिक अर्थ है– धोना या सफाई करना। इस क्रिया के द्वारा योगी जन अपने शरीर के अंगों की सफाई करते हैं इसीलिए इसे धौतिकर्म कहते हैं। धौति को भी चार अंगों में विभक्त किया गया है – **अन्तधौति**, **दन्तधौति**, **हृद्धौति** और **मूलशोधन**।

धौति

अन्तधौति | दन्तधौति | हृद्धौति | मूलशोधन

(i) **अन्तधौति** – अन्तधौति को भी चार उपभागों में विभक्त किया गया है – ये हैं – **वातसार**, **वारिसार**, **वह्निसार** और **बहिष्कृत**।

(क) वातसार अन्तधौति –

- दोनों होठों को कौवे की चोंच के समान कर, मुंह द्वारा धीरे–धीरे वायु को पियें या अन्दर लें।

टिप्पणी

- पूरी तरह से वायु भर जाने पर, पेट में उस वायु को चलायें और फिर उस वायु को, बाहर निकाल दें ।

(ख) **वारिसार अन्तधौति** – वारिसार में वारि का अर्थ जल तथा सार का अर्थ तत्व होता है अर्थात् जल तत्व से शरीर के अंग को धोना वारिसार धौति है । इसे ही आज की भाषा में शंख प्रक्षालन कहते हैं ।

- इस क्रिया में मुख से धीरे–2 जल पीते हुए गले तक भर लेना है ।
- इसके बाद शंखप्रक्षालन के पांच आसनों ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन, तिर्यक भुजंगासन तथा उदराकर्षण का अभ्यास कर जल को गुदामार्ग से बाहर निकाल देना होता है ।
- इसका अभ्यास गुरू के मार्गदर्शन में करना चाहिए ।

(ग) **वह्निसार अन्तधौति** – वह्निसार में वह्नि का अर्थ अग्नि होता है । इस प्रकार, जिस क्रिया द्वारा जठराग्नि को तीव्र करके पाचन शक्ति को बढ़ाया जाता है उसे बह्निसार या अग्निसार कहते हैं ।

- इस क्रिया में मुख से श्वास बाहर निकालकर बाहर रोक कर, नाभि को मेरूदण्ड की ओर अन्दर –बाहर किया जाता है ।
- जब तक श्वास को बाहर आसानी से रोक सकते हैं तब तक इस क्रिया को करना चाहिए ।
- किसी भी प्रकार की असुविधा होने के पूर्व पेट के परिचालन को रोककर श्वास अन्दर लेते हैं ।
- यह अग्निसार क्रिया है । इसका अभ्यास योग्य गुरु के मार्गदर्शन में करना चाहिए ।

(घ) **बहिष्कृति अन्तधौति** –

- कौवे की चोंच के समान होठों को करके उनके द्वारा वायु–पान करते हुए उदर को भर लें ।
- उस वायु को आधे धण्टे तक अन्दर उदर में रोकर परिचालित करते हुए गुदामार्ग से बाहर निकाल दें ।
- यह बहिष्कृत धौति है, इसका अभ्यास भी योग्य गुरु मार्गदर्शन में करना चाहिए ।

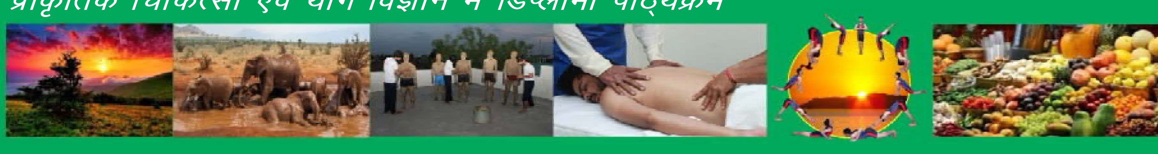

टिप्पणी

(ii) दन्तधौति – दन्तधौति के भी पांच भेद हैं – दन्तमल, जिह्वा मूल, कर्णरंध्र और कपालरंध्र। दोनों कानों की सफाई करने को इन्हें दो प्रकार माना गया है। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

(क) **दंतमूल धौति** – कत्थे के रस अथवा विशुद्ध मिट्टी से दांतों की जड़ों को मांजना चाहिए।

(ख) **जिह्वाशोधन धौति** – तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को कण्ड में डाल जिह्वा को स्वच्छ करन चाहिए।

(ग) **कर्णरन्ध्र धौति – दोनों कानों के छिद्रों को साफ करने के कारण दन्तधौति में इसे तीसरा और चौथा प्रकार माना गया है।** तर्जनी और अनामिका द्वारा योगीजन दोनों कानों के छिद्रों की सफाई करते हैं।

(घ) **कपालरन्ध्र धौति** – अपने दांये हाथ की अंगुलियों को समेटकर, एक कप की आकृति बनाकर, उस कप की आकृति वाले हाथ में पानी भरकर, अपने कपालरन्ध्र यानी सिर के ऊपरी भाग पर हल्की–2 थपकी देनी चाहिए।

(iii) हृद्‌धौति – शिक्षार्थियों, हृद्‌धौति के भी तीन उपभेद हैं – **दण्ड धौति, वमन धौति** और **वसन धौति अर्थात् वस्त्र धौति**। जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

(क) **दण्ड धौति** – केले के मृदु भाग के डण्डे, हल्दी के डण्डे या बेंत को भोजन नली में घुसाकर धीरे–2 उसे बाहर निकालना चाहिए। आजकल रबड़ की दण्डधौति भी आने लगी है, उसका उपयोग किया जा सकता है। किन्तु दण्ड धौति का अभ्यास योग्य मार्गदर्शन में ही करें।

(ख) **वमन धौति** – भोजन के बाद में कंठ तक पीकर और फिर क्षण भर बाद ऊपर की ओर देखते हुए वमन द्वारा जल को बाहर निकाल देने को वमन धौति कहते हैं। यह बाघीक्रिया के नाम से भी जानी जाती है। शिक्षार्थियों, खाली पेट भी, कंठ तक जल पीकर वमन किया जाता है।

(ग) **वसन धौति** – इसका एक दूसरा नाम वस्त्र धौति भी है, महीन वस्त्र की चार अंगुल चौड़ी पट्टी लेकर, धीरे–2 उसे बाहर निकाल लें। इसका अभ्यास भी योग्य मार्गदर्शन में करना चाहिए।

iv) मूल शोधन – इस क्रिया में गुदा द्वार की सफाई होती है। उकडू बैठकर हल्दी की नरम जड़ अथवा मध्यमा अंगुली को गुदाद्वार में डालना चाहिए। दो–तीन मिनट तक उसे अन्दर छोड़कर धीरे–2 उसे बाहर निकाल लें। इसका अभ्यास भी योग्य मार्गदर्शन में करना चाहिए।

टिप्पणी

(B) वस्ति – वस्ति कर्म दो प्रकार का होता है – जल वस्ति, स्थल वस्ति।

(क) **जल वस्ति** – जल में नाभिपर्यन्त बैठकर उत्कट आसन लगायें और गुदा देश का आकुंचन–प्रसारण करें, यह जल वस्ति है।

(ख) **स्थल वस्ति** – अश्विनी मुद्रा के द्वारा गुदा का आकुंचन –प्रसारण करें। यह स्थल वस्ति है।

(C) नेति क्रिया – नेति कर्म दो प्रकार का होता है – जल नेति, और सूत्र नेति।

(क) **जल नेति** – टोंटी दार लोटे की टोंटी को, एक नाक में डालकर दूसरी तरफ झुककर, दूसरी नाक से पानी को बाहर निकलने दें। इसी प्रकार, दूसरी नाक से भी करें। यह जल नेति हैं।

(ख) **सूत्र नेति** – आजकल रबड़ की कैथेटर आती है उसे एक नासिका मार्ग से डालकर धीरे–2 मुंह से बाहर निकाल लिया जाता है। इसी प्रकार दूसरे नाक से भी डालना चाहिए। यह सूत्र नेति है।

(D) नौलि – उदर को दोनों पार्श्वों में अत्यन्त वेग पूर्वक घुमाना चाहिए। यह नौलि कर्म है। इसका अभ्यास योग्य मार्गदर्शन में करना चाहिए।

(E) त्राटक – आंखों की पलकों को रोक कर, जब तक आंसू न गिरने लगें, तब तक किसी सूक्ष्म लक्ष्य की ओर टकटकी लगाकर देखते रहने की क्रिया त्राटक कहलाती है। योग्य मार्गदर्शन में ही इसका अभ्यास करें।

(F) कपाल भाति – श्वास को नासिका से सहज रूप में लेकर नासिका द्वारा एक हल्के झटके से बाहर निकाल देने को कपाल भाति कहते हैं।

7.5.2 आसन

हठयोग में आसन का अर्थ, मन को स्थिर करने हेतु बैठने की विशेष स्थिति से है। हठयोग परम्परानुसार, चौरासी लाख आसन माने जाते हैं। इनमें चौरासी आसनों को प्रमुख माना जाता है। किन्तु, घेरण्ड ऋषि ने अपनी पुस्तक में 32 आसनों की चर्चा की है। विस्तृत व्याख्या के लिए उनकी पुस्तक का अध्ययन कर सकते हैं।

7.5.3 मुद्रा

चित्त के किसी विशेष भाव को मुद्रा कहते हैं। योगशास्त्र में अनेक मुद्राओं का वर्णन किया गया है। महर्षि घेरण्ड ने 25 मुद्राओं का उल्लेख किया है, जिनका वर्णन उनकी पुस्तक में है। किन्तु इनका अभ्यास योग्य मार्ग दर्शन में करें।

टिप्पणी

7.5.4 प्रत्याहार

इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर, अपने करण में विलीन करना, मन को एकाग्र करना प्रत्याहार कहलाता हैं।

7.5.5 प्राणायाम

प्राण का नियमन एवं नियन्त्रण करना प्राणायाम कहलाता है। ऋषियों का मत था कि प्राणायाम के अभ्यास द्वारा साधक अपनी जीवनी शक्ति पर नियन्त्रण कर लेता है, जिससे उसे शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। ऋषियों ने अनेक प्रकार के प्राणायामों की खोज की थी। किन्तु उनमें से आठ प्राणायामों की चर्चा की है, जिनका विस्तृत विवरण उनकी पुस्तक में मिलता है।

7.5.6 ध्यान

किसी आलम्बन पर मन लगाकर लगातार, अधिक समय तक टिके रहना, ध्यान कहलाता है। ध्यान के अभ्यास से मन शांत, एकाग्रता की सर्वोत्कृष्ट स्थिति मानी जाती है। चेतना को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए ध्यान का अभ्यास बहुत महत्वपूर्ण है।

7.5.7 समाधि

समाधि, चित्त के एकाग्रता की सर्वोत्कृष्ट स्थिति मानी जाती है। यह स्वयं अपने आप के स्वरूप में स्थिति है। जब चित्त की समस्त वृत्तियां अपने कारण चित्त की समस्त वृत्तियां अपने कारण चित्त में विलीन हो जाती है और द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है तो वह समाधि की अवस्था होती है।

7.6 हठयोग अभ्यास के लाभ

हठयौगिक क्रियाओं के अभ्यास से मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है। एक ओर जहां यह, उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक शांति देता है। वहीं दूसरी ओर बौद्धिक उन्नति तथा भावनात्मक संतुलन के साथ आध्यात्मिक उन्नति भी देता है। शिक्षार्थियों इनका संक्षिप्त विवरण जानें–

1. **उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य** – यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से शारीरिक स्वास्थ्य में वृद्धि होती है।
   - प्रत्येक उम्र का व्यक्ति इसका अभ्यास कर सकता है।
   - स्वस्थ्य लोगों को भविष्य में होने वोले रोगों से बचाता है तथा जो किसी कारणवश रोगी या कमजोर हैं, योग के अभ्यास से उन्हें रोग मुक्त करने में मदद करता है।
   - षट्कर्म के अभ्यास से शरीर के विषाक्त तत्वों को बाहर निकालने में मदद मिलती है।

- अन्य यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ जाती है।

टिप्पणी

2. **मानसिक शांति** – यौगिक क्रियाओं के नियमित अभ्यास से व्यक्ति सुख–दुख, राग–द्वेष, अच्छा–खराब के द्वन्द्वों से तो ऊपर उठ ही जाता है। साथ ही कामना, आसक्ति, भय लोभ, काम , क्रोध जैसे मानसिक विकारों पर विजय दिलाकर साधक को मुक्ति दिलाता है। मन शांति तथा मन की एकाग्रता, भौतिक उन्नति के लिए भी उतने ही आवश्यक हैं जितना आध्यात्मिक उन्नति के लिए। योग के अभ्यास से साधक को ये सब सहज ही मिल जाते हैं।

3. **भावनात्मक संतुलन** – सामान्य मनुष्य ईर्ष्या, घृणा, शारीरिक प्रेम, वासना, अपमान तथा सम्मान की आग में निरन्तर जलता रहता है। योग के अभ्यास से साधक में, बुद्धि तथा विवेक जागृत होता है। वह संसार की असारता को समझने लगता है और आवश्यकता से अधिक वह संसार में उलझता नहीं है। इसलिए उसमें भावों का संतुलन बना रहता है।

4. **आत्मिक उन्नति** – इस संसार में योग ही एकमात्र ऐसा विज्ञान है। जो मनुष्य को बहुत कम समय में ही सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धि तक पहुंचा देता है। अन्य सारी विधाएं केवल सांसारिक ज्ञान कराती हैं, जबकि योग मनुष्य को संसार पर विजय प्राप्त कर सर्वोच्च सुख प्रदान करता है।

7.7 अन्य यौगिक पथ एवं परम्पराएं

योग साधना का एक ही लक्ष्य है कि मानव दिव्य जीवन जिये और आध्यात्मिक शिखर की सीढ़ियां चढ़ता चला जाए, जिससे जीवन के वास्तविक आनंद की प्राप्ति की जा सके। योग साधना के रहस्य को समझने के लिए निम्न प्रमुख परम्पराएं हैं –

1. हठयोग 2. अष्टांग योग 3. कर्मयोग 4. भक्ति योग 5. ज्ञान योग आदि।

हठयोग के विषय में आप पढ़ चुके हैं। अब आप कुछ अन्य परम्पराओं के विषय में भी जानेंगे।

1. अष्टांग योग

मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए महर्षि पतंजलि ने योग के आठ अंगों का प्रतिपादन किया है, जो अष्टांग योग के नाम से लोकप्रिय है। इन्हीं आठ अंगों को राजयोग भी कहा जाता है।

महर्षि पतंजलि ने निम्न आठ अंग बताये हैं –

1. यम (आत्म संयम)
2. नियम (आत्म शोधन)

टिप्पणी

3. आसन (शारीरिक मुद्राएं)
4. प्राणायाम (श्वास – प्रश्वास का नियमन)
5. प्रत्याहार (इंद्रियों को उनके विषय से रोकना अर्थात अन्तर्मुख व आत्मोन्मुख करना)
6. धारणा (चित्त की एकाग्रता)
7. ध्यान (तल्लीनता)
8. समाधि (पूर्ण लक्ष्य मात्र में तन्मय हो जाना)

अष्टांग योग के विषय पर हम आपके साथ पिछली यनिट में विस्तार से चर्चा कर चुके हैं।

2. कर्म योग

मनुष्य का जीवन कर्म प्रधान जीवन है। कर्म के बिना जीवन शून्य अथवा निरर्थक कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में इस बात का बारम्बार उपदेश मिलता है कि हमें निरंतर कर्म करते रहना चाहिए। कर्म स्वभाव से ही सत्–असत् से मिश्रित होता हैं प्रत्येक कर्म अनिवार्य रूप से गुण–दोष से मिश्रित रहता है। परन्तु फिर भी शास्त्र हमें सतत सत् कर्म करते रहने का ही आदेश देते हैं।

अच्छे और बुरे दोनों कर्मों का अपना अलग–अलग फल होता है। अच्छे कर्मों का फल अच्छा होगा और बुरे कर्मों का फल बुरा। परन्तु अच्छे और बुरे दोनों ही आत्मा के लिए बंधन रूप हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार, यदि हम अपने कर्मों में आसक्त न हों, तो हमारी आत्मा किसी प्रकार के बंधन में नहीं फंसती। इस प्रकार आसक्ति को त्याग कर, हानि–लाभ तथा यश–अपयश में समान भाव रखते हुए, ईश्वर को समर्पित होकर किए जाने वाले कर्म ही 'कर्मयोग' कहलाते हैं। कामना रहित कर्त्तव्य, कर्म के लिए कर्मयोग के स्थान पर, लोक में निष्काम – कर्मयोग अधिक प्रचलित है। यह आत्म साक्षात्कार में विशेष सहायक माना गया है।

3. भक्ति योग

भक्ति योग का अभिप्राय यह है कि सभी रूपों, सभी नामों और सभी अवस्थाओं में अपने प्रभु का या अपने परम् इष्ट का दर्शन करना। श्रद्धा और विश्वास भक्ति के दो प्रमुख तत्व हैं। ईश्वर में श्रद्धा, विश्वास होने के बाद ही उनका साक्षात्कार हो सकता है। ईश्वर से निष्काम भाव से ही प्रेम करने को 'विशुद्ध भक्ति' कहते हैं। मोह का अभाव हो जाने पर सांसारिक भोग अच्छे नहीं लगते, उस समय भगवान की स्मृति अधिक समय तक बनी रहती है जिससे भक्त ईश्वर की भक्ति में लीन रहता है। यही भक्ति योग की पराकाष्ठा है। योग की समस्त धाराओं में भक्ति योग श्रेष्ठतम है।

टिप्पणी

4. ज्ञान योग

मन, इन्द्रियों तथा शरीर से होने वाली समस्त क्रियाओं में कर्ता भाव के अभिमान से शून्य होकर, आत्मज्ञान से युक्त होकर सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मा में एक ही भाव से स्थित होने का नाम ज्ञान योग हैं इसी को श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म संन्यास योग भी कहते हैं। इस योग में योगी अपनी आत्मा का अवलोकन करते हुए परम सन्तुष्ट रहता है।

ज्ञान योग तथा कर्मयोग साधन – शैली में भिन्न होते हुए भी परमात्मा की प्राप्ति में एक ही हैं। दोनों ही परम कल्याण कारक हैं।

ज्ञान के प्रकाश में अज्ञान रूपी अहंकार नष्ट हो जाता है। अज्ञान से 'कामना–इच्छा और कामना से कर्म उत्पन्न होते हैं। ज्ञान योग साधना के द्वारा अज्ञान के नष्ट हो जाने पर, कर्म स्वतः समाप्त हो जाते हैं। संपूर्ण कर्मों की समाप्ति ज्ञान में ही होती है।

यूनिटगत प्रश्न 7.3

1. सत्य/असत्य बताईये –

   क. घरेण्ड सहिंता में सप्तांग योग की चर्चा की गई है। ( )

   ख. स्थूल शरीर की शुद्धि के लिए, षटकर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। ( )

   ग. धौति शब्द का शाब्दिक अर्थ है – धोना ( )

   घ. हठयोग में आसन का अर्थ, मन को स्थिर करने हेतु, बैठने की विशेष स्थिति है। ( )

2. सुमेल कीजिए –

क.	अष्टांग योग	अ. हठयोग
ख.	कर्मयोग	ब. ईश्वर के प्रति श्रद्धा, विश्वास एवं पूर्ण समर्पण
ग.	भक्तियोग	स. आसक्ति रहित कर्म
घ.	सप्तांग योग	द. महर्षि पतंजलि

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आपने सीखा कि–

- समाधि तक पहुंचने के लिए योग के विभिन्न पथ या परम्पराएं हैं जैसे – ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्मयोग, राज योग, मंत्रयोग, लय योग, हठयोग आदि।

टिप्पणी

- हठयोग के आदि प्रणेता भगवान शिव माने जाते हैं। उन्हीं की परंपरा में मत्स्येन्द्रनाथ, गुरू गोरक्षनाथ, मीननाथ, भर्तृहरि आदि से लेकर स्वामी स्वात्माराम एवं गोपीचंद पर्यन्तनाथों ने इस परंपरा को जीवित रखा है।

- यौगिक साहित्य के अनुसार हठ दो शब्दों 'हं' और 'ठं' से मिलकर बना है।

- जब इड़ा और पिंगला नाड़ी एक समान चलने लगें, तो सुषुम्ना का जागरण होता है और जब सुषुम्ना निरन्तर चलने लगती है तो शरीर में सूक्ष्म रूप में विद्यमान कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है, जब यह कुण्डलिनी छः चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार में जाकर परमशिव से मिलती हैं तो आध्यात्मिक अर्थों में यह हठयोग कहलाता है।

- अर्थात् प्राण और अपान वायु को प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा मिलाकर सम कर लेना ही हठयोग है।

- चक्र का शाब्दिक अर्थ गोलाकार होता है। हठयोग और तंत्र परम्परा में चक्रों को उर्जा का केन्द्र माना जाता है, जिसके माध्यम से अंतरिक्ष ब्रह्माण्ड की ऊर्जा मानव शरीर में प्रवाहित होती है, ये चक्र हमारे शरीर में वे विशेष स्थान हैं, जहाँ से संपूर्ण शरीर में व्याप्त प्राणों को नियंत्रित किया जाता है।

- कुण्डलिनी शब्द की उत्पत्ति कुण्डल शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ सांप होता है।

- हठयोग ग्रंथों के अनुसार, हमारे सूक्ष्म शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियां पायी जाती हैं। शिव संहिता के अनुसार, हमारे शरीर में साढ़े तीन लाख नाडियां हैं।

- इन नाड़ियों में 14 नाड़ियां बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनमें से भी 3 नाड़ियां सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये तीन नाड़ियां हैं— **इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना**।

- महर्षि पतजंलि का राजयोग, योग के आठ अंगों को मानता है। ये अंग हैं : **यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान तथा समाधि**।

- हठयोगप्रदीपिका योग के चार अंग—आसन, कुम्भक (प्राणायाम) मुद्रा तथा नादानुसंधान को ही महत्व देती है।

- घेरंड संहिता, सप्तांग योग की चर्चा करती है।

- षट्कर्मों से शरीर शुद्धि और आसनों से दृढ़ता, मुद्राओं से स्थिरता तथा प्रत्याहार से धैर्य की प्राप्ति होती है। प्राणायाम से शारीरिक हल्कापन, ध्यान से आत्म—साक्षात्कार और समाधि से निर्लिप्तता तथा बिना संशय मुक्ति प्राप्त होती है।

- **हठयोग में आसन का अर्थ, मन को स्थिर करने हेतु बैठने की विशेष स्थिति से है।** हठयोग परम्परानुसार, चौरासी लाख आसन माने जाते हैं। इनमें चौरासी आसनों को

प्रमुख माना जाता है। किन्तु, घेरण्ड ऋषि ने अपनी पुस्तक में 32 आसनों की चर्चा की है। विस्तृत व्याख्या के लिए उनकी पुस्तक का अध्ययन कर सकते हैं।

- हठयौगिक क्रियाओं के अभ्यास से मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है। एक ओर जहां यह, उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक शांति देता है। वहीं दूसरी ओर बौद्धिक उन्नति तथा भावनात्मक संतुलन के साथ आध्यात्मिक उन्नति भी देता है।

- योग साधना का एक ही लक्ष्य है कि मानव दिव्य जीवन जिये और आध्यात्मिक शिखर की सीढ़ियां चढ़ता चला जाए, जिससे जीवन के वास्तविक आनंद की प्राप्ति की जा सके। योग साधना के रहस्य को समझने के लिए निम्न प्रमुख परम्पराएं हैं –

  1. हठयोग 2. अष्टांग योग 3. कर्मयोग 4. भक्ति योग 5. ज्ञान योग आदि।

यूनिटांत प्रश्न

1. हठयोग का अर्थ बताते हुए, इसका सामान्य परिचय दीजिए।
2. हठयोग से आप क्या समझते हैं? विस्तार से विवेचना कीजिए।
3. मानव शरीर में चक्र, कुण्डलिनी एवं नाड़ियों का वर्णन कीजिए।
4. घेरण्डसंहिता के अनुसार, हठयोग के सप्तांगों पर प्रकाश डालिए।
5. हठयोग का मानव जीवन में विशेष महत्व है। विवेचना कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

8.1

1. सत्य,
2. सत्य,
3. असत्य,
4. सत्य,
5. सत्य

A

1. (ग) ड़ 3. क, 4. ख, 5. घ

टिप्पणी

B

1. कुण्डल,
2. धारा या
3. सुषुम्ना

8.3

1. क. सत्य,
   ख. असत्य,
   ग. सत्य
   घ. सत्य
2. क. द,
   ख. स,
   ग. ब,
   घ. अ

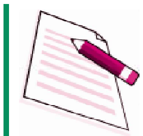

टिप्पणी

8

योग साधना में विघ्न

आप प्रथम यूनिट के अंतर्गत कुछ मुख्य यौगिक ग्रंथों के सामान्य परिचय पढ़ चुके हैं। पातंजल योग सूत्र के साधन पाद में, योग प्राप्ति के विभिन्न साधन बताए हैं। समाधि पाद के अंतर्गत वर्णित अभ्यास उत्तम कोटि के योगियों के लिए उपयुक्त है, जबकि मध्यम व साधारण साधक उन अभ्यासों को करने में सक्षम नहीं हैं। मध्यम कोटि के साधकों के लिए क्रियायोग ही सर्वोत्तम है, जिसमें तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान का समावेश है, और निम्न कोटि के साधकों के लिए अष्टांग योग बेहतर है।

इस यूनिट में आप यह समझ सकेंगे कि समाधि तक पहुँचने के लिए योग साधना में विभिन्न विघ्न आते हैं जिनकी निवृत्ति के पश्चात् ही साधक अपनी साधना पूर्ण करने में सफल हो पाता है। इस यूनिट में हम योग साधना में आने वाले विघ्नों पर चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- योग साधना में षड्रिपु का वर्णन कर सकेंगे;
- पंचक्लेशों पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- योग साधना में आने वाले विक्षेप का उल्लेख कर सकेंगे;
- चित्त वृत्तियों के, निरोध के उपाय समझा सकेंगे।

टिप्पणी

8.1 बाधक तत्व

योग आनन्दमय जीवन जाने की एक कला है। वास्तव में योग का परम लक्ष्य है– समाधि। समाधि तक पहुँचने के लिए साधना की आवश्यकता होती है और योग साधना में जो तत्व बाधा उत्पन्न करते हैं, वे बाधक तत्व कहलाते हैं, जो छः हैं। इन्हें षड्रिपु भी कहा जाता है। हठयोग प्रदीपिका में साधक व बाधक तत्वों के बारे में बताया गया है। साधकतत्व वे हैं जो, योगसाधना में सहायक होते हैं। किन्तु वे तत्व जो योग में प्रगति के लिये बाधक होते हैं वे बाधक तत्व कहलाते हैं। हठयोग प्रदीपिका में प्रथम उपदेश के 15वें व 16वें श्लोक में साधक और बाधक तत्वों का वर्णन मिलता है।

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।।

जनसंगश्च लौल्यं च षड्भिर्योगो विनश्यति।।

अत्याहार– अधिक भोजन का सेवन योग साधना में बाधक है।

प्रयासश्च– अधिक श्रम– बल से अधिक मेहनत करने से योग साधना संभव नहीं है।

प्रजल्पो– अधिक बोलना– जरूरत से ज्यादा वार्तालाप करना भी योग साधना में विघ्न उत्पन्न करता है। अतः साधक को सोच समझ कर, कम शब्दों में वार्ता करनी चाहिए।

नियमाग्रह–नियमपालन में आग्रह– नियमों की अवहेलना करना।

जनसंगश्च– अधिक लोक संपर्क – अधिक लोगों से मिलना–जुलना योग साधना में बाधक है।

लौल्यं– मन की चंचलता यदि मन चंचल है, स्थिर नहीं है तो योग साधना संभव नहीं है। ये छः योगसाधना में बाधक तत्व माने गये है। इन्हें षड्रिपु अर्थात् योग प्रगति मार्ग के दुश्मन कहा गया है।

यूनिटगत प्रश्न 8.1

सही विकल्प चुनिए।

1. योगसाधना में बाधक षड्रिपु का वर्णन मिलता है।

   अ. पतंजलि योगदर्शन में

   ब. श्रीमद्भागवद् गीता में

   स. हठप्रदीपिका में

   द. उपरोक्त में से कोई नहीं

टिप्पणी

2. अत्याहार है :
   - अ. साधक तत्व
   - ब. बाधक तत्व
   - स. अन्तराय
   - द. अष्टांग योग
3. ऐसे तत्व जो योग साधना में सहायक के रूप में कार्य करते हैं, कहलाते हैं–
   - अ. अन्तराय
   - ब. साधक तत्व
   - स. बाधक तत्व
   - द. विक्षेप

साधक तत्व

आइए अब यह जानें कि, योग साधना में बाधक तत्वों की तरह क्या कुछ ऐसे तत्व भी हैं, जो सहायक के रूप में भी कार्य करते हैं? जी हाँ हठ प्रदीपिका में छः साधक तत्वों का वर्णन मिलता है।

उत्साहसाहसधैर्य तत्त्वज्ञानाश्चनिश्चयः।
जनसंगपरित्यागे षट्भिर्योगेप्रसिद्धयति।।

अर्थात्, उत्साह, साहस, धैर्य तत्वज्ञान, दृढ़निश्चय, जनसंग का परित्याग ये छः तत्व योग साधना में सहायक है इसलिए साधक तत्व कहे जाते हैं। पातंजल योग दर्शन में भी चार साधक तत्वों का वर्णन मिलता है–

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुखपुण्यापुण्यांविपयाणां भवनातश्चित्तप्रसादनम्

अर्थात् सुखी लोगों के साथ मैत्री, दुखी लोगों के साथ करुणा, पुण्य आत्मा के साथ मुदता तथा अपुण्यात्माओं की उपेक्षा करने से चित्त स्थिर तथा शान्त होता है, जो समाधि की ओर अग्रसर करता है।

8.2 पंचक्लेश

पंचक्लेश पातंजल योग दर्शन के साधनपाद में वर्णित है। पंचक्लेश का शाब्दिक अर्थ है–

पंच + क्लेश

पंच अर्थात् पाँच

क्लेश अर्थात् दुःख देने वाले

टिप्पणी

पातंजल योग दर्शन के अन्तर्गत साधन पाद में मध्यम अधिकारियों को योग के परम लक्ष्य को प्राप्त करने के साधन बताये गये हैं।

जिस प्रकार समाधि पाद में उत्तम अधिकारियों के लिये चित्त की पाँच वृत्तियाँ प्रमाण, विकल्प विपर्यय, निद्रा, स्मृति बतायी गयी हैं। उसी प्रकार साधनपाद में इन्हें पंचक्लेश कहा गया है। यह चित्त को दूषित करते हैं, जिससे समाधि की सिद्धि नहीं हो पाती, इनको दूर करने के उपाय के साथ ही इस पाद का आरंभ किया गया है।

क्रियायोग— तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान क्रियायोग है। क्रियायोग क्लेशों की तीव्रता को कम करने के लिये बताया गया है।

क्लेशों के प्रकार—

पंच क्लेश निम्न हैं, इन्हें समाधिपाद के सूत्र —3 में बताया गया है।

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ।।

अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश ये पंचक्लेश हैं।

ये क्लेश इसलिए कहलाते हैं क्योंकि ये ही जीवमात्र को सांसारिक बंधनों के कुचक्र में फंसाते हैं व दुःखकारक हैं। इप पाँचों क्लेशों को ही मिथ्याज्ञान माना है अर्थात् जीवमात्र जो जगत में देख रहा है उसे ही सत् या विद्यमान मान लेता है किन्तु ये सभी नश्वर हैं। इस प्रकार प्रथम क्लेश जो सब दुखों का कारण है वह अविद्या है। क्रियाशीलता की दृष्टि से क्लेशों की चार अवस्थायें बताई गई हैं :

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषांप्रसुप्ततनुविच्छन्नोदाराणाम् ।।

1. **प्रसुप्त**— चित्त में विद्यमान रहते हुए भी जो क्रियाशील नहीं है वे प्रसुप्त कहलाते हैं।
2. **तनु**—योग के साधनों के अभ्यास से जब क्लेशों की शक्ति कम हो जाती है तब इन्हें तनु कहा जाता है।
3. **विच्छिन्न**— जब कोई क्लेश उदार रहता है तब दूसरा क्लेश दबा रहता है तो उस अवस्था को विच्छिन्न कहते हैं।
4. **उदार**— जिस समय जो क्लेश अपना कार्य पूर्णतया कर रहा होता है तब उसे उदार कहते हैं।

उपरोक्त चारों अवस्थायें सिर्फ अस्मिता, रोग, द्वेष तथा अभि निवेश की ही होती हैं। अविद्या की नहीं होती हैं क्योंकि यह इन सबका मूल कारण है।

अब हम अविद्या के स्वरूप को समझेंगे कि—

टिप्पणी

1. **अविद्या क्या है।**

अविद्या का स्वरूप :

अनित्याशुचिदुः खानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।।

अर्थात्– अनित्य, अपवित्र, दुःख, अनात्म में नित्य, पवित्र, सुख और आत्मभाव की अनुभुति अविद्या है।

इस सूत्र में बताये गये अर्थ को इस प्रकार समझा जा सकता है। जैसे– प्राणीमात्र इस हांड़मांस के शरीर को ही आत्मा समझ लेता है, किन्तु आत्मा तो इससे भिन्न है । इसी प्रकार इस नश्वर संसार में भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति कर सुख का अनुभव करता है, किन्तु वास्तव में ये वस्तुएं नश्वर हैं। अतः हम दुःख को सुख समझते हैं यही अविद्या है।

अब अस्मिता का स्वरूप समझेंगे।

2. **अस्मिता–** *दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मते वास्मिता ।।*

दृक् शक्ति और दर्शनशक्ति इन दोनों का एक रूप सा हो जाना अस्मिता है।

दृक्शक्ति अर्थात् द्रष्टा–दर्शनशक्ति अर्थात् बुद्धि

द्रष्टा चेतन है और बुद्धि जड़ है । इनकी एकता हो ही नहीं सकती है, किन्तु अविद्या के कारण ये एकरूप लगते हैं। यह अस्मिता नामक क्लेश है ।

अविद्या के नाश होने पर अस्मिता का नाश होता है।

अब हम राग के स्वरूप को समझेंगे, जो तीसरा क्लेश है।

3. **राग–** *सुखानुशयी रागः ।।*

सुख की प्रतीत के पीछे रहने वाला क्लेश राग है।

जब प्राणीमात्र को किसी पदार्थ में सुख व आनंद महसूस होता है तब उसे उस पदार्थ में आसक्ति हो जाती है। इस आसक्ति को ही राग कहते हैं।

4. **द्वेष–** *दुखानुशयी द्वेषः ।।*

दुःख की प्रतीत के पीछे रहने वाला क्लेश द्वेष है। प्रतिकूल परिस्थितियों में जिन पदार्थों द्वारा दुःख की प्राप्ति होती है उनसे द्वेष होता है। यह द्वेष भी क्लेश कहलाता है।

5. **अभिनिवेश–**

अब अभिनिवेश नामक क्लेश के स्वरूप को समझते हैं। 'मृत्यु का भय' अभिनिवेश कहलाता है।

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढ़ोऽभिनिवेशः ।।

टिप्पणी

अर्थात् जो परम्परागत रूप से सामान्य मनुष्यों की तरह विद्वानों में भी विद्यमान है वह मृत्यु का डर अभिनिवेश है।

सभी प्राणियों में मृत्यु का डर होता है यह पाँचवा क्लेश है। जो अविद्या के कारण ही है, क्योंकि यदि हम आत्मा के स्वरूप को समझते हैं तब देह के नाश का भय खत्म हो जाता है। क्योंकि आत्मा नित्य है किन्तु अविद्या के कारण हम देह को ही सब कुछ मान लेते हैं, अर्थात् देह को ही आत्मा समझ लेने से देह नष्ट होने के भय से आक्रान्त रहते हैं इस प्रकार हर समय प्राणीमात्र को मृत्यु का भय बना रहा है। यह अविद्या के कारण ही होता है।

यूनिटगत प्रश्न 8.2

1. निम्न कथन में सही व गलत बताइए –

   अ. क्लेश सुख प्रदान करते हैं ( )

   ब. अविद्या सभी क्लेशों का मूल कारण है ( )

   स. क्लेशों का वर्णन पातंजलि योग दर्शन में समाधिपाद में मिलता है। ( )

   द. अभिनिवेश मृत्यु का भय है ( )

2. गलत को पहचानिये–

   अ. अविद्या, अस्मिता, अत्याहार, राग, द्वेष, अभिनिवेश

   ब. अत्याहार, प्रयास, प्रजल्प, नियमाग्रह, प्राणायो, जनसंग।

8.3 योगसाधना में विक्षेप

भारतीय षड्दर्शनों में योगदर्शन व सांख्यदर्शन अति प्राचीन माने गये हैं। योगदर्शन महर्षि पतंजलि कृत है। जिसमें समाधिपाद में चित्त की शुद्धि के उपाय बताये गये हैं। चित्त की शुद्धि होने पर ही समाधि की स्थिति प्राप्त करने के लिये योग साधक योग्य होता है। इसके लिये समाधिपाद में अभ्यास व वैराग्य नामक दो उपाय बताये गये हैं, किन्तु इनके अलावा ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर के भजन कीर्तन तथा अन्य छह साधनों के द्वारा भी समाधि की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। किन्तु साधनकाल में अनेक विघ्न आते हैं जो साधक के लक्ष्य प्राप्ति में बाधक होते हैं। ये विक्षेप कहलाते हैं। महर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्र में 14 प्रकार के विघ्नों का वर्णन किया है और इससे छूटने के उपाय के उपाय भी बताए हैं–

व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्ति दर्शनालब्धभूमिकत्वान
वस्थितत्वानि चित्त विक्षेपस्तेऽन्तरायाः । पा.यो.द. 30।

टिप्पणी

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व– ये नौ (जो कि) चित्त के विक्षेप हैं, वे ही विघ्न है।

1. **व्याधि**– शरीर व इन्द्रियों में रोग का उत्पन्न होना व्याधि है।
2. **स्त्यान**– कार्य करने में इच्छा न होना स्त्यान कहलाता है।
3. **संशय**– अपनी शक्ति में या योग के फल में संदेह होना संशय कहलाता है।
4. **प्रमाद**–योग साधना में लापरवाही बरतना प्रमाद कहलाता है।
5. **आलस्य**– चित्त और शरीर में तमोगुण की अधिकता के कारण कार्य करने की इच्छा ना होना आलस्य है।
6. **अविरति**– चित्त में वैराग्य का अभाव अविरति कहलाता है।
7. **भ्रान्तिदर्शन**–योग के साधनों को उनके फलों के विपरीत समझना अर्थात् उनके विषय में मिथ्याज्ञान होना भ्रान्तिदर्शन कहलाता है।
8. **अलब्धभूमिकत्व**– जब साधक साधना करता है फिर भी उसे योग की स्थिति प्राप्त नहीं होती है तब ऐसी स्थिति को अलब्धभूमिकत्व कहते है। इससे योगसाधक का उत्साह कम हो जाता है।
9. **अनवस्थितत्व**–योगसाधन से चित्त की स्थिरता होने पर भी उसका उस स्थान पर नहीं ठहरना अनवस्थितत्व कहलाता है।

इस प्रकार उपरोक्त विघ्नों के कारण योगसाधना सफल नहीं हो पाती है। इन्हीं विघ्नों के साथ–साथ दूसरे विघ्न भी होते हैं, जो सहभुव कहलाते हैं। ये पांच हैं :

दुखदौर्मनस्यअंगमेजयत्व श्वासप्रश्वासाविक्षेप सहभुवः ।।31।।

पा.यो.सू.31

1. **दुःख** – दुःख तीन प्रकार के होते हैं।
   - **आध्यात्मिक दुःख** – जैसे काम–क्रोधादि मानसिक कारणों से, रोग आदि के कारण व इन्द्रियों में विकलता होने पर मन इन्द्रिय व शरीर में पीड़ा होती है उसको आध्यात्मिक दुःख कहते हैं।
   - **आधिभौतिक दुःख**– जो दूसरे प्राणियों के कारण होती है। मनुष्य, पशु, पक्षी, सिंह, व्याघ्र, मच्छर और अन्य जीवों के कारण होने वाली पीड़ा का नाम आधिभौतिक है।
   - **आधिदैविक दुःख**–दैवीय प्रकोप, सर्दी, गर्मी, धूप, बारिश, बाढ़, ज्वार–भाटा, भूकम्प आदि कारणों से होने वाली पीड़ा आधिदैविक कहलाती है।

टिप्पणी

2. **दौर्मनस्य**–किसी चीज की इच्छा की पूर्ति न होने पर मन में जो क्षोभ होता है, उसे दौर्मनस्य कहते हैं।

3. **अङगमेजयत्व**–शरीर के अंगों में कम्पन होना *अङ्गमेजयत्व* कहलाता है।

4. **श्वास**– बिना इच्छा के बाहर की वायु का भीतर प्रवेश कर जाना *श्वास* नामक विक्षेप है।

5. **प्रश्वास**–बिना इच्छा के भीतर की वायु का बाहर निकलना *प्रश्वास* नामक विक्षेप है। ये पाँचों भी योगसाधना में रूकावट करते हैं। साधना को पूरा नहीं होने देते हैं और विघ्नों के साथ–साथ चलते हैं।

इस प्रकार ये चौदह प्रकार के विघ्न होते हैं। यदि साधक अपनी साधना के दौरान इस प्रकार के विघ्नों का अनुभव करता हो, तो उसे तुरंत इनको दूर करने के उपाय करने चाहिए। इनको दूर करने के लिए महर्षि पतंजलि ने समाधि पाद के अंतर्गत सूत्र संख्या 32–39 तक 8 प्रकार के उपाय बताये हैं जो की इस प्रकार हैं :

1. *तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाऽभ्यासः ।।32।।* अर्थात्

   योग के उपरोक्त विघ्नों के नाश के लिए एक तत्त्व इश्वर का ही अभ्यास करना चाहिए। ॐ नाम के जप करने से ये विघ्न शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

2. *मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ।।33।।*

   अर्थात् सुखी जनों से मित्रता, दुःखी लोगों पर दया, पुण्यात्माओं में हर्ष और पापियों की उपेक्षा की भावना से चित्त स्वच्छ हो जाता है और विघ्न शांत होते हैं।

3. *प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ।।34।।*

   अर्थात् श्वास को बार–बार बाहर निकालकर रोकने से उपरोक्त विघ्न शांत होते हैं। इसी प्रकार श्वास भीतर रोकने से भी विघ्न शांत होते हैं.

4. *विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धिनी ।।35।।*

   अर्थात् दिव्य विषयों के अभ्यास से उपरोक्त विघ्न नष्ट होते हैं।

5. *विशोका वा ज्योतिष्मती ।।36।।*

   अर्थात् हृदय कमल में ध्यान करने से या आत्मा के प्रकाश का ध्यान करने से भी उपरोक्त विघ्न शांत हो जाते हैं।

6. *वीतरागविषयं वा चित्तम् ।।37।।*

   अर्थात् रागद्वेष रहित संतों, योगियों, महात्माओं के शुभ चरित्र का ध्यान करने से भी मन शांत होता है और विघ्न नष्ट होते हैं।

7. *स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ।।38।।*

   स्वप्न और निद्रा के ज्ञान का अवलंबन करने से, अर्थात योगनिद्रा के अभ्यास से उपरोक्त विघ्न शांत हो जाते हैं।

टिप्पणी

8. *यथाभिमतध्यानाद्वा ।।39।।*

अर्थात् उपरोक्त में से किसी भी एक साधन का या शास्त्र सम्मत अपनी पसंद के विषयों (जैसे मंत्र, श्लोक, भगवान के सगुण रूप आदि) में ध्यान करने से भी विघ्न नष्ट होते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 8.3

1. योगसाधना में विक्षेपों की संख्या है

   अ. 7

   ब. 6

   स. 3

   द. 9

2. चित्त के विक्षेपों के अतिरिक्त अन्य विघ्न अर्थात् सहभुव हैं–

   अ. 3

   ब. 5

   स. 8

   द. 9

3. सही मेल कीजिये :

अ.	क्लेश	–	दौर्मनस्य
ब.	सहभुवः	–	अस्मिता
स.	विक्षेप	–	प्रजल्प
द.	षड्रिपु	–	स्त्यान

आपने क्या सीखा?

इस यूनिट में आपने सीखा कि–

- योग का परम लक्ष्य है– समाधि
- समाधि में पहुंचने के लिए योग साधना में विभिन्न विघ्न आते हैं, जिन्हें बाधक तत्व कहते हैं।

टिप्पणी

- जो तत्व योग साधना में सहायक होते हैं, वे साधक तत्व कहलाते हैं।
- महर्षि पतंजलि द्वारा साधन पाद में पंच क्लेश का वर्णन किया गया है। ये चित्त को दूषित करते हैं। जिससे समाधि की सिद्धि नहीं हो पाती। इनको दूर करना आवश्यक है।
- पंचक्लेश हैं–
  - अविद्या
  - अस्मिता
  - राग
  - द्वेष
  - अभिनिवेश

यूनिटांत प्रश्न

1. षड़रिपु से आप क्या समझते हैं? विस्तृत विवेचना कीजिए।
2. पंचक्लेश का वर्णन कीजिए।
3. बाधक तथा साधक तत्वों का वर्णन करते हुए योग साधना में विक्षेप पर प्रकाश डालिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

8.1

1) स, 2) ब, 3) ब

8.2

1) अ. गलत, ब. सही, स. सही, द. सही

2) अ. अत्याहार, ब. प्राणायो

8.3

1) द 2) ब

1) अ. क्लेश – अस्मिता
   ब. सहभुवः – दौर्मनस्य
   स. विक्षेप – स्त्यान
   द. षड्रिपु – प्रजल्प

9

योगाभ्यास करने से पूर्व–निर्देश, तैयारी और सावधानियाँ

अब तक आप योग परिचय, अष्टांग योग, योग के विभिन्न मार्ग आदि के विषय में अध्ययन कर चुके हैं। शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए मानसिक स्वास्थ्य बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि सब ज्ञानात्मक व क्रियात्मक इन्द्रियां और शरीर के विभिन्न अंग, मन से ही आदेश लेते हैं। संपूर्ण स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए, यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, आसन, प्राणायाम, ध्यान, साधना आदि करना बहुत आवश्यक है। इन्हें योगाभ्यास कहा जाता है। क्या आप जानते हैं कि, योगाभ्यास करने से पूर्व, कुछ आवश्यक निर्देशों का पालन करना होता है? साथ ही योगाभ्यास के लिए तैयारी करनी होती है। जी हाँ, यदि आप योगाभ्यास करना चाहते हैं, तो निश्चित रूप से आपको कुछ आवश्यक निर्देशों का पालन करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता है, तो योगाभ्यास से उतना लाभ नहीं मिल सकेगा, जितना कि मिलना चाहिए, अपितु हानि भी हो सकती है।

इस यूनिट में हम, योगाभ्यास करने से पूर्व, आवश्यक निर्देशों व सावधानियों को समझेंगे और योगाभ्यास के दौरान क्या–क्या तैयारियाँ होनी चाहिए, इस पर चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- यौगिक अभ्यास के पूर्व की जाने वाली तैयारियों एवं सावधानियों को समझा सकेंगे;

टिप्पणी

- यौगिक अभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान के चुनाव पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- योग अभ्यास के दौरान यौगिक परिधान और उसके महत्व पर चर्चा कर सकेंगे;
- अभ्यास के लिए योग मैट की आवश्यकता एवं महत्ता का वर्णन कर सकेंगे;
- यौगिक अभ्यास के लिए उपयुक्त समय—सारणी पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- यौगिक अभ्यास के दौरान आवश्यक सावधानियों का उल्लेख कर सकेंगे;
- यौगिक अभ्यास के दौरान अचानक होने वाली विषम परिस्थितियों को संभालने में सक्षम होंगे।

9.1 यौगिक अभ्यास के पूर्व की जाने वाली तैयारियाँ एवं सावधानियां

शिक्षार्थियों, यौगिक अभ्यास, हम सभी के जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि हम अपने परिवार के बड़े एवं बुर्जुगों के क्रियाकलापों पर विचार करें, तो पायेंगे कि वे सभी क्रियाकलाप हमारे योग की विभिन्न यौगिक क्रियाओं से मिलते—जुलते हैं। आप यह भी पायेंगे कि, आज से कुछ वर्ष पूर्व, लोगों द्वारा दैनिक जीवन में किये जाने वाले बहुत से क्रियाकलाप (जैसे— चक्की चलाना, कुएं से पानी खींचना, लकड़ी काटना, खेत से चारा लाना, मशीन से चारा काटना, साइकिल चलाना, बैलों का हल चलाना, खुदाई—गुड़ाई करना इत्यादि) किये जाते थे। यदि इन सभी क्रियाकलापों को ठीक से देखा जाये तो ये सब यौगिक क्रियाएं ही हैं। आज मशीनीकरण का युग है अधिकाशंतः कार्य मशीनों से किये जा रहे हैं, जिससे शारीरिक श्रम न हो पाने के कारण, हमारे संपूर्ण स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है, साथ ही जीवन शैली संबंधित रोग पनप रहे हैं। यही कारण है कि, आज लोग योगाभ्यास की ओर आकर्षित हो रहे हैं। यह वास्तव में, एक अच्छी पहल है कि, लोगों को अपने स्वस्थ जीवन से लगाव है और वे उसे लेकर सजग हैं। और यह उचित भी है कि, सभी को स्वस्थ रहने के लिए योगाभ्यास करना भी चाहिए। तो क्या आप जानते हैं कि योगाभ्यास कराने या करने से पूर्व हमें, किन—किन आवश्यक एवं महत्वपूर्ण निर्देशों का पालन करना चाहिए? साथ ही योग कक्षा की तैयारी कैसे की जाए? आइये इस पर विचार करें—

योग अभ्यास के लिए, हमारा स्थान, परिवेश तथा पहनावा बहुत महत्वपूर्ण है। हमें योग कक्षा की तैयारी और इसके साथ ही, ध्यान देने योग्य विशिष्ट बातों को समझने की जरूरत है।

1. *योग कक्षा की तैयारी*

क) **स्थान :** योगाभ्यास करने के लिए, स्थान का चुनाव सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। ऐसा कहा भी गया है, कि भोजन और ईश्वर—भजन एकांत में करना चाहिए ताकि अभ्यास में किसी भी प्रकार की व्यवधान न पड़े और आप अपने अभ्यास को, पूरी तन्मयता और ध्यान से पूरा कर सकें। अतः ऐसे योग कक्ष का चयन करें जो —

- साफ व स्वच्छ हो;

टिप्पणी

- उचित हवा एवं प्रकाश का संचार रखता हो;
- किसी तरह का अनावश्यक फर्नीचर, सामान, वस्तुएँ आदि योग कक्ष में न हों;
- योग कक्ष में फर्श पूर्णतः समतल हो;
- प्राकृतिक वातावरण हो। यदि आप–पास सुंदर पेड़–पौधे, बाग बगीचे हों या फिर सुंदर रमणीय पर्वत, नदी, सरोवर झरने आदि के साथ योग का पावन स्थान जुड़ा है तो निश्चित ही योग के लिए ऐसा स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। यही कारण है कि आजकल लोग, योग संस्थानों को खुले व प्राकृतिक वातावरण में स्थापित करते जा रहे हैं, जो पर्यटकों को पर्यटन के साथ–साथ, योग अभ्यास करने और सीखने का भी एक अच्छा अवसर प्रदान करते हैं। योगाभ्यास खुले हुए हवादार कमरे में करना चाहिए, साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वहां आसपास ज्यादा शोरगुल न हो। अभ्यास स्थल में या आसपास किसी प्रकार प्रदूषण या दुर्गंध नहीं होनी चाहिए।

चित्र 9.1: योग अभ्यास स्थल

ख) ***साफ, सफाई और स्वच्छता*** : शिक्षार्थियों साफ–सफाई और स्वच्छता का सीधा संबंध हमारे स्वास्थ्य से है। जहां साफ–सफाई, स्वच्छता पायी जाती है, वहां रोगों को फैलाने वाले रोगाणु नहीं पनपते। फलस्वरूप वहां रोग नहीं फैलते। अतः योग कक्ष का साफ–स्वच्छ होना, अति आवश्यक है। ऐसा वर्णन मिलता है कि, पाठ पूजा, पवित्र व धार्मिक अनुष्ठानों और योग करने के स्थान को पहले गोबर से लीपा जाता था, जिससे स्थान साफ–सुथरा और सुंदर लगे, साथ ही चींटी, कीड़े–मकौड़े आदि का प्रकोप भी न हो। तात्पर्य यह है कि, अभ्यास स्थल स्वच्छ और निर्मल होना चाहिए। हम कपूर या किसी सुगंधित धूप का भी प्रयोग कर सकते हैं ताकि अभ्यास के दौरान चींटी या कीड़े–मकौड़े विघ्न पैदा न करें।

प्राकृतिक स्थान, जैसे– किसी नदी सरोवर, झरने के किनारे, पहाड़ों, हिमालय, समुद्र आदि पर योग अभ्यास करना अति सुन्दर लगता है।

टिप्पणी

चित्र 9.2: योग परिधान

ग) *वस्त्र (पहनावा)* : योगाभ्यास के दौरान, वस्त्रों का उपयुक्त होना परम आवश्यक माना गया है। अतः अभ्यास के दौरान :

- ढीले, हल्के व आरामदायक वस्त्र पहनें।
- नायलोन या कृत्रिम वस्त्र योगाभ्यास के लिए अनुकूल नहीं माने गये हैं। अतः प्रशिक्षण केंद्र द्वारा निर्धारित योग परिधान पहनें।
- पेट के पास कोई कसा हुआ (टाइट) वस्त्र नहीं होना चाहिए।
- ऐसे वस्त्रों का उपयोग बिल्कुल ना करें, जो अभ्यास में व्यवधान उत्पन्न करें।

चित्र 9.3: योग मेट

घ) *योग मेट*: आजकल रबड़ मैट का प्रचलन है। ये ऊर्जारोधन गुण से युक्त हैं, परंतु प्राकृतिक सामग्री से बने मैट या खादी से निर्मित दरी का उपयोग और भी बेहतर माना जाता है। प्राकृतिक सामग्री से निर्मित कंबल अभ्यास के लिए लिया जा सकता है। यह शरीर और पृथ्वी के बीच ऊर्जारोधक का काम करता है। स्पंज वाले मैट या ज्यादा गद्देदार आसन का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह मेरूदंड

और संतुलन के लिए हितकर नहीं हैं। योग मैट का उपयोग, योगाभ्यास के लिए ही सीमित होना चाहिए, उस पर कभी बैठकर खाना पीना नहीं चाहिए।

यूनिटगत प्रश्न 9.1

सत्य/ असत्य बताइये –

1. योगाभ्यास खुले, हवादार, कक्ष या हॉल में करना चाहिए। ( )
2. योगाभ्यास समतल ज़मीन पर, बिना कंबल, दरी या योग मैट बिछाए भी किया जा सकता है। ( )
3. साफ–सफाई, स्वच्छता का सीधा संबंध, हमारे स्वास्थ्य से है। ( )
4. घड़ी, चश्मा, आभूषण आदि पहनकर योगाभ्यास किया जा सकता है। ( )

9.2 योगाभ्यास कैसे करायेंगे

प्रिय शिक्षार्थियों, योगाभ्यास कराने से पूर्व कुछ तैयारियां करनी होती हैं, जिनका पालन बहुत आवश्यक है। यदि इनका अनुपालन सुनिश्चित ना किया जाये, तो लाभ के बजाय हानि भी हो सकती है। तो आइए, योगाभ्यास से पूर्व आवश्यक निर्देशों एवं सावधानियों को समझें।

9.2.1 यौगिक अभ्यास से पूर्व के आवश्यक निर्देश एवं सावधानियाँ

यौगिक क्रियाओं और आसनों को करने से पूर्व, कुछ निर्देश और सावधानियों को समझना आवश्यक है। अतः नीचे बताए गए निर्देशों को ध्यानपूर्वक पढ़ें और समझें –

- अभ्यास करने का स्थान साफ–सुथरा, खुला और हवादार हो;
- अभ्यास हमेशा समतल ज़मीन पर, दरी, कंबल, चादर या योग मैट बिछाकर करें;
- ऋतु के अनुसार, ढीले और आरामदायक वस्त्रों का प्रयोग करें;
- क्रियायें और आसन धीरे–धीरे, सहजतापूर्वक करें। यदि किसी अंग पर दर्द का अनुभव करें तो वहां जोर न लगायें;
- अभ्यास प्रारंभ करने से पूर्व चश्मा, घड़ी, आभूषण आदि उतार कर रखें क्योंकि ये सभी योग अभ्यास में बाधा उत्पन्न करते हैं;
- मोबाइल फोन को ध्वनि रहित अर्थात् साइलेंट मोड पर रखें। अचानक मोबाइल बजने से सतत ध्यान टूट जाता है और अभ्यास में बाधा उत्पन्न होती है;
- अभ्यास के दौरान सौंदर्य प्रसाधन का प्रयोग न करें।
- योगाभ्यास करते समय, शरीर को अभ्यास के अनुरूप रखें;

टिप्पणी

- क्रियाऐं अथवा आसन करते समय श्वास–प्रश्वास नाक से ही लें, जब तक आपको अन्य निर्देश न मिलें;
- योगाभ्यास खाली पेट ही करें और अभ्यास के आधा घण्टे बाद ही कुछ खायें–पियें;
- अभ्यास करने से पूर्व आंत एवं मूत्राशय खाली रखने का प्रयास करें।

9.2.2 योगाभ्यास का उचित समय

योगाभ्यास का सबसे अच्छा समय, **ब्रह्ममुहूर्त** काल माना गया है। यह काल, योग अभ्यास के लिए सबसे उपयुक्त इसीलिए माना जाता है क्योंकि ऑक्सीजन प्रचुर मात्रा में रहती है। शीतल, मंद एवं सुगंधित वायु बहती है। वातावरण अच्छा रहता है, और मन प्रसन्न होता है। आइये, योग अभ्यास आज के परिवेश में, किस समय किया जा सकता है और कौन सी ऋतु में योगाभ्यास प्रारंभ किया जाए, ऐसे ही कुछ आवश्यक दिशा–निर्देश यहां पर जानने का प्रयास करेंगे –

- योगाभ्यास प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व किया जाना उत्तम माना गया है। यह समय सुबह 5.30 से 7.00 बजे के बीच निर्धारित किया जा सकता है।
- जिस दिन योगाभ्यास प्रातःकाल नहीं हो पाता, उस दिन देरी से या फिर संध्या काल में किया जा सकता है।

सावधानियाँ

- कभी भी खाना खाने के तुरंत बाद या पहले योगाभ्यास नहीं करना चाहिए। भोजन के 4 घंटे के पश्चात् ही योगाभ्यास करना चाहिए।
- गर्भावस्था और मासिक धर्म के दौरान योगाभ्यास नहीं करने चाहिए।
- बुखार, ब्लड प्रैशर, ह्रदय समस्या और गंभीर रोगों में योगाभ्यास नहीं करना चाहिए।

9.2.3 योगाभ्यास का क्रम

योगाभ्यास किस क्रम में कराना चाहिए, यह जानना बहुत आवश्यक है। नीचे बताई गई क्रियाओं की स्थिति और विधि को ध्यानपूर्वक पढ़े, भलीभांति समझें और कंठस्थ कर लें और उचित समय पर इनका अभ्यास करें।

प्रार्थना व मंत्रोच्चारण – 5 मिनट

किसी भी तरह का योगाभ्यास प्रारंभ करने से पहले यौगिक प्रार्थना करना आवश्यक है। प्रार्थना करने से मन शांत होता है और योगाभ्यास के लिए सकारात्मक मनोस्थिति तैयार होती है।

प्रार्थना की स्थिति

- दोनों पैर मिलाकर, शरीर को पैर से लेकर सिर तक, बिल्कुल सीधा रखें;
- आँखें बंद कर लें;

टिप्पणी

- दोनों हाथ मिलाकर, वक्षस्थल पर हृदय क्षेत्र से थोड़ा ऊपर रखें;
- प्रणाम मुद्रा की सहज स्थिति बनाएं;
- प्रार्थना करें (ऐसा करने से चित्त शांत और ध्यान केन्द्रित होता है)

चित्र 9.4: प्रार्थना

विधि

ईश्वर का ध्यान करते हुए, प्रार्थना करें। उदाहरण के लिए निम्न यौगिक प्रार्थना दी गई है –

सर्वप्रथम तीन बार मध्यम स्वर में ओम् का उच्चारण करें, तत्पश्चात् प्रार्थना आरंभ करें:

हे परम पिता, हे विश्व पिता
हे राष्ट्र पिता, हे जगद्‌धार।
हे करूणा मय, हे दीन दयालु
हे पूर्ण गुरू, हे अपरम्पार।।
हे प्रभु, अब अपनी कृपा कर
हमें दीजिए, शुद्ध विचार
कर्म करें हम सेवक बन
नाथ बनें, सुखमय संसार
हे परम पिता, हे विश्व पिता
हे राष्ट्र पिता, हे जगद्‌धार

प्रार्थना के अंत में, सभी लोग निम्नलिखित कथन को ऊँचे स्वर में, एक साथ तीन बार बोलें –

विश्व का	कल्याण हो	(3 बार)
सभी	कर्त्तव्य परायण हों	(3 बार)
परस्पर	प्रेम हो	(3 बार)

टिप्पणी

नोट – इसके स्थान पर अपनी इच्छानुसार अन्य प्रार्थना भी कर सकते हैं।

लाभ –

- प्रार्थना करने से आस–पास का वायुमंडल शुद्ध एवं स्पंदित होता है;
- प्रार्थना से ध्यान लगने में मदद मिलती है, तथा चित्त शांत होता है;
- मानसिक त्रुटियां दूर होती हैं;
- मन को शान्ति मिलती है;
- आत्म शुद्धि (Self-purification) की प्राप्ति होती है।
- शरीर ऊर्जावान होता है।

चित्र 9.5: योग अभ्यास

प्रार्थना के बाद अब, अन्य यौगिक अभ्यासों का प्रारंभ करते हैं –

शिक्षार्थियों, योगाभ्यास के लिए, हम प्रार्थना के पश्चात् निम्न क्रम का पालन करें –

- *सूक्ष्म व्यायाम* – 15 मिनट (विभिन्न सूक्ष्म व्यायाम करें।)
  (विभिन्न सूक्ष्म यौगिक क्रियाएं)
- *आसन* – 20 मिनट (आसनों का अभ्यास करें।)
  - ताड़ासन – 10 चक्र
  - तिर्यक ताड़ासन – 10 चक्र
  - कटिचक्रासन – 5 चक्र
  - सूर्यनमस्कार – 3 चक्र
  - *शवासन* – *2 मिनट*
  - उत्तानपादासन – 3 चक्र
  - अर्धहलासन – 3 चक्र
  - सर्वांगासन – 3 चक्र
  - हलासन – 3 चक्र
  - सेतुबंध आसन – 3 चक्र
  - चक्रासन – 3 चक्र
  - *शवासन* – *विश्राम 1 मिनट*

टिप्पणी

–	*मकरासन*	–	*विश्राम 1 मिनट*
–	भुजंगासन	–	3 चक्र
–	धनुरासन	–	3 चक्र
–	अर्ध–शलभासन	–	4 चक्र
–	शलभासन	–	4 चक्र
–	*मकरासन*	–	*विश्राम 1 मिनट*
–	शशांक आसन	–	5 चक्र
	(आदि)		
	प्राणायाम	–	*10 मिनट*
–	नाड़ीशोधन	–	10 से 15 चक्र
–	भ्रामरी	–	10 चक्र
–	मुद्रा–बंध	–	5 मिनट
–	ध्यान व शांतिपाठ	–	10 मिनट

सावधानियां

शिक्षार्थियों, योगाभ्सास के दौरान निम्नांकित विशेष निर्देशों का अनुपालन करना आवश्यक है।

विशेष निर्देश :

- शिक्षक अगले अभ्यास के दौरान शेष आसनों व प्राणायामों को इसी प्रकार के क्रम में रखें;
- एक साथ सभी यौगिक अभ्यास कराने की चेष्टा न करें;
- योग अभ्यासी की क्षमता के अनुसार योग कराएं;
- धीरे–धीरे उनकी क्षमता बढ़ाने का प्रयास करें।
- यदि कोई बीमार अभ्यासी है तो उसकी शारीरिक स्थिति व रोग जानकार ही उचित अभ्यास कराएं, अन्यथा न कराएं;
- अभ्यास कराने से पूर्व योग अभ्यर्थियों की केस हिस्ट्री लेना अनिवार्य है, ताकि सामान्य रोगी, कमजोर तथा वृद्ध अभ्यर्थियों का समूह बनाया जा सके और उसी के अनुसार योग अभ्यासों का चयन किया जा सके।

यूनिटगत प्रश्न 9.2

1. सुमेल कीजिए –

क.	योगाभ्यास उचित काल	(अ) बसन्त ऋतु
ख.	योगाभ्यास शुरू करना	(ब) ब्रह्ममुहुर्त

टिप्पणी

ग. योगाभ्यास नहीं (स) आत्मशुद्धि

घ. ईश्वरीय प्रार्थना (द) गर्भावस्था, मासिकधर्म और बीमारी के दौरान

2. **सत्य/असत्य बताइये –**

1. योगाभ्यास के दौरान अचानक किसी अभ्यासी को यदि, हृदय संबंधी समस्या हो, तो तुरंत चिकित्सक के पास रेफर करना चाहिए। ( )
2. योगाभ्यास के दौरान यदि, चक्कर आने लगते हैं, तो अभ्यास जारी रखना चाहिए। ( )
3. कठिन आसनों के अभ्यास में, नये योग अभ्यासी के किसी अंग की मांसपेशियों में खिंचाव आ सकता है। ( )
4. योग कक्षाएं प्रारंभ करने से पहले, सभी अभ्यासियों की कम से कम, सामान्य जांच अवश्य कर लेनी चाहिए। ( )

9.3 आपातकालीन स्थिति में प्रबंधन

यह योगाभ्यास का एक अति महत्वपूर्ण पहलू है। कई बार ऐसी विषम परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं, जो बड़ी असहज एवं गंभीर हो सकती हैं। ऐसे समय में हमेशा बड़ी सावधानी एवं धैर्य से काम लेना चाहिए। आपको यह जानना बहुत आवश्यक है कि परिस्थिति का स्वरूप क्या है। यदि बहुत गंभीर स्थिति है तो तुरन्त उस गंभीर परिस्थिति से निबटने का उपाय आना चाहिए।

संभवतः योगाभ्यास के दौरान, निम्नांकित परिस्थितियां उत्पन्न होने की संभावना रहती है।

1. *ब्लड प्रैशर का कम या अधिक हो जाना*

- कई बार योगाभ्यास करने के दौरान, ब्लड प्रैशर थोड़ा कम या अधिक हो सकता हैं
- ऐसा होने पर घबराने की आवश्यकता नहीं है।
- यदि घबराहट या बैचेनी होती है तो तुरंत चिकित्सक से परामर्श लें।

2. **तेज चक्कर आना**

- अभ्यास के दौरान तेज चक्कर आ सकते हैं।
- तेज चक्कर आने पर योगाभ्यास न करें।
- शवासन में लेट जाएं।
- ठीक होने पर ओम् चेटिंग करें और पुनः अभ्यास प्रारंभ करें।

चित्र 9.4: चक्कर आना

3. **माँसपेशियों में तीव्र खिंचाव**

- कठिन योगासनों के दौरान, नये योगाभ्यासियों के शरीर में, विशिष्ट अंग की मांसपेशियों में खिंचाव

टिप्पणी

उत्पन्न हो सकता है।

- अधिक चिन्ता ना करें।
- कोई दर्दनिवारक तेल, या स्प्रे लगाकर आराम करें।
- योगाभ्यास धीरे–धीरे लगातार करें, छोड़े नहीं।
- कुछ दिनों के पश्चात यह खिंचाव स्वतः ही धीरे–धीरे समाप्त हो जाता है।

4. ब्लड शुगर का स्तर कम या अधिक हो जाना

- योग केन्द्र पर ब्लड शुगर चैक करने की व्यवस्था होनी चाहिए।
- ब्लड शुगर सम्बंधित लक्षण दिखाई देते हैं, तो तुरंत शुगर का स्तर चैक करना चाहिए।
- साथ ही ऐसे योगाभ्यास शामिल किये जाऐं, जिससे शुगर के स्तर पर नियंत्रण किया जा सके।

चित्र 9.7: ब्लड शुगर जांचना

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में हमने सीखा कि :

- योगाभ्यास के लिए, हमारा स्थान, परिवेश, पहनावा (वस्त्र) आदि बहुत महत्वपूर्ण हैं।
- योग के अभ्यर्थियों को सभी आवश्यक दिशा–निर्देश जानने के पश्चात् ही योग का अभ्यास शुरू करना चाहिए।
- नये योगाभ्यासियों को बसंत ऋतु से योग अभ्यास करना चाहिए।
- योग अभ्यास का उचित काल ब्रह्ममुहूर्त में जागकर नित क्रियाओं से निवृत्त होकर सूर्योदय

टिप्पणी

से पूर्व का है। जिसमें प्रातः 5.30 बजे से 7.00 बजे तक किया जा सकता है।

- योगाभ्यास एक निश्चित क्रम में किये जाने चाहिए।
- योगाभ्यास क्षमता के अनुसार करने चाहिए और धीरे–धीरे क्षमता बढ़ानी चाहिए।
- योग अभ्यास कराने से पूर्व अभ्यासियों की केस हिस्ट्री अनिवार्य रूप से लेनी चाहिए। किसी भी गंभीर आपातकालीन स्थिति में चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए।

यूनिटांत प्रश्न

1. योगाभ्यास के पूर्व–निर्देश, तैयारी एवं सावधानियों पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. योगाभ्यास के लिए, हमारा स्थान, परिवेश एवं पहनावा अति महत्वपूर्ण है। इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. योगाभ्यास कैसे करायेंगे। विस्तार से समझाइये।
4. योगाभ्यास के दौरान आपातकालीन प्रबंधन पर प्रकाश डालिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

9.1

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य

9.2

क–ब, ख–अ ग.– द घ–स

9.3

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य

टिप्पणी

10

षट्कर्म

हठयोग के आदि प्रणेता भगवान शिव माने जाते हैं। उन्हीं की परम्परा में श्री मत्स्येन्द्रनाथ, स्वामी गोरक्षनाथ, मीननाथ, भर्तृहरि आदि से लेकर स्वात्माराम एवं गोपीचंद पर्यन्तनाथों ने इस परंपरा को जीवित रखा है। हठयोग से हम शरीर को शुद्ध, स्वस्थ एवं निर्मल बनाकर, राजयोग का पात्र बनते हैं क्योंकि राजयोग में यम–नियमों के द्वारा अन्तःकरण को पवित्रकर ध्यान एवं समाधि में प्रवेश का क्रम है।

हठयोग के ऋषियों ने साधकों की प्रकृति भेद के अनुसार वात–पित्त एवं कफ प्रधान शरीर की शुद्धि के लिए षट्कर्म के विधान निर्धारित किए हैं। षट्कर्म की क्रियाएं स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई सूक्ष्म शरीर के शुद्धिकरण में भी अत्यंत सहायक होती हैं।

इस यूनिट के अंतर्गत हम षट्कर्म की विभिन्न क्रियाओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के बाद आप –

- षट्कर्म क्या है, यह परिभाषित कर सकेंगे;
- षट्कर्म के विभिन्न अंगों को विस्तारपूर्वक अभिव्यक्त कर सकेंगे;
- शरीर पर उनका प्रभाव और इसके लाभों का वर्णन कर सकेंगे।

टिप्पणी

10.1 षट्कर्म की अवधारणा

योग के परिप्रेक्ष्य में षट्कर्म का अर्थ शारीरिक शुद्धि से है। हठयोग में घटशुद्धि के लिए शोधन क्रियाएं ही षट्कर्म कहलाती हैं। षट्कर्म की ये क्रियाएं स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई सूक्ष्म शरीर के शुद्धिकरण में भी अत्यंत सहायक हैं।

हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है –

हठं बिना राजयोगं राजयोगं विना हठः।

न सिद्धयति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समश्यसेत्।। (हठ. 2/76)

अर्थात् हठयोग के बिना राजयोग सिद्ध नहीं होता तथा राजयोग के बिना हठयोग अपूर्ण है। इसलिए साधक को हठयोग एवं राजयोग दोनों का सतत् अभ्यास करना चाहिए।

षट्कर्म की ये क्रियाएं मानव शरीर का कायाकल्प करके उसे रोगमुक्त, दीर्घायु, स्वस्थ, पुष्ट एवं कान्तिमय बनाती हैं।

आयुर्वेद में वर्णित पंचकर्म का यह समानान्तर रुप है, जिसकी खोज हमारे ऋषियों–मुनियों द्वारा शरीर, मन और प्राण के शोधन के लिए की गई है।

षट्कर्म की ये क्रियाएं कौन–कौन सी हैं। आइए, जानते हैं –

धौतिर्बस्तिस्तथानेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणी प्रचक्षते। (हठ. 2/22)

धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि तथा कपालभाती इन छः कर्मों का योगमार्गानुगामियों के लिए उपदेश किया गया है।

षट्कर्म छः होते हैं –

1. धौति
2. बस्ति
3. नेति
4. त्राटक
5. नौलि
6. कपालभाति।

हठयोग में इन छः क्रियाओं को शुद्धि क्रियाएं कहा जाता है।

टिप्पणी

10.2.1 धौति

धौति– षट्कर्मों में सर्वप्रथम धौति कर्म का वर्णन किया गया है। सामान्यतः धौति का अर्थ है– धोना या सफाई करना। घेरण्ड संहिता में धौति के चार प्रकार बतलाये गए है, जिनमें अन्तर्धौति, दन्तधौति, हृद् धौति और मूलशोधन आते हैं।

धौति

- अन्तर्धौति
  - वातसार
  - वारिसार
  - वह्निसार
  - बहिष्कृत
- दन्तधौति
  - दन्तमूल
  - जिह्वामूल
  - कर्णरन्ध्र–दोनों
  - कपाल रन्ध्र
- हृद्धौति
  - दण्ड
  - वमन
  - वसन
- मूलशोध

हठप्रदीपिका में धौतिकर्म के अन्तर्गत वस्त्र धौति एवं गजकरणी का उल्लेख किया गया है।

हम यहाँ उपयोग की दृष्टि से कुंजल (वमन), दण्ड धौति, वस्त्र धौति एवं शंख प्रक्षालन वारिसार धौति का अध्ययन करेंगे।

i) कुंजल (वमन धौति)

कुंजल क्रिया मुंह, अन्न नली एवं आमाशय तक की सफाई करती है। इसका अभ्यास खाली पेट किया जाता है। इस क्रिया के अभ्यास का सही समय प्रातःकाल है। इसमें नमकीन गुनगुना पानी पेटभरकर पीने के तुरंत बाद वमन कर दिया जाता है।

पूर्व तैयारी एवं अनुशासन

- हाथ स्वच्छ हों, कुंजल से पूर्व हाथों की अच्छी तरह सफाई कर लें। नाखून कटें हों।
- जग एवं गिलास अपने पास रखें।
- गुनगुने पानी में नमक मिलाकर रखें।
- कुंजल क्रिया खाली पेट सम्पन्न की जाती है।
- इस क्रिया को प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर सम्पन्न करना चाहिए।
- कुंजल करने के बाद घृत युक्त खिचड़ी सेवन करने का विधान है।
- कुंजल क्रिया सम्पन्न करने के दिन किसी प्रकार का मिर्च–मसालों का सेवन नहीं करना है।

टिप्पणी

विधि

उकडू बैठकर शीघ्रता के साथ एक–एक गिलास करके पानी पीते जाएं। इतना पानी पी लें कि पूरा पेट पानी से भर जाए। पेट भरने के पश्चात् वमन का मन होने लगता है। फिर खड़े होकर कमर से आगे की ओर झुकें। फिर मुंह खोलकर सीधे हाथ की तीन अंगुलियों से जीभ के मूल में घर्षण करने से पानी मुंह से बाहर निकलने लगता है। शुरुआत में पानी कम–कम मात्रा में निकलता है, अतः बार–बार जिह्वामूल से अंगुलियों के स्पर्श अथवा घर्षण से वमन होने लगता है। अभ्यास होने पर बिना जिह्वामूल में अंगुलियों को लगाए वमन होने लगता है।

लाभ

- कुंजल क्रिया स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए उपयोगी है।
- यह आमाशयिक अम्लता (Acidity) को दूर करने में परम लाभकारी है।
- दमा के रोगी को भी इसके अभ्यास से आराम मिलता है।
- यह श्वांस की दुर्गन्ध, गले के बलगम को दूर करता है।

चित्र 10.1: कुंजल क्रिया

सावधानियां

- उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- आमाशय में अल्सर एवं हृदय सम्बन्धी व्याधियों में इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

आवृत्ति

सप्ताह में एक बार इस क्रिया को सम्पन्न किया जा सकता है।

ii) दण्ड धौति

घेरण्ड संहिता में दण्ड धौति के लिए हल्दी के दण्ड, केले अथवा बेंत (बांस) के दण्ड का विधान किया गया है। वर्तमान में रबर की बनी हुई दण्ड बाजार में उपलब्ध है। यह क्रिया त्रिदोषों में साम्यता लाती है।

टिप्पणी

पूर्व तैयारी एवं अनुशासन

- दण्ड धौति की तैयारी कुंजल क्रिया के समान ही की जाती है।
- गुनगुना आवश्यकता अनुसार नमक मिला हुआ पानी अपने समीप रखते हैं।
- रबर का दण्ड गर्म पानी में भली प्रकार से स्वच्छ करके रख लेते हैं।
- दण्ड धौति को खाली पेट प्रातःकाल ही सम्पन्न किया जाता है।
- दण्ड धौति करने के बाद घृतयुक्त खिचड़ी का सेवन किया जाता है। मिर्च—मसालों का सेवन वर्जित होता है।

विधि

सर्वप्रथम समीप रखे गुनगुने जल को गिलास से शीघ्रता से पेटभर पी लेते हैं। जल पीने के बाद खड़े होकर कमर से थोड़ा झुककर रबर के दण्ड को मुंह में लेकर कंठ से निगलने का प्रयास करते हैं। शुरुआत में यह आसान नहीं होता है। दण्ड जब आधे से अधिक उदर में प्रवेश कर जाता है तो उदरस्थ पानी दण्ड के माध्यम से बाहर निकलने लगता है। पानी निकल जाने के पश्चात् दण्ड को आराम से बाहर निकाल लिया जाता है।

लाभ

इस दण्ड धौति के लाभ कुंजल क्रिया के समान ही हैं।

सावधानी

- आमाशयिक व्रण में इस क्रिया को नहीं किया जाता है।
- उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

आवृत्ति

इस क्रिया का अभ्यास सप्ताह में एक दिन किया जा सकता है।

iii) वस्त्र धौति

वस्त्र धौति जैसाकि इसके नाम से पता चलता है कि इसमें वस्त्र का प्रयोग किया जाता है। वस्त्र के अभ्यास से कई प्रकार के रोगों का शमन होता है।

पूर्व तैयारी एवं अनुशासन

- वस्त्र धौति बाजार से लाकर उसे भली प्रकार से देख लिया जाता है कि वह कहीं से कटी व फटी न हो, किनारे ठीक प्रकार से व्यवस्थित हों।
- वस्त्र धौति को खौलते हुए पानी में कुछ देर रहने देते हैं फिर निकाल कर स्वच्छ पानी से धोकर धूल रहित स्थान पर सुखा देते हैं।
- सूखने के बाद बंद डिब्बे में सूखे स्थान पर रख देते हैं।

टिप्पणी

- वस्त्र धौति सम्पन्न करने से पहले गुनगुना पानी आवश्यकतानुसार नमक मिलाकर रख लें।
- पानी का जग, धौति रखने का पात्र एवं गिलास पास में रखना चाहिए।

विधि

सर्वप्रथम उकडू बैठकर, दोनों पैरों के बीच में पात्र रखें जिसमें वस्त्र धौति रखी हो। दायीं ओर पानी का गिलास एवं जग रख लेना चाहिए। फिर पात्र से धौति के एक छोर को उठा लेना चाहिए और उसे दोनों तरफ से मोड़ देना चाहिए जिससे वह तीरनुमा नुकीला हो जाएगा। इसके पश्चात् इसे मुंह में डालकर जीभ के सहारे निगलने का प्रयास करना चाहिए। बीच में पानी के घूंट पी लेना चाहिए। जिससे वस्त्र आसानी से कंठ से नीचे चला जाए।

चित्र 10.2: वस्त्र धौति

यहाँ थोड़े धैर्य एवं सतर्कता की आवश्यकता होती है। धीरे–धीरे निगलने का प्रयास करना चाहिए। प्रारंभ में थोड़ी परेशानी होती है। वस्त्र धौति निगलते समय ध्यान रखें कि गले में ही वस्त्र का गुच्छा न बन जाए। प्रारंभ में कुछ दिन थोड़ा–थोड़ा वस्त्र निगलने का अभ्यास करें। प्रारंभ में अभ्यास न होने के कारण गले में अलग सा अनुभव होता है, जैसे कुछ अटक गया हो, खांसी आ सकती है। हो सकता है कि वमन करने का मन हो। इस स्थिति में स्वयं पर नियंत्रण रखें। प्रथम दिन हो सकता है कि थोड़ा भी कपड़ा अन्दर न जाए। एक–दो दिन के अभ्यास के बाद एक फुट कपड़ा अन्दर चला जाएगा, उसे पुनः निकाल देते हैं।

टिप्पणी

कुछ ही दिनों में कपड़े की अन्दर निगलने की लम्बाई बढ़ती जाएगी।

इस प्रकार धीरे–2 अभ्यास करते–करते वस्त्र धौति होने लगेगी जब वस्त्र एक हाथ बचे तब उसे बाहर निकाल देना चाहिए। बाहर निकालते समय किसी प्रकार की हड़बड़ी एवं जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।

लाभ

वस्त्र धौति के अभ्यास में कफ, बलगम से निवृत्ति मिलती है। दमा के रोगियों के लिए वस्त्र धौति का अभ्यास रामबाण की तरह है। चर्मरोगों में भी यह परम लाभकारी है।

सावधानियाँ

- इसका अभ्यास स्वयं नहीं करना चाहिए। किसी योग्य मार्गदर्शक के निर्देशन में ही इसे सम्पन्न करना चाहिए।
- आमाशयिक व्रण में इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

iv) दंत धौति

प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल दांतों की मालिश और सफाई करनी चाहिए। जल और तेल दोनों में बारीक सेंधा नमक और सरसों का तेल मिलाकर दांत और मसूढ़ों की मालिश से पायरिया और अन्य दंत रोग दूर हो जाते हैं। दांत मजबूत और श्वेत होते हैं।

10.2.1 शंख प्रक्षालन

शंख का अर्थ है – पेट, प्रक्षालन का अर्थ है साफ करना, पेट की सफाई की क्रिया को शंख प्रक्षालन कहा जाता है। हमारी आंत की बनावट, शंखाकार होती है, उस शंखाकार आन्त्र का प्रक्षालन होना (शुद्ध होना) ही शंखप्रक्षालन या वारिसार क्रिया कहलाता है। आंत की लंबाई लगभग 32 फीट होती है। आंत की दीवार पर मल जमने से विभिन्न प्रकार की बीमारियां पैदा होती हैं। मल की परत बनने के कारण निष्कासन की क्रिया सही नहीं होती है। जिससे रोग को बढ़ावा मिलता है। मल सड़ने के बाद पेट में दुर्गन्ध पैदा होती है जिसके परिणामस्वरूप अपचन एवं खट्‌टी डकारें आती हैं। यह गैस्ट्रिक को भी बढ़ावा देता है। शंख प्रक्षालन से समस्त रोगों में लाभ मिलता है जैसे –सभी उदर रोग, मोटापा, बवासीर, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, अस्थमा, सर्दी, साइनस आदि।

अनुशासन एवं सामग्री

- ➢ शंख प्रक्षालन क्रिया करने से पांच–सात दिन पहले इसके आसनों का अभ्यास शुरु कर दें।
- ➢ शंख प्रक्षालन जिस दिन करना हो उसके पूर्व शाम को सुपाच्य एवं हल्का भोजन लें।
- ➢ शंख प्रक्षालन की क्रिया के बाद खिचड़ी एवं घी का सेवन पर्याप्त मात्रा में करना चाहिए।

टिप्पणी

- शंख प्रक्षालन की क्रिया प्रातःकाल शौच इत्यादि क्रियाओं से निवृत होने के बाद करें, यदि शौच नहीं हो तो कोई बात नहीं।
- शंख प्रक्षालन करते समय कपड़े ढीले–ढीले होने चाहिए।
- गुन–गुने पानी की समुचित व्यवस्था कर लेनी चाहिए जिसे सरलता से पीया जा सके। उसमें आवश्यकतानुसार नमक मिला लें। पानी ज्यादा गर्म हो तो उसमें ठंडा पानी मिला लें।
- उच्च रक्तचाप एवं चर्म रोगियों को गर्म पानी में नमक के स्थान पर नींबू का रस मिलाकर लेना चाहिए।

विधि

तैयार किया हुआ पानी दो या इससे अधिक गिलास उकड़ू बैठकर पी जाएं। फिर शंख प्रक्षालन के निर्धारित पांच आसन क्रम से करें। इन निर्धारित आसनों में से एक आसन को पांच बार करने के बाद अगला आसन करें। आसन का क्रम समाप्त हो जाने पर पुनः दो गिलास पानी पीएं और फिर पांच आसनों का क्रम शुरु कर दें। इन पांच आसनों का क्रम इस प्रकार है –

1. ताड़ासन
2. तिर्यक ताड़ासन
3. कटि चक्रासन
4. तिर्यक भुजंगासन
5. उदराकर्षण आसन

निर्धारित पांच आसनों की आवृति को दो या तीन बार पूरा करने के बाद शौच जाना शुरु हो जाएगा। पांच आसन का क्रम जब भी समाप्त हो फिर दो या तीन गिलास पानी पी कर आसन का क्रम शुरु करें। आसन के क्रम में विश्राम नहीं करें। शौचालय में ज्यादा देर तक न बैठें और न शौच के लिए दबाव डालें। यदि आरंभ में शौच नहीं भी आए तो कोई बात नहीं। पानी पी–पीकर निरंतर आसनों का अभ्यास करें। यदि आसन करते–करते शौच की आवश्यकता महसूस हो तो शौच जाएं। पुनः पानी पीकर आसनों का क्रम फिर एक से शुरु कर दें, न कि जिस आसन को छोड़कर गए थे वहां से शुरु करें।

इस तरह लगभग 15–20 गिलास पानी पीकर आसन करने के बाद पांच–छह बार शौचालय जाएं। शुरु में शौच के साथ मल निकलेगा उसके बाद जल मिश्रित मल निकलेगा। फिर शौच में पानी निकलेगा। जब शौच में साफ पानी निकलने लगे तो अभ्यास छोड़ देना चाहिए। इसके बाद कुंजल की क्रिया करें। इस अभ्यास के बाद शवासन में जाकर पूर्ण विश्राम करें। लगभग 30 से 45 मिनट तक विश्राम करें। इस अवस्था में पूर्ण मौन का पालन करें तो अच्छी बात होगी। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शवासन में विश्राम करने के बाद घी के साथ

खिचड़ी भरपूर मात्रा में खाना चाहिए। खिचड़ी में मूंग की दाल ही डालें एवं किसी प्रकार के मसाले का प्रयोग न करें, हल्दी का प्रयोग बहुत कम करना चाहिए।

टिप्पणी

चित्र 10.3: शंख प्रक्षालन की क्रियाएँ

टिप्पणी

सावधानियाँ –

- शंख प्रक्षालन के तीन घंटे बाद तक पानी नहीं पीएं।
- तीन घंटे तक सोना नहीं चाहिए।
- शंख प्रक्षालन के दिन तीन घंटे के बाद गर्म पानी पीएं तो अच्छा होगा। ठंडा पानी पीने से जुकाम–सर्दी हो सकती है।
- इस दिन की शाम एवं अगले दो दिनों तक खाने में घी खिचड़ी का सेवन करें।
- क्रिया के बाद विश्राम करें, (किंतु पंखा, कूलर, एसी में नहीं) हवा में भ्रमण नहीं करें।
- प्रक्षालन करने के बाद सर्दी के मौसम में धूप में एवं गर्मी मे ंपंखे की हवा में नहीं बैठना चाहिए।
- जिस दिन आकाश साफ नहीं हो या वर्षा हो रही हो, उस दिन इस क्रिया को नहीं करें।
- प्रक्षालन के बाद ठंडे पानी से हाथ पैर ज्यादा नहीं धोएं।
- बालक, कमजोर व्यक्ति, मासिक धर्म के समय और गर्भवती स्त्री को यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।
- क्रिया के पश्चात् तीन दिनों तक मिर्च–मसाला, अचार एवं अन्य प्रकार के मसालेदार वस्तुओं का सेवन न करें।
- अगले पांच दिनों तक मिठाई, दही या दूध से बनी कोई चीज़ न खाएं।
- फल या जूस तीन दिनों तक बिल्कुल नहीं लें।
- मांसाहार, मदिरा सेवन एवं तामसिक भोजन से बचें। यह स्वस्थ सुखी जीवन के लिए लाभदायक नहीं है।
- बाजार में उपलब्ध पेय, कोल्ड ड्रिंक एवं सॉफ्ट ड्रिंक से परहेज करें।

लाभ

- पूरी आहार नाल (मुँह से लेकर गुदा द्वार तक) की सफाई हो जाती है।
- शरीर का शुद्धिकरण होता है, गंदे एवं विषैले तत्व शरीर से बाहर निकल जाते हैं, शरीर हल्का एवं कान्तिवान होता है।
- सभी प्रकार के रोग दूर होते हैं कब्ज, गैस, बवासीर, खट्टी डकारें, मन्दाग्नि इत्यादि।
- मोटापा, मधुमेह, श्वास संबंधी रोग, हृदय रोग, सिर दर्द, अपेन्डिसाईटिस एवं अन्य रोगों में लाभदायक है।

टिप्पणी

- स्त्रियों में मासिक धर्म संबंधी विकृतियाँ दूर होती है।
- नाड़ी के अवरोध को तोड़ता एवं चक्रों का शुद्धिकरण करता है।

नोट – शंख प्रक्षालन की क्रिया साल में दो बार करनी चाहिए। यह समय सितम्बर–अक्तूबर एवं मार्च–अप्रैल का है जो ऋतु परिवर्तन का समय होता है। शंख प्रक्षालन का अभ्यास योग शिक्षक की देखरेख में ही सम्पन्न करना चाहिए।

10.1.2 बस्ति क्रिया

बस्ति क्रिया का अर्थ है यौगिक एनिमा। योगी लोग पहले नदी या तालाब के जल को नाभि तक खड़े होकर गुदा द्वार से अपनी आंतों में जल का प्रवेश कराके, पुनः गुदा द्वारा से ही जल को बाहर निकाल देते थे।

आधुनिक एनिमा

यह प्राचीन बस्ति क्रिया का ही एक परिष्कृत रुप है। नदी में बस्ति क्रिया करने के लिए आज कोई भी तैयार नहीं होगा। अतः नदी में बस्ति क्रिया करने के बदले 'एनिमा' का यंत्र खरीद लेना चाहिए। नींबू–पानी या नमकीन पानी एनिमा यंत्र के सहारे आंतों के भीतर चढ़ाने से आंतों में रुका हुआ मल बाहर निकल जाता है और पेट साफ हो जाता है। रोगियों को एनिमा देने से तत्काल लाभ होता है। समय–समय पर एनिमा लेते रहने से शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है। शरीर की कांति बढ़ती है।

इस क्रिया को प्रातः खाली पेट करना सबसे अच्छा होता है।

10.4 नेति क्रिया

नेति का अर्थ नाक और उसके आस–पास के क्षेत्र की सफाई और उपचार है। नेति से कपाल–शुद्धि, दृष्टि–शुद्धि और कंधों से ऊपर के हिस्सों का उपचार किया जाता है।

i) जल नेति – जल नेति के लोटे में हल्का गरम पानी लेकर उसमें आवश्यकतानुसार नमक मिला लें। लोटे की नली को बायीं नासिका छिद्र में लगाकर दायीं नासिका को थोड़ा नीचे रखें। मुख को खोलकर रखें और श्वास लेना–छोड़ना मुख से ही करते रहें। दायीं नासिका से जल अपने आप बाहर निकलने लगता है और साथ ही कफ विकार भी नासिका से जल धारा के साथ बाहर निकलता जाता है। इसी प्रकार दूसरे नासिका से भी करते हैं। जल नेति करने का समय प्रातःकाल ही है। नेति क्रिया से सर्दी जुकाम ठीक हो जाता है। जल नेति करने के तत्काल बाद कपाल भाति क्रिया करनी चाहिए ताकि नासिका के अंदर रुका हुआ जल भी बाहर निकल जाये और नासिका पूरी तरह खुल जाय। इसके बाद थोड़ी देर शशांकासन में आराम करना चाहिए।

टिप्पणी

चित्र 10.4: जल नेति

ii) **सूत्र नेति** – सूती धागों से सूत्र बना होता है जिसके एक हिस्से में मोम लगा होता है। उसी से सूत्र नेति की जाती है। सूत्र नेति को नासिका में डालने से पहले जल में भिगो लें। सूत्र के कुछ हिस्से तक मोम लगा होता है उसी हिस्से को नासा द्वार से सरलता पूर्वक धीरे–धीरे अंदर ले जाते हैं। मुख में आने पर सूत्र के दोनों छोरों को दोनों हाथों से पकड़कर सावधानीपूर्वक सूत्र को बाहर निकालते हैं।

चित्र 10.5: सूत्र नेति

अब इसी प्रकार दूसरी नासिका छिद्र से भी करते हैं। अच्छा अभ्यास हो जाने पर दोनों नासिका से एक साथ भी कर सकते हैं।

नोट – इस क्रिया का अभ्यास किसी विशेषज्ञ की देखरेख में किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

10.5 त्राटक क्रिया

चित्र 10.6: त्राटक क्रिया

आत्मा के संयोग से मन काम करता है और मन के संयोग से इंद्रियाँ कर्म करती हैं। मन बड़ा चंचल और अधम है। आत्मा के बंधन का कारण है मन। मनुष्य के सुख और दुःख का कारण है मन। परन्तु, मनुष्य को ऊपर उठाने वाला भी मन ही है। मुक्ति का साधन भी मन है।

मन तक पहुँचने और उसकी अज्ञात शक्तियों को सक्रिय बनाने के लिए त्राटक साधना की जाती है। त्राटक की साधना एक स्वतंत्र साधना भी है, जो उच्च साधकों के लिए होती है। त्राटक अत्यंत शक्तिशाली साधना है।

विधि

पद्मासन या सुखासन में पीठ सीधा रखकर सुखपूर्वक बैठ जाइए। घी का दीपक जलाकर उसे 4 फीट की दूरी पर आँखों के सामने रखिये। घी के अभाव में मोमबत्ती भी ले सकते हैं।

अब बिना पलक झपकाए दीपक की लौ को देखें। दीपक को निर्वात स्थान पर रखना चाहिए। अनवरत, देखते–देखते जब आँखों में आंसू आने लगें या आँखों में जलन होने लगे तब कोमलता से आँखें बंद कर लें और बंद आँखों से अपने अंतर में वैसा ही प्रकाश देखने की कोशिश करें। पुनः आँखें खोलकर दीपक की स्थिर लौ को एक–टक देखते जायें। आँखों में आंसू व जलन आये तो आँखें बंद कर लें। धीरे–धीरे इस अभ्यास को बढ़ाएं। इसकी अवधि 20 मिनिट से अधिक न बढ़ायें। अपने निर्धारित समय के अनुसार इस क्रिया को

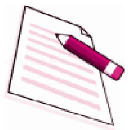

टिप्पणी

नियमित रूप से करते रहना चाहिए। ज्योति पर ध्यान करते समय अपने इष्ट देवता का, परमपिता परमेश्वर का स्मरण करते रहना चाहिए। इससे धारणा सिद्ध हो जाती है, फलस्वरूप साधक ध्यान की भूमि में प्रवेश करता है।

यह क्रिया कागज़ पर काला बिंदु लगाकर या 'ऊँ' पर भी कर सकते हैं। चन्द्रमा व उगते हुए सूरज का भी त्राटक किया जाता है।

10.6 नौलि क्रिया

चित्र 10.7: नौलि क्रिया

दोनों पैरों को दो फुट के फासले पर रखकर खड़े हो जाइए। दोनों हाथों को दोनों जांघों पर रखकर थोड़ा–सा आगे झुक जाइए। अपनी दृष्टि पेट पर रखिए। (उड्डियान बंध) श्वास बाहर निकालकर पेट को अंदर की ओर खींचकर पेडू के बीचों–बीच में एक 'नाल' (तना) जैसा आकार दीजिए। पेट के मध्य में मांसपेशियों की एक मोटी नली निकल आयेगी। इस मोटी नली को बायीं ओर ले जाइए। फिर दाहिनी और लाइये। इस तरह जल्दी–जल्दी बांयी और दायीं ओर घूमाइए। जब नाल बांयी ओर रहती है 'वाम–नौलि' कहते हैं। दाहिनी ओर रहने पर 'दक्षिण नौलि' तथा बीच में रहने पर मध्य नौलि' कहते हैं।

यह क्रिया सभी योगाभ्यासी को सीखनी चाहिए। अभ्यास का समय प्रातःकाल, भोजन से पूर्व, खाली पेट है।

नोट – अल्सर, हर्निया और ह्रदय रोगियों की इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

10.7 कपाल–भाति

कपाल का अर्थ है– मस्तिष्क और भाति का अर्थ है चमकाना, अर्थात् मस्तिष्क को शुद्ध करने वाली क्रिया को कपाल भाति कहते हैं।

पद्मासन या सुखासन में बैठ जाइए। दोनों हाथ घुटनों पर रखिए। श्वास अंदर खीचिए फिर श्वास को झटके के साथ बाहर निकालिए। थोड़ी–थोड़ी मात्रा में, झटके के साथ, श्वास को लगातार बाहर निकालते जाना कपाल भाति कहलाता है। बीस–पच्चीस बार थोड़ी–थोड़ी वायु बाहर निकालने के बाद अंतिम श्वास जोर से फेफड़ों के बाहर पूरी तरह निकाल दीजिए और बाह्य कुम्भक लगाइए। जितनी देर आराम से श्वास रोक सकें, शरीर के बाहर ही रोके रखें। फिर धीरे–धीरे स्वाभाविक श्वास में आ जाएँ। इस प्रक्रिया को 2 से 3 बार दोहराइए।

इस क्रिया से फेफड़ों की शुद्धि होती है। शुद्ध वायु अधिक मात्रा में फेफड़ों में जाकर रक्त की शुद्धि करती है। इस क्रिया से मन की चंचलता कम होती है।

टिप्पणी

नोट —• हृदय रोगियों और उच्च रक्त चाप के रोगी के लिए यह उपयुक्त नहीं है।

- गर्मियों में इसका अभ्यास न करें।

यूनिटगत प्रश्न 10.1

1. षट्कर्म की क्रियाओं को नाम बताइए।

2. धौति का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

3. आधुनिक एनिमा कैसे करते हैं?

4. शंख प्रक्षालन का क्या अर्थ है?

5. शंख प्रक्षालन के आसनों का नाम लिखें।

6. शंख प्रक्षालन किसे नहीं करना चाहिए।

टिप्पणी

आपने क्या सीखा?

- योग के परिप्रेक्ष्य में षट्कर्म का अर्थ शारीरिक शुद्धि से है। हठयोग में घटशुद्धि के लिए शोधन क्रियाएं षट्कर्म ही कहलाती हैं। षट्कर्म की ये क्रियाएं स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई सूक्ष्म शरीर के शुद्धिकरण में भी अत्यंत सहायक हैं।

- हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है –

  हठं बिना राजयोगं राजयोगं विना हठः।

  न सिद्धयति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समश्यसेत्।। (हठ. 2/76)

  अर्थात् हठयोग के बिना राजयोग सिद्ध नहीं होता तथा राजयोग के बिना हठयोग अपूर्ण है। इसलिए साधक को हठयोग एवं राजयोग दोनों का सतत् अभ्यास करना चाहिए।

- षट्कर्म की ये क्रियाएं मानव शरीर का कायाकल्प करके उसे रोगमुक्त, दीर्घायु, स्वस्थ, पुष्ट एवं कान्तिमय बनाती हैं।

- आयुर्वेद में वर्णित पंचकर्म का यह समानान्तर रुप है, जिसकी खोज हमारे ऋषियों—मुनियों द्वारा शरीर, मन और प्राण के शोधन के लिए की गई है।

- षट्कर्म की ये क्रियाएं हैं –

  धौतिर्बस्तिस्तथानेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणी प्रचक्षते। (हठ. 2/22)

  धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि तथा कपालभाती इन छः कर्मों का योगमार्गानुगामियों के लिए उपदेश किया गया है।

  षट्कर्म छः होते हैं –

  1. धौति
  2. बस्ति
  3. नेति
  4. त्राटक
  5. नौलि
  6. कपालभाति।

टिप्पणी

- हठयोग में इन छः क्रियाओं को शुद्धि क्रियाएं भी कहा जाता है।
- इस यूनिट में आपने वात, पित्त एवं कफ दोष से शरीर को मुक्त करने के लिए ऋषियों द्वारा बताये गए षट्कर्म की क्रियाओं को समझा है। नेत्र, जिह्वा, दांत आदि की स्वच्छता के लिए धौति क्रिया की जाती है। आपने यह भी जाना कि इन क्रियाओं को करने में कौन–कौन सी सावधानियां बर्तनी चाहिए। श्वसन क्रिया को सुव्यवस्थित करने के लिए आपने नेति क्रिया के बारे में भी जानकारी प्राप्त की। अंतर मन को सशक्त एवं आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त करने के लिए त्राटक के अभ्यास को जाना। कफ विकार से मुक्ति पाने के लिए वस्त्र धौति एवं कुंजल क्रिया के बारे में विस्तार से जाना।

यूनिटांत प्रश्न

1. षट्कर्म को समझाते हुए किन्हीं दो क्रियाओं का वर्णन कीजिए।
2. शंख प्रक्षालन की पूरी विद्या को विस्तार से समझाइए।
3. धौति से क्या अभिप्राय है? शंख प्रक्षालन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

10.1

1. छह, नेति, धौति, बस्ति, नौलि, त्राटक, कपाल भाति।
2. धौति का अर्थ है –धोना, भोजन नलिका से लेकर आमाशय तक शुद्ध करना।
3. आधुनिक एनिमा में एक पात्र होता है जिसमें लगभग एक मीटर की लंबी नलिका होती है जिसके दूसरे छोर पर एक कैथेटर (रबड़ की ट्यूब) होता है, जिसे गुदा द्वार में लगाते हैं जिससे पानी अंदर चढ़ता है और बड़ी आँत की सफाई हो जाती है।
4. पेट की सफाई की क्रिया शंख प्रक्षालन कहलाती है।
5. ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटि चक्रासन, तिर्यक भुजंगासन, उदराकर्षण आसन।
6. हृदय रोगी, शारीरिक रुप से कमजोर व्यक्तियों को शंख प्रक्षालन नहीं करना चाहिए।

गतिविधि: चित्र देखकर षट्कर्म अभ्यासों की पहचान कीजिए तथा अपनी नोटबुक में इनकी विधि एवं लाभों को लिखिए।

टिप्पणी

11

यौगिक सूक्ष्म अभ्यास (क्रियाएँ)

पिछली यूनिट में आपने अध्ययन किया कि शरीर की शुद्धि के लिए षट्कर्म आवश्यक हैं। षट्कर्म की क्रियाएं स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई, सूक्ष्म शरीर के शुद्धिकरण में भी अत्यंत सहायक होती हैं। इस प्रकार स्वस्थ रहने के लिए शारीरिक शुद्धि आवश्यक है। आपको यह जानना भी आवश्यक है कि, शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए मानसिक स्वास्थ्य बहुत महत्वपूर्ण है। सभी ज्ञानात्मक व क्रियात्मक इन्द्रियां और शरीर के विभिन्न अंग, हमारे मन से ही आदेश लेते हैं। अतः मानसिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए, यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, ध्यानात्मक आसन, प्राणायाम आदि का अभ्यास करना अति आवश्यक है।

इस यूनिट के अंतर्गत हम यौगिक सूक्ष्म क्रिया का अध्ययन करेंगे तथा उनके महत्व और आवश्यकता पर चर्चा करेंगे। साथ ही, शरीर के विभिन्न अंगों पर उनके प्रभावों और उनके लाभों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के बाद आप –

- यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं की आवश्यकता और उनके महत्व का वर्णन कर सकेंगे;
- सूक्ष्म क्रियाएं करने की विधि और उनके प्रभावों का उल्लेख कर सकेंगे;
- कुछ विशेष आरामदायक व ध्यानात्मक आसन तथा विभिन्न रोगों में उनके लाभ स्पष्ट कर सकेंगे;
- यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं से पूर्व की जाने वाली तैयारियों और सावधानियों की व्याख्या कर सकेंगे।

टिप्पणी

11.1 यौगिक सूक्ष्म अभ्यास (क्रियाएं) और योग का महत्व

यहां पर हम यौगिक सूक्ष्म अभ्यासों, उन्हें करने का सही तरीका और उनके लाभों के विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे। योग की सरल व सूक्ष्म क्रियाओं से आप क्या समझते हैं?

यौगिक सूक्ष्म अभ्यास

यौगिक सूक्ष्म अभ्यास वे क्रियाएं हैं जो शरीर के विभिन्न अंगों और उनके संचालन के लिए, योगासन, प्राणायाम, ध्यान आदि से पूर्व की जाती हैं और योगासनों के लिए शरीर को तैयार करती हैं।

यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, शरीर के प्रत्येक अंग—प्रत्यंग पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं। सिर से लेकर पाँव तक शरीर का प्रत्येक भाग इनसे प्रभावित होता है। यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं (व्यायाम) के अंतर्गत बहुत सी क्रियाएं की जाती हैं, जिन्हें योगासनों को करने से पूर्व करना आवश्यक माना जाता है और शरीर भी योगासन करने के लिए अपने आपको तैयार कर लेता है।

योग का महत्व

क्या आप जानते हैं कि व्यायाम बहुत प्रकार से किए जाते हैं — जैसे टहलना, दौड़ना, भार उठाना, दंड—बैठक, कुश्ती लड़ना, खेल खेलना, यौगिक क्रियाएं और आसन करना आदि। इन सभी व्यायामों की अपनी—अपनी महत्ता है। सभी व्यायामों से शरीर को शक्ति मिलती है, परन्तु शरीर को लचीला बनाने के लिए, रक्त वाहिनी नाड़ियों में रक्त के संतुलित प्रवाह के लिए, यौगिक व्यायाम ही उत्तम माना गया है। अतः शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, आसन, मुद्रा और प्राणायाम सर्वोत्तम हैं।

मानसिक स्वास्थ्य यौवन को लंबे समय तक बनाये रखने और व्यक्ति को ओजस्वी बनाने का उचित मार्ग है। स्वास्थ्य और जीवन—शक्ति, शारीरिक स्थिति से कहीं अधिक व्यक्ति की मनःस्थिति पर निर्भर करती है। व्यक्ति बढ़ता है, बूढ़ा नहीं होता। जैसे—जैसे आपके जीवन में वर्ष जुड़ते हैं, 'योग' द्वारा आप अपने वर्षों को अर्थपूर्ण बना सकते हैं। जीवन में विश्वास, आत्मसम्मान और गरिमा भरने के लिए, यौगिक क्रियाओं, आसन, मुद्रा व प्राणायाम का महत्वपूर्ण स्थान है। इनसे मन शुद्ध होता है, अतिरिक्त शक्ति प्राप्त होती है और आत्मिक शान्ति मिलती है। मानसिक स्वास्थ्य दृढ़ होने पर मन ऐसी स्थिति में होगा कि भौतिक शरीर तथा शरीर के अन्य सूक्ष्म अंगों द्वारा जीवन शक्ति का सर्वोत्तम उपयोग प्रभावपूर्ण ढंग से समस्त कार्य करने में सम्पन्न हो।

> बिना व्यायाम के शरीर अस्वस्थ तथा ओज एवं कान्तिहीन हो जाता है जबकि नियमित रुप से व्यायाम करने से दुर्बल रोगी एवं कुरूप व्यक्ति भी बलवान, स्वस्थ और सुंदर बन जाता है।

टिप्पणी

आसन व प्राणायाम से पूर्ण आरोग्य लाभ होता है तथा किसी प्रकार की कोई हानि नहीं होती। शरीर के साथ मन में एकाग्रता एवं शान्ति का विकास होता है।

नोट – इन यौगिक क्रियाओं को, जिस क्रम में बताया गया है, उसी क्रम के अनुसार करना चाहिए।

यूनिटगत प्रश्न 11.1

1. यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं क्या हैं?

   ....

   ....

   ....

2. मानसिक स्वास्थ्य की क्या महत्ता है?

   ....

   ....

   ....

11.2 यौगिक क्रियाओं से पूर्व की जाने वाली तैयारियाँ और सावधानियाँ

अब हम इन सूक्ष्म क्रियाओं का विस्तार से अभ्यास करना सीखेंगे। परन्तु यौगिक क्रियाओं और आसनों को करने से पूर्व कुछ निर्देश और सावधानियों को समझना आवश्यक है। नीचे बताए गए निर्देशों को आप ध्यानपूर्वक पढ़िए और समझिए –

- अभ्यास करने का स्थान स्वच्छ, खुला और हवादार होना चाहिए;
- अभ्यास हमेशा समतल जमीन पर दरी या चादर बिछाकर करें;
- ऋतु के अनुसार ढीले और आरामदायक वस्त्रों का उपयोग करें;
- क्रियाएं और आसन धीरे–धीरे करें। यदि किसी अंग पर दर्द का अनुभव हो तो वहाँ जोर न लगाएं;
- चश्मा, घड़ी और आभूषण उतार देने चाहिए ;
- क्रियाएं करते समय शरीर को ढीला रखना चाहिए;
- क्रियाएं अथवा आसन करते समय श्वास नाक से ही लेना चाहिए ;
- अभ्यास करने से पूर्व शौच आदि से निवृत्त होना ठीक रहता है;

टिप्पणी

- जब भी बीच में कभी थकान हो या पसीना आए तो विश्रामात्मकासन में आराम करें, तभी अगला अभ्यास प्रारंभ करना चाहिए।

अब हम यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं के अभ्यास की विधियां सीखेंगे। नीचे बताई गई क्रियाओं की स्थिति और विधि को ध्यानपूर्वक पढ़ें, भलीभांति समझें और कंठस्थ कर लें। योग आसन करने से पूर्व इनका अभ्यास करें।

11.2.1 प्रार्थना एवं यौगिक क्रियाओं के अभ्यास

किसी भी तरह का योगाभ्यास प्रारंभ करने से पहले यौगिक प्रार्थना करना आवश्यक समझा जाता है। आइए, सर्वप्रथम प्रार्थना करें—

स्थिति एवं विधि :

- अपने स्थान पर दोनों पैर मिलाकर सीधे खड़े हो जाएं;
- आँखें कोमलता से बंद कर लें;
- प्रणाम मुद्रा में दोनों हाथ मिलाकर वक्षस्थल पर, हृदय क्षेत्र से थोड़ा ऊपर रखें;
- हाथ के अंगूठे, कंठ की हड्डी के समकक्ष हों;

चित्र 11.1: प्रार्थना

टिप्पणी

ईश्वर का ध्यान करते हुए प्रार्थना करें। उदाहरणार्थ प्रार्थना निम्न प्रकार से करनी चाहिए –

श्री करुणा निधेय नमः
हे परम पिता, हे विश्व पिता
हे राष्ट्र पिता, हे जगद्‌धार
हे करुणामय, हे दीन दयालु
हे पूर्ण गुरु, हे अपरम्पार
हे परेष, अब कृपा कर
हमें दीजिए, शुद्ध विचार
जिससे जनता के सेवक बन
नाथ करें, सुखमय संसार
हे परम पिता, हे विश्वपिता
हे राष्ट्र पिता हे जगद्‌धार

प्रार्थना के अंत में, सभी लोग निम्नलिखित कथन को ऊँचे स्वर में एक साथ, तीन बार करें –

हे नाथ, आपकी कृपा से

विश्व का .... कल्याण हो – (3 बार)

सभी .... कर्त्तव्यपरायण हों – (3 बार)

परस्पर .... प्रेम हो – (3 बार)

श्री करुणा निधेय नमः ।।

नोट – इसके स्थान पर आप अपनी इच्छानुसार अपने ईष्ट देव की अन्य प्रार्थना भी कर सकते हैं।

लाभ

- प्रार्थना करने से आस–पास का वायुमंडल शुद्ध और स्पन्दित होता है;
- प्रार्थना से ध्यान लगने में मदद मिलती है;
- मानसिक त्रुटियां दूर होती हैं;
- मन को शान्ति मिलती है;
- आत्म शुद्धि (self-purification) की प्राप्ति होती है।

प्रार्थना के बाद अब यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं प्रारंभ करते हैं।

टिप्पणी

11.2.2 पवनमुक्तासन श्रेणी–1 (संधि संचालन के अभ्यास)

(अ) पैरों के लिए संधि संचालन के अभ्यास)

(i) पादांगुली नमन –

चित्र 11.2: पादांगुली नमन

विधि

- दोनों पैरों को सामने की ओर फैलाकर बैठें, हाथ को पीछे सहारा देने के लिए रखें;
- पैर की अंगुलियों को मोड़ना और खोलना शुरु करें। केवल अंगुलियाँ मोड़ें;
- श्वास–प्रश्वास के ताल–मेल के साथ, श्वास छोड़ते हुए सामने की तरफ, श्वास लेते हुए अपनी तरफ, पांच बार करेंगे;
- पंजा व टखना स्थिर रखें, केवल अंगुलियों में गति रखें। पांच बार अभ्यास करें फिर थोड़ी देर का विश्राम करें। अभ्यास के प्रभाव को जानने का प्रयास करें। हल्का खिंचाव एवं प्रभाव का अनुभव करें।

ii) गुल्फ नमन

चित्र 11.3: गुल्फ नमन

टिप्पणी

विधि

- दोनों पंजों को आगे–पीछे करें;
- अंगुलियां स्थिर रखें, केवल टखनों में गति बनाएं;
- श्वास लेते हुए पंजा आगे और श्वास छोड़ते हुए पीछे ले जाएं;
- पूरी चेतना और सजगता टखने के आस–पास रखें। पांच बार इस अभ्यास को करें, फिर थोड़ी देर का विश्राम करें।

iii) गुल्फ घूर्णन

चित्र 11.4: गुल्फ घूर्णन

विधि

- एक पैर को मोड़ कर जांघ के पास रखिए;
- एक हाथ पैर के ऊपर और एक हाथ टखने पर रखिए;
- हाथ की सहायता से टखने को गोल–गोल घुमाइये;
- एक श्वास में एक बार घुमायें। पांच बार क्लॉक वाइज़ एवं पांच बार एन्टी क्लॉक वाइज़ कीजिए;
- दर्द(पेन) वाले स्थान पर हल्की मसाज कीजिए ;

टिप्पणी

- बेहतर रक्त का प्रवाह, बेहतर प्राण का संचार अनुभव कीजिए। अब दूसरे पैर से इसी तरह इस अभ्यास को कीजिए।

iv) **जानुनमन**

चित्र 11.5: जानुनमन

विधि

- जांघ के नीचे अपनी हथेलियों को फँसाइए;
- घुटने को मोड़ना और खोलना शुरू कीजिए ;
- श्वास लेते हुए खोलिए, श्वास छोड़ते हुए मोड़िए;
- एड़ी जमीन को छुएगी नहीं, ऊपर ही ऊपर लाना और ले जाना है;
- खोलते वक्त घुटना सीधा रखने का प्रयास करेंगे। पूरी सजगता, पूरी चेतना घुटने के आस–पास रहे। श्वास–प्रश्वास के तालमेल के साथ पांच बार बायें से और फिर पांच बार दांये से श्वास लेते हुए खोलिए और श्वास छोड़ते हुए मोड़िए;
- फिर थोड़ी देर विश्राम प्रारंभिक स्थिति में कीजिए ;
- अभ्यास के प्रभाव को जानने का प्रयास कीजिए।

v) जानु चक्र

चित्र 11.6: जानु चक्र

विधि

- जांघ के नीचे हाथों को कुहनियों तक फंसाइये;
- अब घुटने को गोल—गोल घुमाना है। (जितना बड़ा चक्र बना सकते हैं, बनाने का प्रयास कीजिए, श्वास लेते हुए ऊपर और श्वास छोड़ते हुए नीचे);
- एक श्वास में एक बार। 3 बार क्लॉक वाइज़ और 3 बार एन्टी क्लॉक वाइज़ कीजिए;
- अभ्यास के प्रभाव को महसूस कीजिए ;
- जांघ की मांसपेशियों, पिंडली की मांसपेशियों में खिंचाव अनुभव कीजिए, जोड़ों और टखने में हल्का दर्द अनुभव कीजिए, उदर क्षेत्र पर हल्का दबाव अनुभव सहित दिया जा सकता है। इस क्रिया को 5—5 बार दोनों दिशाओं में करें, फिर दूसरे पैर से दोहराएं।

vi) जानुफलकाकर्षण –

चित्र 11.7: जानुफलकाकर्षण

विधि

- घुटने की मांसपेशियों को सिकोड़िये और छोड़िए;
- श्वास लेते हुए मांसपेशियों को अपनी तरफ खींचिये, थोड़ी देर रोकिए, श्वास छोड़ते हुए मांसपेशियों को ढीला कीजिए ;
- इस क्रिया को 5—5 बार अपनी श्वास व समय के अनुसार कीजिए, फिर थोड़ी देर का विश्राम कीजिए, जानुफलक आकर्षण विशेष रूप से घुटने के दर्द के लिए असरकारक है।

गठिया रोग, घुटनों में अत्यधिक दर्दकारक है जिसके लिए जानुफलकाकर्षण रामबाण है।

vii) अर्द्धतितली आसन

चित्र 11.8: अर्द्धतितली आसन

टिप्पणी

विधि

- एक पैर को मोड़कर दूसरे पैर की जांघ के ऊपर रखिए ;
- एक हाथ टखने के ऊपर एक हाथ जांघ के ऊपर रखिए ;
- हाथ की सहायता से घुटने को ऊपर और नीचे लाइए, श्वास लेते हुए जमीन की तरफ और श्वास छोड़ते हुए अपनी तरफ घुटने को लाइये और ले जाइए ;
- इस क्रिया को बहुत ही धीरे–धीरे 5–5 बार दोनों पैरों से कीजिए।

viii) पूर्णतितली आसन

चित्र 11.9: पूर्णतितली आसन

विधि

- दोनों पैर के पंजों को आपस में मिलाइए, दोनों हाथों को पैर के पंजों में लॉक कीजिए ;
- घुटने को ऊपर–नीचे करें;
- सामान्य श्वास–प्रश्वास के साथ, रीढ़ की हड्डी को सीधी रखें, वक्ष स्थल खुला हुआ होना चाहिए;
- तत्पश्चात् घुटनों को यथाशक्ति जल्दी–जल्दी पृथ्वी से अलग व पृथ्वी पर; तितली के पंखों की भांति गति दें।

टिप्पणी

ix) श्रोणीचक्र

चित्र 11.10: श्रोणीचक्र

विधि

- अर्द्धतितली की अवस्था में बैठिये;
- एक हाथ घुटने के ऊपर रखकर, घुटने को गोल–गोल घुमाइये;
- श्वास लेते हुए घुटने जमीन की तरफ, श्वास छोड़ते हुए अपनी तरफ क्लॉक वाइज़ और एन्टी क्लॉक वाइज;
- फिर दूसरे पैर से इसी तरह कीजिए।

x) वज्रासन

चित्र 11.11 : वज्रासन

विधि

- घुटनों को मोड़ते हुए पैरों को नितंबों के नीचे रखिए ;
- जहां तक संभव हो रीढ़ की हड्डी सीधी रखने का प्रयास कीजिए;
- यदि वज्रासन ज्यादा देर तक संभव न हो सके तो किसी भी आरामदायक आसन में बैठकर विश्राम कीजिए;
- रीढ़ की हड्डी सीधी रखिए।

(ब) हाथों के संधि संचालन के अभ्यास

i) मुष्ठिका बंध

चित्र 11.12: मुष्ठिका बंध

विधि

- हाथ को कंधे की सीध में ऊँचा उठाइए;
- कुहनी सीधी रखिए;
- अंगूठे को अंदर रखते हुए मुट्ठी बांधिये;
- श्वास लेते हुए खोलिए और श्वास छोड़ते हुए बांधिये।

टिप्पणी

ii) मणिबंध नमन –

चित्र 11.13: मणिबंध नमन

विधि

- हथेली को सीधी रखते हुए कलाई को ऊपर–नीचे मोड़िये;
- श्वास लेते हुए ऊपर की तरफ, श्वास छोड़ते हुए नीचे की तरफ मोड़िये।

iii) मणिबंध चक्र

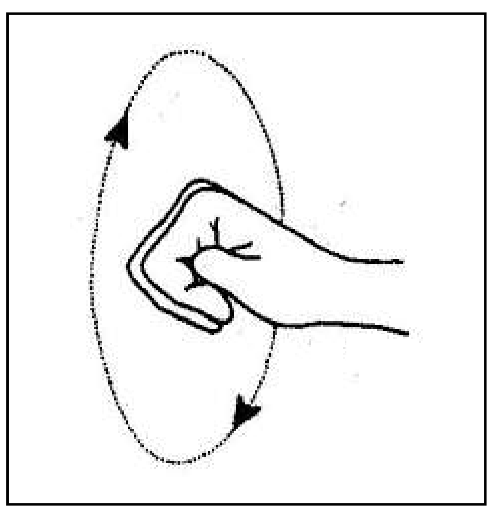

चित्र 11.14: मणिबंध चक्र

विधि

- मुट्ठी बांध कर कलाई को गोल–गोल घुमाइये;
- एक श्वास में एक बार, बाहर से अंदर फिर अंदर से बाहर कीजिए;
- 5–5 बार दोनों दिशाओं में कीजिए, फिर थोड़ी देर का विश्राम कीजिए;
- हथेलियों को जांघ के ऊपर रखिए, भुजाओं में हल्की पीड़ा जो उत्पन्न हुई उसको अनुभव कीजिए।

iv) कोहनीनमन

चित्र 11.15: कोहनीनमन

विधि

- कोहनी को मोड़िये और खोलिए, श्वास लेते हुए सामने की तरफ, श्वास छोड़ते हुए अपनी तरफ कंधे तक लाइए और ले जाइये;
- फिर बगल की तरफ लाइए और ले जाइये;
- सारी सजगता– सारी सक्रियता कोहनी के आसपास रखिए;
- फिर थोड़ी देर के लिए विश्राम कीजिए।

v) स्कन्ध चक्र

चित्र 11.16: स्कन्ध चक्र

टिप्पणी

विधि

- अंगुलियों को कंधे पर रखिए, कोहनियों को स्कन्ध से गोल–गोल घुमाइये;
- श्वास लेते हुए छाती और हाथों को फैलाइये, श्वास छोड़ते हुए कोहनियों को मिलाइये;
- 5–5 बार पीछे से आगे और आगे से पीछे घुमाइये;
- पूरी चेतना, पूरी सजगता कंधे के आसपास रखिए और फिर थोड़ी देर का विश्राम कीजिए।

स) ग्रीवा संचालन

चित्र 11.17: ग्रीवा संचालन

टिप्पणी

विधि

- श्वास लेते हुए गर्दन पीछे, श्वास छोड़ते हुए गर्दन सामने की तरफ धीरे–धीरे घुमाइये;
- गर्दन में मूवमेंट दीजिए, ध्यान रहे गर्दन की नसें नाजुक होती हैं, कहीं पर ज्यादा दबाव न पड़े, कही कोई ज्यादा न खिंच जाए;
- सामान्य गति में गर्दन आगे–पीछे लायें, फिर साइडवेज जैसे बगल झांकने जैसा, श्वास लेते हुए पीछे और श्वास छोड़ते हुए आगे, 5–5 बार फिर थोड़ी देर विश्राम करें।

अब तक के अभ्यास को अनुभव कीजिए। पूरा शरीर ऊर्जान्वित, पूरा शरीर सक्रिय, बेहतर प्राण का संचार अनुभव कीजिए, सक्रियता, चैतन्यता अनुभव कीजिए। (संधि संचालन का अभ्यास समाप्त होता है।)

11.2.3 पवनमुक्तासन श्रेणी–2
(उदर संचालन के अभ्यास)

1. उत्तानपादासन

चित्र 11.18: उत्तानपादासन

विधि

- इस अभ्यास के लिए पीठ के बल लेट जाइए, दोनों पैर एक साथ मिलाइये;
- हथेलियां कमर के बगल में रखिए। (यह प्रारंभिक स्थिति हुई);
- श्वास लेते हुए बाएं पैर को धीरे–धीरे उठाइये;
- जहां तक पैर उठा सकते हैं क्षमतानुसार उठाते जाइए;
- अब श्वास छोड़ते हुए धीरे–धीरे पैर को वापस नीचे लाइए;

टिप्पणी

- इसी प्रकार दायें पैर को श्वास भरते हुए उठाइये;
- श्वास छोड़ते हुए पैर को धीरे–धीरे नीचे लाइए;
- तीन–तीन बार कीजिए;
- दोनों पैरों को एक साथ धीरे–धीरे इसी प्रकार उठाइए, फिर नीचे ले आइये;
- दोनों तरफ से, पूरी सक्रियता, पूरी सजगता के साथ, घुटने के आसपास, जांघ, पिंडली की मांसपेशियों में खिंचाव का अनुभव कीजिए, फिर थोड़ी देर विश्राम के लिए शवासन में लेटिये और दोनों हाथ बगल में हथेलियाँ आसमान की ओर खुली हुईं, रीढ़ की हड्डी, सिर और गर्दन एक सीध में रखिए तथा अभ्यास के प्रभाव को महसूस कीजिए और जांघ, घुटना, कमर, टखना आदि सभी अंगों में बेहतर प्राण का संचार अनुभव कीजिए।

2. पादचक्रासन

चित्र 11.19 : पादचक्रासन

विधि

- शवासन से चेतनावस्था में आइये;
- पहले की तरह घुटने को सीधा रखते हुए दायें पैर को जमीन से ऊपर उठाकर गोल–गोल घुमाइये;
- श्वास लेते हुए ऊपर की तरफ और श्वास छोड़ते हुए नीचे की तरफ;
- लंबा बड़ा–सा घेरा बनाइये;
- धीरे–धीरे 3–3 बार क्लॉक वाइज़ और एन्टीक्लॉक वाइज कीजिए;
- अब दूसरे पैर से भी इसी प्रकार अभ्यास कीजिए;
- जांघ और पिंडली की मांसपेशियों में बेहतर रक्त का प्रवाह और टखने व कमर में हल्की पीड़ा महसूस कीजिए।
- पूरी चेतना, पूरी सजगता घुटने के आसपास रखिए;
- फिर थोड़ी देर शवासन में विश्राम कीजिए।

टिप्पणी

नोटः दोनों पैर एक साथ उठाकर भी यह अभ्यास किया जाता है, जो कठिन अभ्यास है हृदय व कमर के रोगियों को यह अभ्यास वर्जित है।

3. पादसंचालन (साइकिलिंग)

चित्र 11.20: पादसंचालन

विधि

- पहले की तरह दोनों पैरों को मिला लीजिए;
- हाथ सीधे, हथेलियां जमीन की तरफ रखिए;
- पादसंचालन जैसे साइकिल चलाते हैं;
- पहले एक पैर के घुटने को मोड़िये; इन्हें छाती के करीब लाइए, फिर श्वास लेते हुए साइकिल चलाने की तरह पंजे को आगे–पीछे लाइए और ले जाइए;
- दूसरे पैर से भी इसी तरह कीजिए;
- फिर दोनों पैर से एक साथ साइकिल चलाइए;
- इस क्रिया को 5–5 बार लयबद्ध तरीके से कीजिए;
- बहुत धीरे–धीरे, कोई जल्दीबाजी नहीं, फिर थोड़ी देर शवासन की स्थिति में विश्राम कीजिए;
- उदर क्षेत्र, छाती के क्षेत्र में जो दबाव दिया गया है, जो दर्द पैदा किया गया है, सारी सजगता, सारी चेतना अभ्यास के प्रभाव पर ले जाइए। ये अभ्यास उदर विकारों को दूर करने में लाभदायक है।

टिप्पणी

4. पवन मुक्तासन

चित्र 11.21: पवन मुक्तासन

विधि

- दोनों घुटनों को मोड़िये;
- दोनों घुटनों के बाहर हथेलियों को फंसाकर श्वास भरिये और श्वास छोड़ते हुए नाक को घुटने से लगाने का प्रयास कीजिए;
- इस क्रिया को 3 से 4 बार, अपनी श्वास और समय के अनुसार कीजिए;
- फिर थोड़ी देर शवासन में विश्राम कीजिए।

5. उदराकर्षण

चित्र 11.22: उदराकर्षण

टिप्पणी

विधि

- दोनों हथेलियों की अंगुलियों को आपस में फंसाइये;
- इन्हें सिर के नीचे रखिए;
- दोनों घुटनों को मोड़कर सीने के पास रखिये;
- अब सिर को बाँई ओर व घुटने दाँई ओर मोड़िये;
- रीढ़ की हड्डियों में ऐंठन (मसाज) दीजिए;
- फिर विपरीत दिशा में सिर दाँई ओर व घुटने बाँई ओर मोड़िए;
- रीढ़ की हड्डी में मसाज दीजिए।

इससे पेंक्रियाज आदि ग्रंथियां सक्रिय होती हैं। इंसुलिन का सिक्रेशन बेहतर होता है। कब्ज और गैस दूर होती है।

11.2.4 पवन मुक्तासन श्रेणी–3 (शक्ति बंध के अभ्यास)

i) चक्की चलासन

- दोनों पैरों को फैलाकर बैठिए;
- हथेलियों को आपस में गूंथकर आगे की तरफ रखिए;
- हाथ सीधे रखिए;

चित्र 11.23: चक्की चलासन

- अब चक्की की तरह हाथों को चलाइए। यह महसूस करते हुए कि हमारे हाथ में बहुत भारी वजन है और उसे हम धकेल रहे हैं। इसी भावना के साथ कमर से आगे पीछे होइये, श्वास छोड़ते हुए आगे की तरफ और श्वास लेते हुए अपनी (पीछे की) तरफ, गोल–गोल घुमाइये। जांघ और पिंडली की मांसपेशियों में खिंचाव महसूस कीजिए;

टिप्पणी

- हल्की पीड़ा बाहों में उत्पन्न हो रही है, उनके प्रति सजग होइये और अभ्यास के प्रभाव को महसूस कीजिए।

ii) नौका चलासन

विधि

- दोनों पैरों को मिला लीजिए;
- हाथों को कमर की बगल में रखिये और अभ्यास कुछ ऐसे कीजिए जैसे नौका चलाते हैं;

चित्र 11.24: नौका चलासन

- कमर से ऊपर का भाग श्वास छोड़ते हुए आगे की तरफ भुजाओं सहित ले जाइए और श्वास लेते हुए अपनी तरफ वापस आइए;
- श्वास छोड़ते हुए आगे और श्वास लेते हुए पीछे की तरफ वापस आइए, जैसे नाव का चप्पू आपके हाथ में है और आप स्वयं नाव चला रहे हैं। थोड़ी देर का विश्राम करें।

iii) रज्जुकर्षण आसन (कुएं से पानी खींचने वाली स्थिति में आसन)

विधि

रज्जुकर्षण अर्थात् (रस्सी से पानी खींचना) जैसे–

- कुंए से पानी निकालते समय जैसे रस्सी को खींचते हैं, उसी प्रकार से ध्यान रखते हुए, श्वास लेते हुए एक हाथ ऊपर ले जाइए और श्वास छोड़ते समय बलपूर्वक मुट्ठी बांधकर नीचे की तरफ खींचिए;
- दोनों हाथों से बारी–बारी से कीजिए।

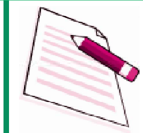

टिप्पणी

चित्र 11.25: रज्जुकर्षण

भुजाओं, कंधों तथा रीढ़ की हड्डी में संतुलित प्राण का संचार व रक्त के प्रवाह का अनुभव कीजिए।

iv) काष्ठतक्षण आसन (कुल्हाड़ी चलाने की स्थिति वाला आसन)

विधि

- पैर के पंजों के बल उकड़ू बैठिए;
- दोनों पंजों के बीच थोड़ी दूरी रखते हुए, दोनों हाथ की अंगुलियों को आपस में फंसाकर हथेलियों को ऊपर ले जाइये, यह अनुभव करते हुए कि हम कुल्हाड़ी चला रहे हैं;

चित्र 11.26: काष्ठतक्षण आसन

टिप्पणी

- हाथ ऊपर ले जाकर 'हा' ध्वनि के साथ नीचे लाइए;
- श्वास छोड़ते हुए, अंदर के सारे आक्रोश बाहर निकल रहे हैं;
- ऐसी भावना के साथ 5 से 10 बार इस अभ्यास को कीजिए, फिर थोड़ी देर के लिए विश्राम कीजिए।

यह अभ्यास तनाव और तनाव जनित रोगों के लिए प्रभावकारक है। साथ ही, अवसाद के रोगियों के लिए प्रभावकारक है। जो घबराते हैं या दबाव में रहते हैं, उन्हें यह अभ्यास सक्रियता के साथ करना चाहिए।

11.2.5 विशेष अभ्यास

i) ताड़ासन –

विधि

- खड़े होकर दोनों पैर एक साथ, हाथ की अंगुलियों को आपस में फंसाकर, पलटकर सर के ऊपर रखिए;
- सामने दीवार में एक बिंदु निश्चित कीजिए, जिसमें अपनी चेतना को केन्द्रित रखते हुए, श्वास लेते हुए, हाथों को ऊपर उठाइये; और सीधा कीजिए; एड़ी उठाते हुए पंजों के बल खड़े होने का प्रयास कीजिए;

चित्र 11.27: ताड़ासन

- श्वास छोड़ते हुए धीरे–धीरे नीचे आइए। इस क्रिया को 5 बार कीजिए। खिंचाव का अनुभव कीजिए, विश्राम कीजिए;
- अभ्यास के प्रभाव को जानने का प्रयास कीजिए।

टिप्पणी

ii) तिर्यक्ताड़ासन –

विधि

- ताड़ासन की स्थिति में श्वास छोड़ते हुए बायीं तरफ झुकिये;
- खिंचाव अनुभव कीजिए;
- श्वास लेते हुए बीच में आइये;
- अब श्वास छोड़ते हुए दाहिनी तरफ झुकिये; ध्यान रहे हाथ–भुजाएं तने हुए सीधे रहने चाहिए;

चित्र 11.28: तिर्यक्ताड़ासन

- कटिप्रदेश में, कंधास्थि में, हल्की पीड़ा महसूस कीजिए, दोनों ओर समान रूप से झुकिये;
- बांहों, जांघों, उदर और छाती की मांसपेशियों में सक्रियता अनुभव कीजिए।

iii) बुद्धि तथा धृति–शक्ति विकासक

चित्र 11.29: बुद्धि तथा धृति–शक्ति विकासक

टिप्पणी

स्थिति

- दोनों पैर मिलाकर, शरीर को कंधों तक बिल्कुल सीधा रखें।
- मुँह बंद रखें।
- सिर को बिल्कुल पीछे मोड़ते हुए ले जाएं।
- आँखें खुली रखें और ऊपर आकाश की तरफ देखें।

विधि

- सिर को पीछे रखते हुए, अपना ध्यान सिर के ऊपर, मध्य में लगाने की चेष्टा करें।
- नाक से सांस अंदर—बाहर करें।
- प्रारंभ में श्वास—प्रश्वास की प्रक्रिया 15—20 बार करें।

लाभ

- इस क्रिया से मानसिक विकार, जैसे— मंदबुद्धि, मूढ़ता, भूलना, उदासीनता, सन्देह आदि दूर होते हैं।
- इच्छा शक्ति बढ़ती है।

iv) स्मरण —शक्ति विकासक

चित्र 11.30: स्मरण —शक्ति विकासक

स्थिति —

- दोनों पैर मिलाकर सीधे खड़े हो जाएं।
- अपनी आँखों को पैरों से 5 फीट दूरी पर किसी बिन्दु पर केन्द्रीभूत करें।
- गर्दन की स्थिति सामान्य रखें।

विधि –

- ब्रह्म रन्ध्र (मस्तिष्क के बीच का भाग) पर ध्यान लगाएं।
- स्वाभाविक रूप से सांस अंदर–बाहर निकालें।
- इसी क्रिया को 15–20 बार दोहराएं।

लाभ

- इस क्रिया से मानसिक थकावट दूर होती है।
- स्मरण–शक्ति का विकास होता है।
- कार्य–क्षमता बढ़ती है।
- हाइपोथैलेमस (Hypothallamus) में प्राण–शक्ति का संचार होता है।

v) कपोल–शक्ति विकासक

चित्र 11.31: कपोल शक्ति विकासक

स्थिति

- दोनों पैर मिलाकर, सीधे खड़े हो जाएं।
- दोनों हाथों की आठ अंगुलियों का अग्र भाग मिला लें।
- नासिका को दोनों अंगूठों से बंद कर लें।

विधि

- होठों को, चोंच की भांति बनाकर, मुँह से ज़ोर से साँस भरें।
- सांस भरते समय आँखें खुली रखें।

टिप्पणी

- गाल फुलाकर, आँखें बंद कर लें।
- ठुड्डी को गले की, हड्डी पर रखकर, जब तक संभव हो साँस रोक कर रखें।
- तत्पश्चात्, गर्दन को सामान्य स्थिति में वापस ले आएं।
- आँखें खोल कर सामने देखें।
- धीरे–धीरे साँस को नासिका द्वारा बाहर निकालें।
- प्रारंभ में यह क्रिया तीन बार दोहराएँ।

लाभ –

- इस क्रिया से गालों को शक्ति मिलती है, झुर्रियां दूर होती है और चेहरा दमकने लगता है।
- दाँत मजबूत होते हैं और दंत–रोग जैसे पायरिया, मुँह से बदबू आना आदि ठीक होते हैं।
- आँख के रोग ठीक होते हैं।
- पेट की गर्मी दूर होती है।
- सिरदर्द में आराम मिलता है।
- मुँह का सूखापन ठीक हो जाता है।

vi) नेत्र–शक्ति विकासक क्रियाएं

स्थिति : दोनों पैर मिलाकर, सीधे खड़े हो जाएं।

विधि – क.

- गर्दन को सीधा रखकर आंख की पुतलियों को पहले ऊपर की ओर फिर नीचे की ओर चलायें।
- इस क्रिया को 8 से 10 बार दोहरायें।
- फिर आंखों को सामान्य स्थिति में लाते हुए विश्राम दें।

चित्र 11.32

टिप्पणी

ख.

- गर्दन को सीधा रखकर आंख की पुतलियों को पहले दायें फिर बायें घुमाएं।
- इस क्रिया को 8 से 10 बार दोहरायें।
- फिर आंखों को सामान्य स्थिति में लाते हुए विश्राम दें।

चित्र 11.33

ग.

- गर्दन को सीधा रखकर आंख की पुतलियों को दायीं से बायीं तथा बायीं से दायीं ओर गोलाई में घुमाएं।
- इस क्रिया को 8 से 10 बार दोहरायें।
- फिर आंखों को सामान्य स्थिति में लाते हुए विश्राम दें।

चित्र 11.34

टिप्पणी

लाभ

- आंख की सभी विकृतियां दूर होती हैं।
- दृष्टि, तीव्र होती है।
- यदि यह क्रिया लगातार की जाए तो, आंखें सदैव स्वस्थ रहती हैं।
- आंखों के अन्य विकार जैसे – आंखों से पानी आना, जलन होना, खुजली तथा आंखों की थकावट दूर होती है।
- लैंस की पावर भी कम होती है।

11.2.6 विश्रामात्मक आसन

विश्रामात्मक आसनों का भी अन्य आसनों की भांति बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इनके अभ्यास से व्यक्ति शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक रुप से भी अपने आपको हल्का एवं ऊर्जावान अनुभव करता है।

विश्रामात्मक आसनों में आप निम्न प्रमुख आसनों का अध्ययन यहाँ करेंगे।

i) शवासन

ii) मकरासन

i) **शवासन**

चित्र 11.35: शवासन

विधि

- पीठ के बल सीधा लेट जाएँ।
- पैरों में थोड़ी दूरी रखकर सीधा फैला लें। दोनों हाथ धड़ के पास रखें, हथेली खुली हुई आकाश की ओर अंगुलियां थोड़ी मुड़ी हुई हों।
- आंखें बंद कर लें और श्वास सामान्य रखें।

- अपने शरीर की सभी मांसपेशियाँ, नस—नाड़ियाँ अंग—प्रत्यंग को ढीला छोड़ दें।
- पैर के अंगूठे से लेकर पिंडली, घुटना, जंघा, छाती, पेट, हाथ, गर्दन, मुँह और सिर, शरीर के प्रत्येक भाग पर क्रम से ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास करें।
- ऐसा करने से शरीर के सभी अंग आराम का अनुभव करेंगे।
- बाद में दोनों हाथ आपस में रगड़ें और आँखों पर हल्का स्पर्श करें और धीरे—धीरे आँखें खोल दें।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से शरीर की सभी मांसपेशियों, रक्त—नलिकाओं, नस—नाड़ियों और प्रत्येक अंग को संपूर्ण विश्राम मिलता है और अधिक काम करने से जो थकावट होती है, वह भी दूर हो जाती है।
- मानसिक तनाव और उच्च रक्तचाप दूर होता है।
- हृदय और मस्तिष्क में पुनर्वृद्धि होती है।
- अनिद्रा के रोगियों के लिए यह बहुत लाभकारी आसन है।
- डर, चिन्ता और पीड़ा की स्थिति से मन को शान्ति मिलती है।
- पीठ के बल लेटकर किये जाने वाले आसनों में शवासन में ही विश्राम किया जाता है।

ii) मकरासन (पेट के बल लेटकर की जाने वाली क्रियाएं)

चित्र 11.36: मकरासन

टिप्पणी

विधि

- पेट के बल लेटें;
- बायाँ हाथ दाएं हाथ के साथ चित्रानुसार मिलाकर अपना मस्तक उसके ऊपर रखें;
- पैर सुविधापूर्वक दूर से दूर खुले हुए रखें। एड़ियां अंदर की ओर हों और पंजे बाहर की ओर;
- छाती को जमीन से थोड़ा उठाकर रखें;
- पेट पर हल्का–सा दबाव रखें;
- शरीर का संतुलन बिल्कुल मध्य में रहे;
- सांस की सामान्य गति रखें;
- इस स्थिति में 5–7 मिनट तक विश्राम कीजिए।

पेट के बल लेटकर किये जाने वाले आसनों के बाद मकरासन में ही विश्राम किया जाता है।

11.2.7 ध्यानात्मक आसन

योग में ध्यान की बहुत सी विधियाँ प्रचलित हैं। यह तल्लीनता की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें साधक किसी एक लक्ष्य, ध्वनि, धारणा और ध्यान को लगाने का प्रयत्न करता है। ध्यान का अभ्यास बिना आसन व प्राणायाम की पूर्ण तैयारी के प्रारंभ करना उचित नहीं है। अतः ऐसे ही कुछ ध्यानात्मक आसनों के बारे में आप जानेंगे। अगले यूनिट योग आसन में इन आसनों के साथ–साथ अन्य आसनों पर भी विस्तार से चर्चा होगी। इनके व्यावहारिक स्वरूप को हम प्रयोग के दौरान समझ सकेंगे।

i) सिद्धासन

ii) वज्रासन

iii) पद्मासन

i) सिद्धासन

चित्र 11.37: सिद्धासन

टिप्पणी

विधि

- जमीन पर दरी, चटाई अथवा कंबल बिछाकर बैठ जाएँ और पैर आगे की ओर फैला लें।
- अब बायाँ पाँव, घुटने से मोड़ें और हाथों से पकड़ते हुए उसका तला, दाईं जंघा से मिला दें।
- इसी प्रकार दायाँ पाँव और उसे बाईं एड़ी के जोड़ पर, जननेद्रियों के समीप रखें।
- दोनों हाथ (ज्ञान मुद्रा) घुटनों पर रखें।
- कमर, गर्दन और सिर सीधा रखें।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से सभी नस–नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं।
- मस्तिष्क की एकाग्रता बढ़ती है और दिमाग तेज़ होता है।
- जोड़ों का कड़ापन (विशेषकर कमर, कूल्हे और घुटने का) दूर होता है।
- मेरुदण्ड में रक्त का संचार सुगमता से होता है।

ii) वज्रासन

चित्र 11.38: वज्रासन

विधि

- दोनों पाँव घुटने से मोड़ते हुए बैठ जाएं।
- पैर का अग्र भाग नितम्ब (कुल्हे) के नीचे, इस प्रकार रखें कि एड़ी ऊपर की ओर रहे और दोनों पंजे आपस में मिले रहें।
- दोनों हाथ जंघा पर रखें।
- कमर और गर्दन बिल्कुल सीधा रखें।

टिप्पणी

- आँखें खुली रखें और सामने देखें।
- श्वास सामान्य रखें।

लाभ

- जिन बुर्जुगों को अपच, पेट में भारीपन और बदहज़मी की शिकायत रहती हो, उन्हें यह आसन भोजन के तुरंत बाद अवश्य करना चाहिए।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से शरीर वज्र के समान कठोर हो जाता है।
- गठिया, कमर और घुटनों के रोग के लिए यह बहुत लाभकारी है।

वज्रासन ही अकेला एक आसन है जो भोजन के तुरंत बाद किया जा सकता है।

iii) पद्मासन

विधि

- दाहिने पाँव को बायीं जांघ पर रखें;
- अब बायें पांव को उठाकर दांयी जांघ पर रखें;
- कमर, गर्दन और सिर सीधा रखें;
- दोनों हाथ ज्ञान मुद्रा में घुटनों पर रखें।

चित्र 11.39: पदमासन

टिप्पणी

लाभ

- पाचन शक्ति बढ़ाता है;
- जोड़ों का कड़ापन दूर होता है, एकाग्रता बढ़ती है;
- इसके प्रभाव से शरीर कमल के समान खिल जाता है, यानी स्वस्थ हो जाता है।

यूनिटगत प्रश्न 11.2

1. प्रार्थना के कोई दो लाभ बताइए।

   ....

   ....

2. पवनमुक्त श्रेणी के अंतर्गत उदर संचालन के किन्हीं दो मुख्य अभ्यासों के नाम लिखिए।

   ....

   ....

3. किन्हीं दो विश्रामात्मक आसनों के नाम लिखिए।

   ....

   ....

4. किन्हीं तीन ध्यानात्मक आसनों के नाम बताइए।

   ....

   ....

आपने क्या सीखा

- शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए मानसिक स्वास्थ्य बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि सभी ज्ञानात्मक व क्रियात्मक इन्द्रियां और शरीर के विभिन्न अंग, मन से ही आदेश लेते हैं। अतः मानसिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए, यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, ध्यानात्मक आसन, प्राणायाम आदि करना अति आवश्यक है।
- **यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं वे सभी क्रियाएं हैं जो शरीर के विभिन्न अंगों एवं उनके संचालन के लिए, योगासन, प्राणायाम, ध्यान आदि से पूर्व की जाती हैं और योगासनों के लिए शरीर को तैयार करती हैं।**

टिप्पणी

- यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, शरीर के प्रत्येक अंग–प्रत्यंग पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं। सिर से लेकर पाँव तक शरीर का प्रत्येक भाग इनसे प्रभावित होता है। यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं (व्यायाम) के अंतर्गत बहुत सी क्रियाएं की आती हैं, जिन्हें योगासनों को करने से पूर्व करना आवश्यक माना जाता है और शरीर भी योगासन करने के लिए अपने आपको तैयार कर लेता है।

- सभी व्यायामों से शरीर को शक्ति मिलती है, परन्तु शरीर को लचीला बनाने के लिए, रक्त वाहिनी नाड़ियों में रक्त के संतुलित प्रवाह के लिए, यौगिक व्यायाम ही उत्तम माना गया है। अतः शारीरिक और मानसिक रुप से स्वस्थ रहने के लिए यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, आसन, मुद्रा एवं प्राणायाम सर्वोत्तम हैं।

- मानसिक स्वास्थ्य यौवन को लंबे समय तक बनाये रखने और व्यक्ति को ओजस्वी बनाने का उचित मार्ग है। स्वास्थ्य और जीवन–शक्ति, शारीरिक स्थिति से कहीं अधिक व्यक्ति की मनोस्थिति पर निर्भर करती है। व्यक्ति बढ़ता है, बूढ़ा नहीं होता। जैसे–जैसे आपके जीवन में वर्ष जुड़ते हैं, 'योग' द्वारा आप अपने वर्षों को अर्थपूर्ण बना सकते हैं। जीवन में विश्वास, आत्म सम्मान और गरिमा भरने के लिए, यौगिक क्रियाओं, आसन, मुद्रा व प्राणायाम का महत्वपूर्ण स्थान है। इनसे मन शुद्ध होता है, अतिरिक्त शक्ति प्राप्त होती है और आत्मिक शान्ति मिलती है।

- सिर से लेकर पाँव तक शरीर का प्रत्येक भाग इनसे सकारात्मक ढंग से प्रभावित होता है और शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए योग क्रियाएं व योगासन बहुत लाभदायक हैं। आसनों से ग्रंथियों, पेशियों, अस्थिबन्धों और स्नायु का व्यायाम होता है जिससे वे स्वस्थ रहते हैं। यौगिक क्रियाओं और आसनों का लक्ष्य इस भौतिक शरीर को आत्मा के निवास के लिए उपयुक्त स्थल बनाना है।

यूनिटांत प्रश्न

1. यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं की आवश्यकता तथा महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं से क्या तात्पर्य है? किन्हीं दो के विषय में सचित्र वर्णन कीजिए।
3. पवनमुक्त श्रेणी–1 की सभी क्रियाओं का नाम बताते हुए किन्हीं तीन पर प्रकाश डालिए।

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

11.1

1. यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं वे सभी क्रियाएं हैं जो शरीर के विभिन्न अंगों तथा उनके संचालन के लिए, योगासन, प्राणायाम, ध्यान आदि से पूर्व की जाती हैं और योगासनों के लिए शरीर को तैयार करती हैं।

2. मानसिक स्वास्थ्य यौवन को लंबे समय तक बनाये रखने और व्यक्ति को ओजस्वी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

11.2

- 1. प्रार्थना करने से आसपास का वायुमंडल शुद्ध तथा स्पन्दित होता है।
- 2. प्रार्थना से ध्यान लगाने में मदद मिलती है।

2. (i) उत्तानपादासन, (ii) उदराकर्षण
3. (i) शवासन (ii)मकरासन
4. (i) सिद्धासन, (ii)वज्रासन, (iii)पद्मासन

टिप्पणी

गतिविधि: चित्र देखकर निम्नलिखित योग अभ्यासों को पहचानिए और इनकी विधि एवं लाभों के बारे में लिखिए।

12

योग आसन

पिछली यूनिट में आप यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं के बारे में अध्ययन कर चुके हैं। आप यह भी जान चुके हैं कि 'आसन' अष्टांग योग की तीसरी महत्वपूर्ण सीढ़ी है और आसन करने से पहले यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं करना अति आवश्यक होता है। सूक्ष्म क्रियाएं, योग आसन करने से पहले की प्रारंभिक क्रियाएं हैं, जो शरीर को सही ढंग से आसन करने के लिए तैयार करती है। क्रियाओं के पश्चात आसनों का अभ्यास, शारीरिक स्थिरता एवं दृढ़ता प्रदान करने के लिए किया जाता है। जिससे शरीर दृढ़ एवं स्वस्थ होता है। इस यूनिट में हम योग आसन, उनके विभिन्न प्रकार, महत्व एवं आवश्यकता का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के बाद आप :

- आसन को परिभाषित कर सकेंगे;
- योगासनों की आवश्यकता और उनके महत्व को अभिव्यक्त कर सकेंगे;
- आसनों के प्रकार बता सकेंगे;
- सूर्यनमस्कार तथा अन्य आसनों के लाभ का विश्लेषण कर सकेंगे।

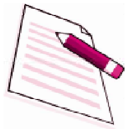

टिप्पणी

12.1 योगासन

सबसे पहले हम यह जानते हैं कि आसन है क्या? महर्षि पतंजलि द्वारा 'योग दर्शन' में आसन की बहुत ही सरल व्याख्या की गई है –

' स्थिर सुखमासनम्। (योग द० 2/46)

अर्थात् निश्चल सुखपूर्वक बैठने का नाम 'आसन' है।

कहने का तात्पर्य यह है कि '**बिना हिले–डुले, स्थिरता के साथ, बिना किसी कष्ट के सुखपूर्वक एक ही शारीरिक स्थिति में बने रहना ही 'आसन' है।'**

यह स्थिति एकाग्रता के लिए नितांत आवश्यक है। यहां यह बात जानना आवश्यक है कि हमारी जितनी एकाग्रता बढ़ेगी, उतनी ही कार्यक्षमता और कार्य कुशलता बढ़ती जायेगी। अतः जितना शरीर दृढ़ एवं स्वस्थ होगा, आसन में उतनी ही स्थिरता अधिक होगी। योगमय स्थिति में आसन 'योगासन' कहलाता है।

आज समाज में ऐसी भ्रान्तियाँ जन्म लेती जा रही हैं कि लोग कुछ आसन व प्राणायाम करके अपने आपको योगी मानने लगते हैं और उन्हें योगी समझ लिया जाता है। लेकिन जैसा कि पिछले यूनिट अष्टांग योग में भी आप जान चुके हैं कि योगासन तो योग का एक अंग है।

योगी बनने के लिए योग के प्रथम अंग–यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह) और द्वितीय अंग नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्राणिधान) का पालन करना अति आवश्यक है, इसके बाद ही अगले अंगों में जाना चाहिए।

12.1.1 आसन एवं योग क्रियाओं में अंतर

जैसा कि आपको स्पष्ट किया जा चुका है कि यौगिक क्रियाएं आसन करने से पहले की प्रारंभिक क्रियाएं हैं। जिन्हें योग आसन करने से पूर्व किया जाता है। आइए, यहां समझते हैं कि आसन एवं योग क्रियाओं में अंतर क्या है?

यौगिक क्रियाएं – ये स्थायी स्थिति न होकर लगातार करने की क्रियाएं हैं, जिन्हें अपनी रूचि, सामर्थ्य एवं क्षमता के अनुसार करना चाहिए। क्रियाओं में किसी एक अवस्था विशेष पर पहुंचने व रुकने का आग्रह नहीं होता अपितु अपनी क्षमतानुसार जितना हो सके, करना होता है।

हठयोग की विचारधारा के अनुसार किसी भी विशेष मुद्रा व स्थिति एवं अवस्था में पहुंचना और निश्चित समय के लिए स्थिर होकर बिना कष्ट के रहना 'आसन' कहलाता है। इसमें अभ्यास करने वाले की स्थिति, रुचि, अवस्था, क्षमता को आधार ना बनाकर आसन तक पहुँचने एवं बने रहने पर बल दिया जाता है।

टिप्पणी

घेरण्ड ऋषि ने आसनों के बारे में लिखा है –

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीव–जन्तवः।
चतुरशीति लक्षानि शिवेनाभिहिलानि च।।
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासन शुभम।।

अर्थात् संसार में जितने जीवों की योनियां हैं उतने ही आसन हैं। जीवयोनियां 84 लाख मानी गई हैं अतः आसन भी 84 लाख हैं। इनमें 84 आसन श्रेष्ठ माने गये हैं। **इनमें भी 32 आसन अति विशिष्ट और अधिक शुभ समझने चाहिए।**

12.1.2 योगासनों का महत्व एवं आवश्यकता

शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए शारीरिक क्रियाएं या व्यायाम आवश्यक है। जैसे टहलना, दौड़ना, तैरना, खेलना, साइकिल चलाना, आधुनिक समय में जिम जाना, आदि। लेकिन प्राचीनकाल से ही योगासनों का अपना महत्व है, क्योंकि योगासनों का प्रभाव विशिष्ट रुप से शरीर के अंगों व प्रत्यंगों पर सकारात्मक रुप से पड़ता है। जिससे अभ्यास करने वाला ना केवल शारीरिक रूप से स्वस्थ रहता है बल्कि मानसिक व आध्यात्मिक रुप से भी स्वस्थ रहता है। योगासन करने के मुख्य लाभ इस प्रकार हैं –

- संपूर्ण शरीर में ऊर्जा का संचार होता है।
- शरीर की अस्थिरता एवं आलस्य दूर होता है।
- शारीरिक थकावट कम होती है और मानसिक तनाव दूर होता है।
- योगासन शरीर को दिव्यता प्रदान करते हैं।
- योगासन शरीर में अंतःस्रावी ग्रंथियों को सुप्रभावित करते हैं, जिससे हारमोनल विकार दूर होते हैं।
- योगासन श्वास–प्रश्वास की क्रिया को नियमित करते हैं।

अतः आप जान गये होंगे कि योगासनों से शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक संतुलन प्राप्त होता है और स्वस्थ रहने के लिए योगासन परम आवश्यक है।

गुरुपदिष्टमार्गेण योगमेव समभ्यसेत्।

अर्थात योग की सिद्धि गुरुकृपा और उपदिष्ट मार्ग से ही होती है। अतः योगासन, प्राणायाम, ध्यान आदि का अभ्यास योग गुरु के दिशानिर्देशन में ही किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्न 12.1

1. महर्षि पतंजलि ने आसन के विषय में क्या सूत्र दिया है?

....

....

....

2. यौगिक सूक्ष्म क्रिया और आसन में कोई एक अंतर बताइए।

....

....

....

3. योगासन करने का कोई एक मुख्य लाभ लिखिए।

....

....

....

12.2 सूर्य नमस्कार

यह निश्चित योगासनों का एक समूह है, जिसे एक निश्चित क्रम में किया जाता है।

सूर्य नमस्कार करने की विधि

प्रथम स्थिति (प्रणाम आसन) : सूर्य के सम्मुख खड़े होकर नमस्कार की मुद्रा में हाथों को वक्ष स्थल के सामने रखें।

द्वितीय स्थिति (हस्त उत्तानासन): श्वास अंदर भरकर सामने से हाथ खोलते हुए पीछे की ओर ले जाएं। आसमान की ओर देखें। कमर को यथा शक्ति पीछे की ओर झुकाएं।

तृतीय स्थिति (पाद हस्तासन): श्वास बाहर निकालकर हाथों को पीछे से सामने की ओर झुकाते हुए पैरों के पास जमीन पर टिका दें। प्रयास करें कि हथेलियों को भी भूमि से स्पर्श कराया जा सके और सिर को घुटनों से लगाया जा सके।

चतुर्थ स्थिति (अश्व संचालन): नीचे की ओर झुकते हुए हाथों की हथेलियों को छाती के दोनों ओर टिकाएं। बायां पैर उठाकर पीछे की ओर भुजंग आसन की स्थिति में ले जाएं और दायां पैर दोनों हाथों के बीच रहे। घुटना छाती के सामने व पैर की एड़ी जमीन पर टिकी रहे। श्वास अंदर भरकर आकाश की ओर देखें।

चित्र 12.1: सूर्यनमस्कार

टिप्पणी

पंचम स्थिति (पर्वतासन): श्वास बाहर निकालकर दाहिने पैर को अब पीछे ले जायें, गर्दन व सिर दोनों हाथों के बीच में रहें। नितम्ब व कमर को उठाकर तथा सिर को झुकाकर नाभि को देखें।

षष्टम स्थिति (अष्टांग नमस्कार): हाथों व पैरों के पंजों को स्थिर रखते हुए छाती व घुटनों को भूमि पर स्पर्श करें। दोनों हाथ दोनों पैर, दोनों घुटने, छाती व सिर से आठ अंग भूमि पर स्पर्श करते हैं तो यह साष्टांगासन कहलाता है। श्वास–प्रश्वास सामान्य रखें।

सप्तम स्थिति (भुजंग आसन): श्वास अंदर भरकर छाती को ऊपर उठाते हुए आसमान की ओर देखें यह भुजंगासन की स्थिति है।

अष्टम स्थिति (पर्वतासन): विधि संख्या पंचम की तरह।

नवम स्थिति (अश्व संचालनासन): विधि संख्या चतुर्थ की तरह। लेकिन इसमें बायें पैर को दोनों हाथों के बीच में रखें।

दशम स्थिति (पाद हस्तासन): विधि संख्या तृतीय की तरह।

एकादश स्थिति (हस्त उत्तासन) : विधि संख्या द्वितीय की तरह।

द्वादश स्थिति (प्रणाम आसन) : विधि संख्या प्रथम की तरह।

सूर्यनमस्कार के लाभ :

हमने 'सूर्यनमस्कार' की सभी स्थितियों के विषय में जाना। आइए, अब जानते हैं कि सूर्यनमस्कार के लाभ क्या हैं —

- सूर्यनमस्कार एक पूर्ण व्यायाम है जो संपूर्ण शरीर को पूर्ण आरोग्यता प्रदान करता है।
- यह शरीर के सभी अंगों, प्रत्यंगों को बलिष्ठ व निरोगी बनाता है।
- मेरुदण्ड व कमर को लचीला बनाता है और वहां आए विकारों को दूर करता है।
- यह उदर, आंत्र, आमाश्य, अग्न्याश्य, हृदय और फेफड़ों को स्वस्थ करता है।
- समस्त शरीर में रक्त का संचार, सुचारू रुप से करता है और रक्त की अशुद्धियों को दूर कर चर्म रोगों का विनाश करता है।
- शरीर के सभी अंगों की मांसपेशियां पुष्ट एवं सुंदर होती हैं।
- सूर्यनमस्कार बल, तेज व ओज की वृद्धि करता है, मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।

यूनिटगत प्रश्न 12.2

1. सूर्यनमस्कार से आपका क्या अभिप्राय है?

टिप्पणी

2. सूर्यनमस्कार में कुल कितनी स्थितियां हैं?

3. सूर्यनमस्कार की सप्तम स्थिति किस आसन की स्थिति है?

12.3 आसनों की श्रेणी

आपने योगासन के विषय में जाना। आइए, अब यह जानते हैं कि योगासनों को कितनी श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है ;

1. **बैठने की स्थिति में किए जाने वाले आसन**

   सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन, सिहांसन, गोमुखासन, स्वस्तिकासन, हनुमानासन, मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, **कुक्कुटासन** आदि।

2. **खड़े होने की स्थिति में किए जाने वाले आसन**

   गरुड़ासन, ताड़ासन, वृक्षासन, पाद–हस्तोत्तानासन, नटराजासन, चन्द्रासन, उत्कटआसन आदि।

3. **पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले आसन**

   उत्तानपादासन, सर्वांगासन, हलासन, कर्णपीड़ासन, बाल–गर्भासन आदि

4. **पेट के बल लेटकर किए जाने वाले आसन**

   भुजंगासन, धनुरासन, मकरासन, शलभासन आदि।

टिप्पणी

5. **खड़े होकर Twist (मोड़कर/वक्राकार) करने वाले आसन**

कटि–चक्रासन, त्रिकोणासन, तिर्यक ताड़ासन

6. **संतुलन रखने वाले आसन।**

वृक्षासन, गरुड़ासन, ताड़ासन, सर्वांगासन, शीर्षासन, मयूरासन और कुक्कुटासन

आइये, कुछ मुख्य आसनों की अभ्यास विधि एवं लाभ के विषय पर चर्चा करें –

1. **ताड़ासन**

चित्र 12.2: ताड़ासन

विधि

- खड़े होकर दोनों पैर एक साथ, हाथ की अंगुलियों को आपस में फंसाकर, पलटकर सर के ऊपर रखिए;
- सामने दीवार में एक बिंदु निश्चित कीजिए, जिसमें अपनी चेतना को केन्द्रित रखते हुए, श्वास लेते हुए, हाथों को ऊपर उठाइये; और सीधा कीजिए; एड़ी उठाते हुए पंजों के बल खड़े होने का प्रयास कीजिए;
- श्वास छोड़ते हुए धीरे–धीरे नीचे आइए। इस क्रिया को 5 बार कीजिए। खिंचाव अनुभव कीजिए, विश्राम कीजिए;
- अभ्यास के प्रभाव को जानने का प्रयास कीजिए।

टिप्पणी

2. कटि–चक्रासन

चित्र 12.3: कटि–चक्रासन

विधि

- दोनों पैरों को एक फुट तक खोलकर सीधे खड़े हो जाएं।
- दोनों हाथों को कंधे की ऊँचाई तक लाते हुए सामने ले आयें।
- इस अवस्था में दोनों हाथों की हथेलियां आमने–सामने रहेंगी।
- इसके पश्चात कमर को मोड़ते हुए बांई ओर घूमें।
- इस अवस्था में बायां हाथ मोड़कर कमर पर लगाएं और दायां हाथ आधा मोड़कर अपने वक्षस्थल पर लगाएं।
- इसी प्रकार दूसरी तरफ से इसका अभ्यास करें।

लाभ

- यह आसन भी शंख प्रक्षालन की क्रिया का महत्वपूर्ण आसन है।
- इसके अभ्यास से कमर रबड़ की तरह लचीली हो जाती है।
- कंधे, बाजू व कमर पतली हो जाती है।
- महिलाओं व मधुमेह रोगियों के लिए अच्छा आसन है।

टिप्पणी

3. सिद्धासन

चित्र 12.4: सिद्धासन

विधि

- जमीन पर दरी, चटाई अथवा कंबल बिछाकर बैठ जाएं और पैर आगे की ओर फैला लें।
- अब बायां पाँव, घुटने से मोड़ें और हाथों से पकड़ते हुए उसका तला, दाईं जंघा से मिला दें।
- इसी प्रकार दायां पांव घुटने से मोड़ें और उसे बाईं ऐड़ी के जोड़ पर, जननेन्द्रियों के समीप रखें।
- दोनों हाथ (ज्ञान मुद्रा) घुटनों पर रखें।
- कमर, गर्दन और सिर सीधा रखें।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से सभी नस–नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं।
- मस्तिष्क की एकाग्रता बढ़ती है और दिमाग तेज़ होता है।
- जोड़ों का कड़ापन (विशेषकर कमर, कूल्हे और घुटने) दूर होता है।

- मेरुदण्ड में रक्त का संचार सुगमता से होता है।

4. पद्मासन

विधि

- दाहिने पांव को बायें जांघ पर रखें;
- अब बायें पांव को उठाकर दांयी जांघ पर रखें;
- कमर, गर्दन और सिर सीधा रखें;
- दोनों हाथ ज्ञान मुद्रा में घुटनों पर रखें।

चित्र 12.5: पद्मासन

लाभ

- पाचन शक्ति बढ़ाता है;
- जोड़ों का कड़ापन दूर होता है, एकाग्रता बढ़ती है;
- इसके प्रभाव से शरीर कमल के समान खिल जाता है, यानि स्वस्थ हो जाता है।

टिप्पणी

टिप्पणी

5. वज्रासन

चित्र 12.6: वज्रासन

विधि

- दोनों पाँव घुटने से मोड़ते हुए बैठ जाएं;
- पैर का अग्र भाग नितम्ब (कूल्हे) के नीचे, इस प्रकार रखें कि ऐड़ी ऊपर की ओर रहे और दोनों पंजे आपस में मिले रहें;
- दोनों हाथ जंघा पर रखें;
- कमर और गर्दन बिल्कुल सीधा रखें;

टिप्पणी

- आँखें खुली रखें और सामने देखें;
- श्वास सामान्य रखें।

लाभ

- जिन बुर्जुगों को अपच, पेट में भारीपन और बदहज़मी की शिकायत रहती हों उन्हें यह आसन भोजन के तुरंत बाद अवश्य करना चाहिए;
- इस आसन के नियमित अभ्यास से शरीर वज्र के समान कठोर हो जाता है;
- गठिया, कमर और घुटनों के रोग के लिए यह बहुत लाभकारी है।

वज्रासन ही अकेला एक आसन है जो भोजन के तुरंत बाद किया जाता है।

6. शशांकासन

विधि

- सर्व प्रथम वज्रासन में बैठना चाहिए।
- दोनों पैरों के घुटनों को एक–दूसरे से दूर फैलाएं।
- इस प्रकार बैठें कि पैरों के अंगूठे एक–दूसरे से मिले हों।

चित्र 12.7: शशांकासन

- दोनों हथेलियों को घुटनों के बीच जमीन पर रखें।
- श्वास को बाहर छोड़ते हुए दोनों हथेलियों को सामने की ओर स्वयं से दूर ले जाएं।
- आगे की ओर झुकते हुए ठुड्डी को जमीन पर रखें।
- दोनों भुजाओं को समानांतर रखें।
- सामने की ओर देखें और इस स्थिति को बनाए रखें।
- श्वास को अंदर खींचते हुए पीछे की ओर आ जाएं।
- श्वास को बाहर छोड़ते हुए वज्रासन में वापस लौट आएं।
- पैरों को पीछे खींचकर विश्रामासन में वापस जा जाएं।

लाभ

- शशांकासन का अभ्यास तनाव, क्रोध आदि को कम करने में सहायक है।
- यह जनन अंग संबंधी व्याधि एवं कब्ज से मुक्ति दिलाता है एवं पाचन क्रिया संबंधी व्याधि व पीठ दर्द से छुटकारा दिलाता है।

टिप्पणी

सावधानियां

- अधिक पीठ दर्द में इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।
- घुटनों से संबंधित ऑस्टियोआर्थराइटिस से पीड़ित व्यक्तियों को इस अभ्यास को सावधानीपूर्वक करना चाहिए अथवा वज्रासन से बचना चाहिए।
- उच्च रक्तचाप वाले व्यक्तियों को इस आसन से परहेज करना चाहिए।

7. सिंहासन

चित्र 12.8: सिंहासन

विधि

- सांस भर कर रोकें;
- जिह्वा को अधिक–से–अधिक बाहर की ओर निकालते हुए कमर को आगे की ओर झुकाएं;
- शेर जैसी स्थिति में आने के लिए वज्रासन की स्थिति में बैठकर दोनों हथेली जमीन पर टिकाएं;
- ध्यान रहे कि आपकी गर्दन बिल्कुल सीधी हो;
- जोर से दहाड़े;

टिप्पणी

- पूर्व स्थिति में बैठ जाएं;
- इस क्रिया को तीन बार दोहराएं;
- तीन बार दोहराने के बाद गले को दोनों हाथों से मलें;
- मुंह में आई लार को अंदर निगल लें।

लाभ

- गले/कंठ के विकार दूर होते हैं;
- स्वर साफ़ व स्पष्ट होता है;
- गले की मांसपेशियां सुदृढ़ होती हैं।

8. गोमुखासन

चित्र 12.9: गोमुखासन

विधि

- बायीं टांग घुटने से मोड़कर उसी पाद तल पर बैठें और दाहिनी टांग को मोड़कर बायीं टांग पर रखें;
- दाहिनी भुजा को ऊपर से पीठ पर ऐसा मोड़ें कि उसका पिछला भाग कान को स्पर्श करे;
- कोहनी शिखा से सटी रहे;
- पीठ पर बायें हाथ से दाहिने हाथ की तर्जनी पकड़ें;

टिप्पणी

- इसी प्रकार दूसरी ओर से इसका विपरीत करें।

लाभ

- फेफड़े संबंधी बीमारियों में उपयोगी है;
- दमा तथा क्षय रोगियों को अवश्य करना चाहिए;
- इसके अलावा कंधों में मजबूती आती है;
- कोहनी, जंघा एवं घुटने, टखनों के लिए अच्छा है;
- जिनके घुटनों में दर्द रहता हो, उनको इसका अभ्यास निरंतर करना चाहिए।

9. अर्ध उष्ट्रासन

विधि

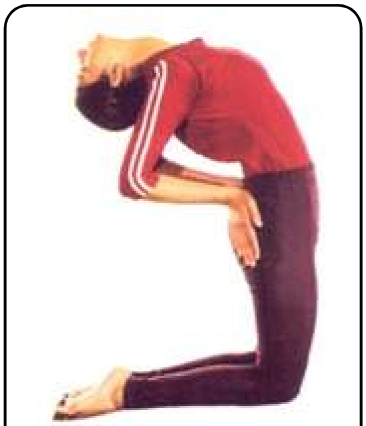

चित्र 12.10: अर्ध उष्ट्रासन

- सर्वप्रथम विश्रामासन में बैठ जाएं।
- पुनः दंडासन की स्थिति में आ जाएं।
- पैरों को मोड़ते हुए एड़ियों पर बैठ जाएं।
- जांघों को सटाकर रखें एवं अंगूठे एक–दूसरे से सटे हों।
- हाथों को घुटनों पर रखें।
- सिर एवं पीठ को बिना झुकाए सीधा रखें।
- यह स्थिति वज्रासन कहलाती है।
- घुटनों पर खड़े हो जाएं।
- हाथों को कमर पर इस प्रकार रखें कि अंगुलियां जमीन की ओर हों।
- कोहनियों एवं कंधों को समानांतर रखें।
- अब सिर को पीछे की तरफ झुकाते हुए ग्रीवा की मांसपेशियों को खींचें।
- श्वास अंदर खींचें एवं धड़ को जितना संभव हो सके झुकाएं।
- श्वास बाहर छोड़ते हुए शिथिल हो जाना चाहिए।
- पुनः जांघों को जमीन से लंबवत रखें।
- सामान्य रूप से श्वास लेते हुए इस मुद्रा में 10–30 सेंकंड तक रुकें।
- श्वास अंदर खींचते हुए सामान्य मुद्रा में वापस लौटते हुए वज्रासन में बैठ जाएं।
- पुनः विश्रामासन में शिथिल हो जाना चाहिए।

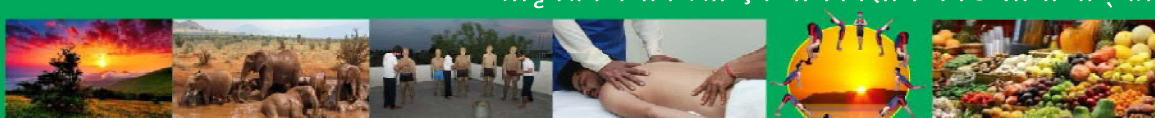

टिप्पणी

लाभ

- इस योगाभ्यास से पीठ और गर्दन की मांसपेशियां मजबूत होती हैं।
- कब्ज एवं पीठ दर्द से मुक्ति हमलती है।
- सिर एवं हृदय क्षेत्र में रक्त संचार बढ़ाता है।
- यह योगाभ्यास हृदय रोगियों के लिए अत्यंत लाभदायक है, किंतु इसका अभ्यास सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए।

सावधानियां

- हर्निया एवं उदर संबंधी गंभीर व्याधि तथा आर्थराइटिस, चक्कर आना, स्त्रियों के लिए गर्भावस्था के समय में इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

10. उष्ट्रासन

विधि

चित्र 12.11: उष्ट्रासन

- घुटनों को जमीन पर टिकाते हुए अपने दोनों पैरों के जांघ और पंजों को आपस में मिला लीजिए, पंजों को बाहर की तरफ रखते हुए जमीन पर फैला दीजिए।
- घुटनों और पंजों के बीच एक फुट की दूरी रखते हुए घुटनों के बल खड़े हो जाएं।
- श्वास लेते हुए पीछे की ओर झुकें।
- इस बात का ध्यान रखें कि पीछे झुकते समय गर्दन को झटका न लगे।
- पीछे की ओर झुकें और धीरे–धीरे दाहिने हाथ से दाहिनी एड़ी और बायें हाथ से बाईं एड़ी को पकड़ने का प्रयास करें।
- अंतिम स्थिति में जांघ को जमीन पर उर्ध्वाकार (लंबवत्) रखते हुए सिर को हल्का सा पीछे की ओर खींचकर रखें।
- यथासंभव पूरे शरीर का भार अपनी भुजाओं और पैरों पर होना चाहिए।
- इसका अभ्यास सर्वांगासन के बाद करना चाहिए इस मुद्रा में उचित लाभ होता है।

लाभ

- उष्ट्रासन दृष्टिदोष में अत्यंत लाभदायक है।
- यह पीठ और गले के दर्द से आराम दिलाता है।
- यह उदर और नितम्ब की चर्बी को कम करने में सहायक है।

टिप्पणी

- पाचन क्रिया संबंधी समस्याओं के लिए यह अत्यंत लाभदायक है।

सावधानियां

- उच्च रक्तचात, हृदय रोगी, हर्निया के मरीजों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

11. अर्धमत्स्येन्द्रासन

चित्र 12.12: अर्धमत्स्येन्द्रासन

विधि

- सर्वप्रथम सामने पैर फैलाकर बैठ जाइए। इसके पश्चात् बायें पैर को घुटने से मोड़ते हुए दाँयी तरफ से लाते हुए नितम्बों के पास स्थित करें;
- फिर दायें पैर को बायें घुटने के ऊपर से लाते हुए घुटने के पास रखें;
- ध्यान रहे कि पंजे घुटने से आगे न जाएं;
- बायें हाथ को कंधें से घुमाते हुए दाएं पैर के ऊपर से इस प्रकार से लायें कि दायें पैर का अंगूठा पकड़ लें;
- फिर दायें हाथ को पीछे से घुमाते हुए नाभि को स्पर्श करने का प्रयत्न करें;
- ठीक इसी प्रकार विपरीत दिशा में भी करें।

लाभ

- यह आसन विशेष रूप से मधुमेह के रोगियों के लिए उपयोगी है।

टिप्पणी

- इसके निरंतर अभ्यास से पेन्क्रियाज ग्लेण्ड की मसाज हो जाती है जिससे इंसुलिन बनने लगती है जो कि मधुमेह के रोगियों के लिए अति आवश्यक है;
- इससे पेट के आंतरिक अवयवों की भी अच्छी तरह मसाज हो जाती है, जिससे वे भी अच्छी तरह कार्य करने लगते हैं;
- अपच को दूर करता है;
- कब्ज, वायु विकार आदि रोग इसके निरंतर अभ्यास से दूर होते हैं;
- पेट में कई प्रकार के कृमि और कीड़े होते हैं, इसके निरंतर अभ्यास से ये कृमि और कीड़े अपने आप ही मर जाते हैं;
- इसके अलावा, कमर लचीली व पतली हो जाती है और पेट पर से अत्यधिक चर्बी कम हो जाती है।

12. पश्चिमोत्तानासन

चित्र 12.13: पश्चिमोत्तानासन

विधि

- दोनों पैरों को सामने लाते हुए बैठ जाएं।
- दोनों एड़ी पंजे मिले रहेंगे, तत्पश्चात सांस छोड़ते हुए आगे झुकते हुए दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़ लें;
- अब माथे को घुटनों से लगाएं व दोनों कोहनियां जमीन पर लगाएं।

लाभ

- इस आसन के निरंतर अभ्यास से मेरुदंड लचीला होता है।
- रक्त संचार भली–भांति होता है;
- इसके अभ्यास के समय कमर व पिंडलियों की मांसपेशियों में खिंचाव आता है जिसके शरीर का निचला हिस्सा भारी होता है, उन्हें इसका निरंतर अभ्यास करना चाहिए;

टिप्पणी

- कमर पतली तथा सुडौल होती है;
- यह आसन चर्मरोग व शारीरिक दुर्गन्ध को दूर करता है;
- चेहरा कांतिमान एवं जठराग्नि प्रदीप्त होती है;
- इसके अभ्यास से पेट के कीड़े (कृमि) मर जाते हैं;
- रक्त की शुद्धि होती है।

नोट —यह आसन कमर दर्द व गर्दन दर्द वालों को नहीं करना चाहिए।

13. शवासन

चित्र 12.14: शवासन

विधि

- सर्वप्रथम पीठ के बल लेट जाना चाहिए।
- हाथों और पैरों को आरामदायक स्थिति में फैलाकर रखें।
- आंखें बंद होनी चाहिए।
- पूरे शरीर को अचेतन अवस्था में शिथिल छोड़ दें।
- नैसर्गिक श्वास—प्रश्वास प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित करें।

  इस अवस्था में तब तक रहें, जब तक कि पूर्ण विश्रान्ति एवं चित शान्त न हो जाए।

लाभ

- सभी प्रकार के तनावों से मुक्त करता है।
- शरीर तथा मस्तिष्क दोनों को आराम प्रदान करता है।
- पूरे मन तथा शरीर तंत्र को विश्राम प्रदान करता है।

टिप्पणी

- बाहरी दुनिया के प्रति लगातार आकर्षित होने वाला मन अंदर की ओर गमन करता है। इस तरह धीरे–धीरे महसूस होता है कि मस्तिष्क स्थिर हो गया है।

  अभ्यासकर्ता बाहरी वातावरण से अलग होकर शांत बना रहता है।
- तनाव एवं इसके परिणामों के प्रबंधन में यह बहुत लाभदायक होता है।

14. उत्तानपाद आसन

विधि

- जमीन पर आराम से लेट जाएं, पैरों की स्थिति सीधी हो और हाथों को बगल में रखें।
- श्वास लेते हुए घुटनों को बिना मोड़े धीरे–धीरे अपने दोनों पैरों को ऊपर उठाएं और 30 डिग्री का कोण बनाएं।
- सामान्य रूप से श्वास लेते हुए इस अवस्था में कुछ देर ठहरें।

चित्र 12.15: उत्तानपाद आसन

- श्वास छोड़ते हुए धीरे–धीरे अपने दोनों पैरों को नीचे लाएं और जमीन पर रखें।
- इस आसन को एक बार और दोहराएं।

लाभ

- यह आसन नाभि केंद्र (नाभिमणिचक्र) में संतुलन स्थापित करता है।
- यह उदर पीड़ा, वाई (उदर–वायु), अपच और अतिसार (दस्त) को दूर करने में सहायक होता है।
- यह उदर की मांसपेशियों को मजबूती प्रदान करता है।
- यह आसन घबराहट और चिंताओं से उबरने में सहायक है।
- यह श्वसन क्रिया को उन्नत करता है और फेफड़े की क्षमता में वृद्धि करता है।

सावधानियां

- गहरे तनाव से पीड़ित मरीज बिना श्वास रोके बारी–बारी से अपने पैरों का उपयोग करते हुए इस आसन का अभ्यास करें।

टिप्पणी

15. अर्धहलासन

चित्र 12.16: अर्धहलासन

विधि

- उत्तान अवस्था में बैठ जाएं, दोनों हाथ जांघों के बगल में रखें और हथेलियां जमीन पर हों।
- घुटने को बिना मोड़े अपने पैरों को धीरे–धीरे ऊपर उठाएं और 30 डिग्री पर लाकर रोक दें।
- थोड़ी देर इसी अवस्था में बने रहें, कुछ देर बाद पुनः पैरों को धीरे–धीरे ऊपर उठाएं और 60 डिग्री पर रोक दें।
- इसके बाद थोड़ा रुककर पुनः पैरों को ऊपर उठाते हुए 90 डिग्री पर लाकर रोक दें, यह हलासन की उचित मुद्रा है।
- इस अवस्था में नितंब से कंधे की स्थिति खींची हुई रहेगी।

  इस अवस्था में तब तक रहें जब तक आप रह सकते हैं।

  अपने पैरों को 90 डिग्री की स्थिति से धीरे–धीरे वापस जमीन पर लाएं। ध्यान रहे वापसी की स्थिति में सिर जमीन से ऊपर न उठे।

लाभ

- यह आसन बदहज़मी और कब्ज़ियत से छुटकारा दिलाता है।
- यह आसन मधुमेह, बवासीर और गले संबंधी समस्याओं से छुटकारा दिलाने में सहायक है।

टिप्पणी

- यह आसन गहरे तनाव से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए अत्यंत लाभदायक है, परंतु उन्हें बड़ी सावधानीपूर्वक यह आसन करना चाहिए।

सावधानियां

- पीठ के निचले हिस्से के दर्द से पीड़ित व्यक्तियों को दोनों की सहायता से इस आसन को नहीं करना चाहिए।
- उदर में जख्म होने, हर्निया आदि से पीड़ित व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

16. सर्वांगासन

चित्र 12.17: सर्वांगासन

विधि

- कमर के बल फर्श पर सीधा लेट जाएं।
- श्वास भरते हुए, धीरे–धीरे दोनों पैर एक साथ उठाएं।
- इसी अवस्था में धीरे–धीरे कूल्हे और कमर को उठाने की भी चेष्टा करें, जब तक कि पाँव बिल्कुल सीधे न हो जाएं।

टिप्पणी

- कमर दोनों हाथों से पकड़ कर रखें।
- श्वास छोड़ते हुए धीरे–धीरे पैर वापस नीचे ले आएं।

लाभ

- यह आसन मस्तिष्क की ओर रक्त संचार बढ़ाता है। जिससे स्मरण शक्ति बढ़ती है। मानसिक विकार ठीक होते हैं।
- मेरुदंड को लचीला बनाता है और अधिक समय तक युवावस्था कायम रखने में मदद करता है।
- पेट की चर्बी कम करता है और कमर और कूल्हे सुडौल बनाता है।

हृदय रोगियों, स्पॉन्डिलाइटिस (spondylitis) और उच्च एवं निम्न रक्तचाप के रोगियों के लिए यह आसन उपयुक्त नहीं है।

मुख्य आसनों का वर्णन नीचे किया जा रहा है –

17. शीर्षासन

चित्र 12.18: शीर्षासन

विधि

- जमीन पर बैठकर हाथों व कोहनियों को एक–दूसरे से मिलाकर रखें।
- दोनों हाथों की अंगुलियां एक–दूसरे से इंटरलॉक हों और सिर दोनों हथेलियों के बीच रखकर कोहनियों का एक स्टैंड बनाएं।

टिप्पणी

- अब धीरे–धीरे शरीर को ऊपर उठाएं और पूरा शरीर खड़ा कर दें।
- शरीर का सारा भार बांहों और कोहनियों पर रखें।
- आंख अधखुली रखें। शीर्षासन साधने में महीने और साल भी लग सकते हैं। इसे किसी अनुभवी योगाचार्य से सीखकर ही करना चाहिए।
- इसके गलत अभ्यास से विभिन्न प्रकार के रोग हो सकते हैं।
- यदि दोनों नासिका बंद हों तो शीर्षासन नहीं करना चाहिए।
- यह हृदय रोगियों और कब्ज वालों को नहीं करना चाहिए।

लाभ

- शीर्षासन आसनों का राजा है। इस आसन से सभी रोग प्रभावित होते हैं।
- रक्त संचार ठीक करता है।
- नेत्र संबंधी दोष, बाल पकना, बाल झड़ना, प्रमेय, स्त्रियों के मासिक धर्म संबंधी बीमारियों के लिए विशेष लाभदायक है।
- नजला–जुकाम और मस्तिष्क संबंधी रोग ठीक हो जाते हैं।
- पागलपन भी ठीक हो जाता है। इससे चेहरे पर कांति तथा नेत्रों में तेज आ जाता है। इस आसन के बाद शवासन अवश्य करें।

18. मकरासन

चित्र 12.19: मकरासन

विधि

- जमीन पर पेट के बल लेट जाएं।
- दोनों हाथों की हथेलियों को एक–दूसरे के नीचे ऊपर सामने जमीन पर टिकाएं या सिर की तरफ ले आएं व ऊपर ठोड़ी या माथे को टिका दें।

टिप्पणी

- दोनों पैरों को 60–90 सें.मी. का अंतर देते हुए खोल दें।

नोट – ध्यान रहे कि दोनों एड़ियों की दिशा अंदर की तरफ आमने–सामने होगी।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से थकान दूर होती है।
- पेट के लिए भी यह आसन अच्छा होता है।
- इससे शरीर के अंदर सूक्ष्म शक्ति की वृद्धि होती है और संपूर्ण शरीर मकर के समान ही दृढ़ हो जाता है।
- इसके अभ्यास से मन में नम्रता का भाव अधिक उत्पन्न होता है।
- इस आसन के अभ्यास से मानसिक एवं शारीरिक थकान दूर होती है।

19. भुजंगासन

चित्र 12.20: भुजंगासन

विधि

- जमीन पर सीधा लेट जाएं और अपना मुंह नीचे, जमीन की ओर रखें।
- दोनों पाँव मिलाकर रखें और हथेली जमीन पर कंधों के पास रखें।
- श्वास भरते हुए, हथेली से जमीन पर दबाव डालते हुए नाभि से ऊपर का भाग, जहां तक संभव हो उठाएं।

टिप्पणी

- अपनी गर्दन और कमर पीछे की ओर ले जाएं।
- श्वास छोड़ते हुए सामान्य अवस्था में आएं।

लाभ

- इस आसन से कमर दर्द दूर होता है और कमर के दूसरे रोगों (cervical, lumbar spondylitis) में लाभ मिलता है।
- पेट के रोग जैसे कब्ज, अपच, वायु—विकार दूर होते हैं और भूख बढ़ती है।
- इससे मोटापा भी दूर होता है।
- मेरुदण्ड सशक्त होता है।

नोटः हर्निया के रोगी को इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

20. धनुरासन

चित्र 12.21: धनुरासन

विधि

- पेट के बल लेट जाएं;
- सिर धीरे—धीरे ऊपर की ओर उठाते हुए दोनों हाथों से अपने पैरों के पंजों को पकड़ें;
- धीरे—धीरे अब अपने शरीर को धनुष की आकृति में तानें;
- जितना आसानी से धनुषकार हो सकते हैं, उतना करने का प्रयास करें।

लाभ

- कमर दर्द, सरवाइकल, स्पॉन्डिलाइट्स (spondylitis) में लाभ मिलता है;
- पेट के रोग दूर होते हैं;

टिप्पणी

- मोटापा दूर करता है। मेरूदण्ड को सुदृढ़ एवं लचीली बनाता है।

21. शलभासन

चित्र 12.22: शलभासन

विधि

- जमीन पर पेट के बल लेट जाएं और अपना माथा जमीन से लगाएं।
- दोनों हाथ धड़ के साथ और जंघाओं के नीचे रखें।
- दोनों पाँव मिला लें।
- श्वास भरते हुए धीरे—धीरे दायाँ पाँव उठाएँ और श्वास बाहर निकालते हुए वापस जमीन पर ले आएं।
- इसी प्रकार बाएं पाँव से करें (एकपादशलभासन)।
- बाद में यही क्रिया दोनों पैरों से एक साथ करें (द्विपादशलभासन)।

लाभ

- यह आसन कमर और मेरुदंड को लचीला बनाता है और छाती चौड़ी होती है।
- इससे भूख बढ़ती है और पेट के कई रोग जैसे गैस, अम्लता, भूख न लगना, अपच, पेट में गड़गड़ाहट होना आदि दूर होते हैं।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से नाभि अपनी जगह रहती है।
- इससे पेट, जंघा और पैरों की मांस—पेशियां सशक्त होती हैं।
- इससे जलोदर रोग (Dropsy) ठीक हो जाता है और भगंदर (fistula) रोग में भी लाभ होता है।

22. नौकासन

चित्र 12.23: नौकासन

विधि

- पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को सिर से आगे लाकर आपस में मिला लें।
- दोनों एड़ी पंजे आपस में मिले रहेंगे।
- इसके पश्चात् धीरे–धीरे सांस लेते हुए शरीर के आगे के हिस्से और पैरों को इतना ऊपर ले जाएं कि शरीर का पूरा भार पेट पर आ जाएं।
- इस अवस्था में शरीर नौका के समान दिखाई देगा, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

लाभ

- इसके निरंतर अभ्यास से नस–नाड़ियों में रक्त प्रवाह तेज हो जाता है।
- मांसपेशियाँ आदि लचीली हो जाती हैं।
- फेफड़ों में ऑक्सीजन का प्रवाह अत्यधिक मात्रा में होता है। जिससे श्वास संबंधी बीमारियां दूर होती हैं।
- कमर दर्द व गर्दन दर्द वालों के लिए यह उत्तम आसन है।
- इसके निरंतर अभ्यास से पेट की अत्यधिक चर्बी कम हो जाती है।
- शरीर हल्का व फुर्तीला हो जाता है।

नोट : अल्सर, कोलाइटिस के रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

टिप्पणी

23. मयूरासन

चित्र 12.24: मयूरासन

विधि

- दोनों एड़ी पंजे मिलाकर दोनों घुटनों को फैलाकर घुटनों को जमीन पर रखते हुए एड़ी पर बैठ जाएं।
- फिर दोनों हाथों के बीच चार अंगुल का अंतर रखते हुए हथेलियों को जमीन पर घुटनों के पास स्थित करें।
- दोनों कोहनियों को आपस में मिलाते हुए नाभि स्थान पर रखें।
- फिर थोड़ा आगे झुकते हुए दोनों पैरों को जमीन से ऊपर उठा दें।

नोटः इस अवस्था में संपूर्ण शरीर का भार पेट पर रहेगा। धीरे–धीरे शरीर का संतुलन बनाते हुए दोनों पैरों को सीधा करें तथा सामने की ओर देखें।

लाभ

- इस आसन के निरंतर अभ्यास से अपच, कब्ज और वायु विकार की शिकायत दूर हो जाती है।
- पेट के आंतरिक अवयवों की अच्छी मसाज हो जाती है।
- भूख तेज हो जाती है।
- अधिक गरिष्ठ अन्न को भी आसानी से पचा लेने की क्षमता आ जाती है।

टिप्पणी

24. कुक्कुटासन

चित्र 12.25: कुक्कुटासन

विधि

- सर्वप्रथम पद्मासन लगा लें। तत्पश्चात दोनों हाथों की जंघाओं और दोनों पांव की पिंडलियों के बीच से इतना बाहर निकाल लें कि कोहनी का हिस्सा बाहर आ जाए।
- दोनों हाथों को जमीन पर लगा दें और हाथों के बल सारे शरीर को उठा लें। इसका यथासंभव अभ्यास करें।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से शरीर के ऊपरी हिस्से जैसे हाथों की अंगुलियां, कलाई, बाजू, कोहनियों एवं कंधों में असीम बल आ जाता है।
- इससे शरीर में मजबूती व दृढ़ता आती है।
- इसके निरंतर अभ्यास से भूख बहुत बढ़ती है।
- इसके अभ्यास से कुक्कुट (मुर्गे) की भांति प्रातःकाल ही निद्रा खुल जाती है।
- लिखते समय जिनके हाथों में कंपन हो अथवा थक जाते हों, उन्हें भी यह आसन बहुत हितकर है।

टिप्पणी

25. गरुड़ासन

चित्र 12.26: गरुड़ासन

विधि

- सीधे खड़े होकर बाएं पैर की जंघा को दाएं पैर की जंघा पर रखते हुए घुटनों और पिंडलियों से एक पैर को दूसरे पैर पर लपेट लें;
- तत्पश्चात सीने के सामने दोनों बाजुओं को लाते हुए बांईं भुजा को दाईं भुजा पर रखते हुए आपस में लपेट लें;
- इस अवस्था में दोनों हाथ गरुड़ की चोंच के समान बन जाएंगे;
- फिर धीरे–धीरे नीचे झुकते हुए पैर के पंजों को जमीन पर रखने का प्रयत्न करें।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से जोड़ों का दर्द ठीक हो जाता है;
- गठिया के रोगियों को इसका अभ्यास नियमित करना चाहिए;
- जिनके शरीर में कंपन होती हो, उन्हें और पतले व्यक्तियों को इसके अभ्यास से लाभ मिलता है;
- इसके अभ्यास से बढ़ा हुआ अण्डकोष ठीक हो जाता है।

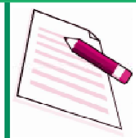
टिप्पणी

26. पवनमुक्तासन

चित्र 12.27: पवनमुक्तासन

विधि

- सर्वप्रथम पीठ के बल लंबवत् लेटना चाहिए;
- दोनों घुटनों को मोड़ते हुए जांघों को वक्ष के ऊपर ले जाएं;
- दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में गूंथते हुए पैरों को पकड़ लें;
- ठुड्डी को घुटनों के नीचे ले जाएं;
- श्वास बाहर छोड़ते हुए सिर को तब तक ऊपर उठाएं जब तक कि ठुड्डी घुटनों से नहीं लग जाए। कुछ समय तक इस स्थिति में रुकें;
- यह अभ्यास पवनमुक्तासन कहा जाता है;
- सिर को वापस जमीन पर ले आएं;
- श्वास बाहर छोड़ते समय पैरों को जमीन पर ले आएं;
- अभ्यास के अंत में शवासन में आराम करें।

ध्यातव्य

- पैरों की गतिविधि के अनुसार श्वास–प्रश्वास को एक लय में लाना चाहिए।
- घुटनों को ललाट से स्पर्श करते हुए अनुभव करना चाहिए कि कटि प्रदेश में खिंचाव हो रहा है;
- आंखें बंद रखनी चाहिए और ध्यान कटि प्रदेश पर होना चाहिए।

टिप्पणी

लाभ

- कब्जियत दूर करता है;
- वात से राहत दिलाता है और उदर के फुलाव को कम करता है;
- पाचन क्रिया में भी सहायता करता है;
- गहरा आंतरिक दबाव डालता है, श्रोणि और कटिक्षेत्र मे मांसपेशियों, लिंगामेंट्स और स्नायु की अति जटिल समस्याओं का निदान करता है और उनमें कसावट लाता है;
- यह पीठ की मांसपेशियों और मेरु के स्नायुओं को सुगठित बनाता है।

सावधानियां

- उदर संबंधी व्याधि, हर्निया, साइटिका या तीव्र पीठ दर्द तथा गर्भावस्था समय इस अभ्यास को न करें।

27. चक्रासन

चित्र 12.28: चक्रासन

विधि

- जमीन पर पीठ के बल लेटकर दोनों पैरों को नितम्बों के साथ सटाकर जमीन पर रखें;
- फिर दोनों हाथों की दोनों हथेलियों को कंधों के पीछे रखें;
- शरीर का बीच का हिस्सा (कमर को) ऊपर उठा दें;
- शरीर का पूरा भार दोनों हाथों और दोनों पैरों पर समान रूप से पड़ेगा;
- थोड़ी देर इसी स्थिति में रहकर वापस सीधा लेट जाएं;

टिप्पणी

नोट : शरीर को ऊपर उठाते समय गर्दन को ढीला छोड़ें अन्यथा गर्दन में मोच आने का डर रहेगा। आसन में स्थित होने पर भी गर्दन को ढ़ीला छोड़कर रखें जिससे कि वह नीचे की ओर झूलती रहे।

लाभ

- इस आसन को करने से मनुष्य का यौवन बना रह सकता है।
- इसका सीधा प्रभाव मेरूदंड पर पड़ता है, जिससे शरीर में इतना लचीलापन आता है कि शरीर रबड़ के समान हो जाता है।
- नाभि –मंडल भी स्वतः ही अपने स्थान पर आ जाता है।
- शरीर के अंदर 72864 नाड़ियों में स्थिरता आती है।
- कमर सुंदर तथा आकर्षक बनती है।

नोट : इस आसन का अभ्यास धीरे–धीरे करना चाहिए।

28. सुप्तवज्रासन

चित्र 12.29: सुप्तवज्रासन

विधि

- सबसे पहले वज्रासन में बैठ जाएं;
- फिर दोनों हाथों की हथेलियों को कमर के पीछे जमीन पर रखें;
- इसके पश्चात् बाजू की कोहनियों को मोड़ते हुए धीरे–धीरे पीछे लेट जाएं;
- कंधे व गर्दन जमीन पर लग जाएंगे। तत्पश्चात् दोनों हाथों की हथेलियों को मोड़ते हुए दोनों कंधों के नीचे रखें;

टिप्पणी

- फिर धीरे–धीरे सिर को ऊपर की तरफ इस तरह उठाएं कि चोटी वाला हिस्सा जमीन पर लग जाए;
- वापस आते हुए दोनों हाथों को दोनों जंघाओं पर रखें। इस अवस्था में दोनों घुटने आपस में मिले रहेंगे।

लाभ

- इसके निरंतर अभ्यास से छाती चौड़ी व कमर पतली होती है। श्वास संबंधी बीमारी जैसे दमा, ब्रोंकाइटिस के लिए यह अच्छा आसन है।
- इसके अभ्यास के समय फेफड़े पूरी तरह फूलते हैं, जिससे फेफड़े की सांस लेने की क्षमता दुगुनी हो जाती है।
- इससे गले के अंगों की मसाज हो जाती है।
- जिन व्यक्तियों के पेट पर अत्यधिक चर्बी होती है, कमर मोटी होती है उन्हें इसका धीरे–धीरे निरंतर अभ्यास करना चाहिए।
- रक्त प्रवाह सुचारू रूप से होता है और रक्त की शुद्धि होती है।
- शरीर में हल्कापन आता है।
- जिनकी नाभि अपने स्थान से हट जाती है, इसके निरंतर अभ्यास से हटी हुई नाभि अपने स्थान पर आ जाती है।

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आपने सीखा कि शुद्धिकरण के बाद आसनों का अभ्यास शारीरिक स्थिरता एवं दृढ़ता के लिए किया जाता है। यहां दृढ़ता का अर्थ है – शरीर का स्थिर होना। महर्षि पतंजलि द्वारा 'योग दर्शन' में आसन की बहुत ही सरल व्याख्या की गई है –

'स्थिर सुखमासनम्। (योग 2/46)

अर्थात सुखपूर्वक, स्थिरता से, बहुत समय तक एक ही शारीरिक स्थिति में रहना 'आसन' कहलाता है।

योगी बनने के लिए योग के प्रथम अंग–यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह) और द्वितीय अंग नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान) का पालन करना अति आवश्यक हैं। इसके बाद ही अगले अंगों में जाना चाहिए।

टिप्पणी

घेरण्ड ऋषि ने आसनों के बारे में लिखा है –

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीव–जन्तवः।
चतुरशीति लक्षानि शिवेनाभिहिलानि च।।
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासन शुभम।।

अर्थात् संसार में जितने जीवों की योनियां हैं उतने ही आसन हैं। जीवयोनियां 84 लाख मानी गई हैं अतः आसन भी 84 लाख हैं। इनमें 84 आसन श्रेष्ठ माने गये हैं। इनमें भी 32 आसन अति विशिष्ट और अधिक शुभ समझने चाहिए।

सूर्य नमस्कार निश्चित योगासनों का एक समूह है जिसे एक निश्चित क्रम में किया जाता है। सूर्य नमस्कार में कुल 12 स्थितियां होती हैं।

साथ ही हमने विभिन्न मुख्य–मुख्य योगासनों की अभ्यास विधि एवं उनके लाभ के बारें में जाना।

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए योगासन बहुत लाभदायक है। आसनों से ग्रंथियों, पेशियों, अस्थिबन्धों और स्नायु का व्यायाम होता है जिससे वे स्वस्थ रहते हैं। यौगिक क्रियाओं और आसनों का लक्ष्य इस भौतिक शरीर को आत्मा के निवास के लिए उपयुक्त स्थल बनाना है।

यूनिटांत प्रश्न

1. आसन क्या है? सूर्य नमस्कार का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।
2. योगासनों को कितनी श्रेणियों में बांटा गया है। सभी की संक्षिप्त में विवेचना कीजिए।
3. किन्हीं पांच आसनों की क्रियाविधि एवं उनके लाभों पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

12.1

1. *'स्थिर सुखमासनम्। (यो0 द0 2/46)*

टिप्पणी

2. यौगिक क्रियाएं – स्थाई न होकर लगातार करने की क्रियाएं हैं जिन्हें अपनी रूचि, सामर्थ्य एवं क्षमता के अनुसार करना चाहिए। जबकि आसन में किसी भी विशेष मुद्रा व स्थिति एवं अवस्था में पहुंचना और निश्चित समय के लिए स्थिर होकर बिना कष्ट के रहना होता है।

3. संपूर्ण शरीर में ऊर्जा का संचार करता है।

12.2

1. सूर्यनमस्कार निश्चित योगासनों का एक समूह है जिसे एक निश्चित क्रम में किया जाता है।

2. 12

3. भुजंगासन की।

13

प्राणायाम

पिछली यूनिट में आप अष्टांग योग के तृतीय चरण–योगासन के विषय में पढ़ चुके हैं। अष्टांग योग का चौथा चरण है 'प्राणायाम'। आसन और योग क्रियाएं करने के पश्चात् प्राणायाम करने की इच्छा होना स्वाभाविक है। जिस प्रकार आसन आदि करने से पहले कुछ सावधानियाँ आवश्यक हैं; उसी प्रकार प्राणायाम करने से पहले भी कुछ सावधानियाँ अति आवश्यक हैं। हम योगासनों का अभ्यास अपनी क्षमता तथा अवस्था के अनुरूप करते हैं, प्राणायाम भी अपनी क्षमता के अनुसार करना चाहिए क्योंकि गलत ढंग से प्राणायाम करने पर हमें लाभ की अपेक्षा हानि हो सकती है और हम अस्वस्थ हो सकते हैं। इस अध्याय में हम प्राणायाम के स्वरूप पर चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- प्राणायाम का अभिप्राय स्पष्ट कर सकेंगे;
- प्राणायाम के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे;
- प्राणायाम, के महत्व तथा लाभ का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे।

टिप्पणी

13.1 प्राणायाम

महर्षि पतंजलि के अनुसार 'श्वास और प्रश्वास' की गति का विच्छेद ही प्राणायाम है। जब श्वास–प्रश्वास अनुशासित होकर निग्रह की स्थिति में पहुंचता है, तब प्राणायाम की पूर्णता होती है। सरल शब्दों में प्राणायाम को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि ''प्राण तथा अपान का योग प्राणायाम है अर्थात् श्वास–प्रश्वास पर नियमन तथा नियंत्रण प्राणायाम कहलाता है।

प्राणायाम शब्द का अर्थ है – प्राणिक ऊर्जाओं का नियंत्रण। यह उस प्रााणिक ऊर्जा का नियंत्रण है जो लोगों के स्नायुओं में सनसनाती, उसकी मांसपेशियों का संचालन करती तथा उसके बाहरी जगत का अनुभव करने और आंतरिक विचारों को सोचने का कारण बनती है। प्राणायाम के द्वारा इस ऊर्जा पर नियंत्रण पाना ही योगियों का लक्ष्य है।

आसनों के अभ्यास से आप स्थूल शरीर को वश में कर सकते हैं जबकि प्राणायाम के अभ्यास से आप सूक्ष्म शरीर को वश में कर सकते हैं। श्वास तथा प्राणिक नाड़ियों के बीच गहरा संबंध है। अतः श्वास के नियंत्रण से प्राणिक प्रवाहों पर भी नियंत्रण हो जाता है।

चित्र 13.1: प्राणायाम हेतु पद्मासन

जिस प्रकार सोने को गरम भट्ठी में तपाकर उसकी गंदगी को दूर कर दिया जाता है, ठीक उसी तरह योग साधक, प्राणायाम के व्यवहार से अपने शरीर तथा इन्द्रियों के मल–विकारों का निवारण करता है।

> प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य है प्राण तथा अपान को संयुक्त करना तथा इस संयुक्त प्राण–अपान को धीरे–धीरे मस्तक की ओर ले जाना। शरीर के भीतर सुप्त शक्तियों को जागृत करना प्राणायाम का फल है।

टिप्पणी

महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के परिणाम की चर्चा करते हुए लिखा है – *''ततः क्षीयते प्रकाशावरणम''* अर्थात् प्राणायाम द्वारा प्रकाश पर आया आवरण क्षीण हो जाता है। हम कह सकते हैं कि चेतना जागृत होती है। चित्त की निर्मलता बढ़ती है, ज्ञान का विकास होता है। इंद्रियां शुद्ध होती हैं और मन की प्रसन्नता व एकाग्रता बढ़ती है। प्राणायाम से शक्ति का संचयन होता है, जठराग्नि की वृद्धि, शरीर में स्फूर्ति आती है और वह दीप्तिमान और स्वस्थ होता है।

13.1.1 प्राण का स्वरूप

प्राण विश्व में अभिव्यक्त सभी शक्तियों का योग है। ताप, प्रकाश, विद्युत, चुम्बकत्व – ये सभी प्राण की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। सारी भौतिक तथा मानसिक शक्तियाँ प्राण की ही श्रेणी में आती हैं। यह वह शक्ति है जो हमारी सत्ता के उच्चतम से निम्नतम स्तर तक प्रत्येक तल में विद्यमान है। जो कुछ भी गतिशील अथवा कार्यशील है अथवा जिसमें जीवन है, वह सभी प्राण के ही स्वरूप में अभिव्यक्त है।

प्राण का स्थान हृदय है। प्राण का प्राकृतिक स्वरूप एक है, परन्तु कार्य के अनुसार इसके पाँच रूप हैं –

1. प्राण
2. अपान
3. समान
4. उदान
5. व्यान

प्रधान प्राण महाप्राण कहलाता है। इन पाँचों में प्राण तथा अपान ही महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। प्राण का स्थान हृदय है, अपान का स्थान गुदा है, समान का स्थान नाभि है, उदान का स्थान कण्ठ है तथा व्यान सारे शरीर में व्याप्त है।

जैसा कि आप जान चुके हैं कि श्वास–प्रश्वास पर नियमन तथा नियंत्रण प्राणायाम है। श्वास–प्रश्वास के संचालन को योग की भाषा में इस प्रकार वर्णित किया गया है।

1. **रेचक** : श्वास को नासिका से बाहर निकालकर उसकी स्वाभाविक गति पर नियंत्रण करना रेचक कहलाता है। यह प्रश्वास है।
2. **पूरक** – श्वास को नासिका से अंदर खींच कर उसकी स्वाभाविक गति पर नियंत्रण करना पूरक कहलाता है। यह श्वास है।
3. **कुम्भक** – श्वास–प्रश्वास दोनों गतियों पर नियंत्रण से प्राण को जहाँ–का–तहाँ रोक देना कुम्भक कहलाता है। कुम्भक आयु को बढ़ाता है। इससे आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता है।

टिप्पणी

13.1.2 प्राणवाही नाड़ियां

मेरुदंड के दोनों ओर दो नाड़ियां पायी जाती हैं जिनसे प्राण का संचार होता है। इनमें बांयीं नासिका से संबंधित नाड़ी को 'इड़ा' कहते हैं, इसे चन्द्र नाड़ी भी कहा जाता है। दाहिनी नासिका से संबंधित नाड़ी को 'पिंगला' कहते हैं, इसे सूर्य नाड़ी भी कहते हैं। इड़ा का स्वभाव शीतल तथा पिंगला का स्वभाव गरम है। इड़ा तथा पिंगला से जब श्वास चलती है तब मनुष्य सांसारिक कार्यों तथा मान्यताओं को पूरा करने में व्यस्त रहता है, यही उसकी दिनचर्या का मुख्य भाग होता है।

इन दो प्राणवाही नाड़ियों के अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण नाड़ी है – सुषुम्ना। वैसे तो मनुष्य के शरीर में कुल 72000 नाड़ियों का जाल बिछा हुआ है। सुषुम्ना मेरुदंड के मध्य से होकर जाती है। अन्य सभी नाड़ियाँ सुषुम्ना से संबंध रखती हैं।

इस प्रकार हमारे शरीर में सबसे मुख्य तथा महत्वपूर्ण तीन प्राणवाही नाड़ियां हैं

प्राणवाही नाड़ियाँ (मुख्य)

इड़ा (चन्द्रनाड़ी) | पिंगला (सूर्य नाड़ी) | सुषुम्ना नाड़ी

इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना तीनों प्राणवाहिनी नाड़ियों का सीधा संबंध क्रमशः चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि से है। जब प्राण सुषुम्ना से संचरित हो, तो ध्यान के लिए बैठ जाना चाहिए। आप ध्यान की गहराई में प्रवेश कर जायेंगे।

ईश्वर की कृपा से हमें यह स्वचालित रूप से चलने वाला यंत्र मिला हुआ है। जब हमारे शरीर में उष्णता की आवश्यकता होती है, तब दायीं नासिका से श्वास आने लगता है और जब हमारे शरीर में ठण्डक की आवश्यकता होती है तो बायीं नासिका से श्वास आने लगती है। इस स्वचालित यंत्र को हम अपनी इच्छा और आवश्यकतानुसार भी उपयोग में ला सकते हैं।

13.1.3 प्राणायाम करने की क्रिया विधि

प्राणायाम करने से पहले प्राणायाम साधना के कुछ महत्वपूर्ण निर्देश जानना अति आवश्यक है –

महत्वपूर्ण निर्देश

1. प्राणायाम से पहले अपनी नासिकाओं को अच्छी तरह से साफ कर लें।
2. पद्मासन, सुखासन, स्वस्तिकासन, वज्रासन आदि किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठें।
3. स्थिरतापूर्वक मेरुदंड को सीधा रखें और सुखपूर्वक पूरे आत्मविश्वास के साथ बैठें।
4. जो प्राणायाम शरीर में गर्मी उत्पन्न करते हैं – उन्हें गर्मियों में न करें। इसी प्रकार जो शरीर में शीतलता लाते हैं – उन्हें सर्दियों में न करें।

टिप्पणी

5. दमा, उच्च रक्तचाप तथा हृदय रोग से पीड़ित रोगी अपनी अपनी सीमाओं व क्षमताओं का ध्यान रखते हुए प्राणायाम करें। यह अच्छा होगा कि प्राणायाम का अभ्यास किसी योग शिक्षक के मार्गदर्शन में करें।
6. प्राणायाम में ब्रह्मचर्य का विशेष महत्व है।

यूनिटगत प्रश्न 13.1

1. महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के परिणाम की चर्चा करते हुए क्या लिखा है?

   ....

   ....

   ....

2. प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य क्या है?

   ....

   ....

3. शरीर में सबसे महत्वपूर्ण एवं मुख्य तीनों नाड़ियों के नाम बताइए।

   ....

   ....

13.2 प्राणायाम के प्रकार

साधना के प्राचीन ग्रंथ *घेरण्ड संहिता* में प्राणायाम के संबंध में लिखा है –

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका, भ्रामरी मूर्छा केवली, चाष्टकुम्भकाः।। घे.सं.

अर्थात आठ प्रकार के प्राणायामों का उल्लेख घरेण्ड संहिता में मिलता है।

हठयोग प्रदीपिका में प्राणायाम का निम्न प्रकार उल्लेख किया है –

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा भस्त्रिका, भ्रामरी मूर्च्छा प्लावनी इत्यष्टकुम्भकाः (ह. प्र.)

1. नाड़ी शोधन प्राणायाम
2. सूर्यभेदी प्राणायाम
3. उज्जाई प्राणायाम
4. सीतकारी प्राणायाम
5. शीतली प्राणायाम
6. भस्त्रिका प्राणायाम

टिप्पणी

7. भ्रामरी प्राणायाम
8. प्लावनी प्राणायाम

प्राणायाम से पूर्व श्वसन–अभ्यास

यह श्वसन अभ्यास श्वास–प्रश्वास की धारा को सरलतापूर्वक लंबा–गहरा बनाने के लिए किया जाता है। यह डायफ्राम की क्रियाशीलता को ठीक करता है। यदि श्वास लेते समय पेट फूलता है और श्वास छोड़ते समय पेट सिकुड़ता है तो समझना चाहिए कि डायफ्राम ठीक से काम कर रहा है। यदि इसके विपरीत क्रिया होती है तो इसका तात्पर्य है कि डायफ्राम उल्टा चल रहा है, इसको ठीक करने के लिए इस प्राणायाम को करते हैं। डायफ्राम ठीक होने के बाद साधक का श्वास–प्रश्वास स्वतः ही लंबा और गहरा होने लगता है।

स्थिति

- पद्मासन, सुखासन अथवा वज्रासन
- हाथों को घुटनों पर रखें
- मेरुदण्ड को सुखपूर्वक सीधा रखें।
- कोमलता से आँखें बंद रखें।

विधि

- धीरे–धीरे सुखपूर्वक दोनों नासिका से समान रुप से श्वास लें।
- श्वास लेने के साथ–साथ पेट को धीरे–धीरे फुलाते जाएं।
- पेट फुलाकर मन में 06 तक गिनती गिनने तक श्वास अंदर रोके रखें।
- अब धीरे–धीरे समान भाव से श्वास छोड़ते जाएं तथा पेट को सिकोड़ते जाएं।
- यदि आप चाहें तो श्वास को 06 गिनती गिनने तक बाहर भी रोक सकते हैं।
- इसी क्रम को तीन मिनट से पांच मिनट तक सरलतापूर्वक कीजिए।
- क्रिया करते समय थकना नहीं चाहिए।
- संपूर्ण शरीर में हल्कापन अनुभव करें।

1. नाड़ी शोधन प्राणायाम

जैसा कि इस प्राणायाम के नाम से ही स्पष्ट होता है कि इसके अभ्यास से शरीर में विद्यमान 72000 नाड़ियों का शुद्धिकरण होता है। नाड़ियों में जमा मल को यह प्राणायाम बाहर निकालता है, जिसके फलस्वरुप शरीर में प्राण का संचार सुनियोजित होता है। शरीर के कोषाणु ऊर्जावान होते हैं।

स्थिति

- पद्मासन या सुखासन में बैठ जाएं;
- मेरुदण्ड को सीधा करें;

टिप्पणी

- आँखें कोमलता से बंद करें;
- बायां हाथ बायें घुटने पर रखें;
- दाहिने हाथ की अनामिका अंगुली बायें नासिका रन्ध्र पर तथा अगूंठा दाहिने नासिका रन्ध्र पर रखें।

चित्र 13.2: नाड़ी शोधन प्राणायाम

विधि

- बांयें नासिका रन्ध्र से 08 गिनती तक मन में गिनते हुए श्वास भरें।
- मन में 32 गिनती गिनने तक श्वास अंदर रोकें।
- बांयें नासिका रन्ध्र को बंद करें और दाएं नासिका रन्ध्र से 16 गिनती मन में गिनते हुए तक श्वास बाहर छोड़ें।
- अब दाएं नासिका रन्ध्र से 08 गिनने तक श्वास लें।
- फिर 32 गिनती गिनने तक श्वास अंदर रोकें। इसे अन्तः कुम्भक कहते हैं।
- अब बायें नासिका रन्ध्र से 16 गिनती गिनने तक श्वास छोड़ें।

यह इस प्राणायाम की एक आवृति है। इसी क्रम को दुहराते हुए लगभग 3—5 मिनट तक कीजिए।

इस प्राणायाम में पूरक, कुम्भक तथा रेचक में क्रमशः 1:4:2 का अनुपात होता है। यह सभी प्राणायामों में श्रेष्ठ है। इस प्राणायाम के नियमित अभ्यास से नाड़ियां भली—भांति शुद्ध हो जाती हैं।

2. उज्जाई प्राणायाम

हमारे गले में श्वास नलिका होती है। यही श्वास क्रिया का यंत्र है। यह श्वास नलिका हमारे

टिप्पणी

नासिका द्वार तथा मुख द्वार दोनों से जुड़ा हुआ है। हम श्वास चाहे मुख से लें अथवा नासिका से, श्वास इसी नलिका द्वारा फेफड़ों में पहुँचती है। इसी नलिका को कुछ संकुचित करके श्वास लेने – छोड़ने से इस प्रकार की खर्राटे जैसी आवाज होती है। इसी श्वास प्रक्रिया को उज्जाई प्राणायाम के रूप में जानते हैं।

स्थिति

- पद्मासन, वज्रासन या सुखासन में बैठ जाएं;
- मेरुदण्ड को सीधा करें;
- दोनों हाथों को घुटने पर रखें।

विधि

- पेट को थोड़ा अंदर की ओर पिचका लें।
- जिह्वा के अग्र भाग को थोड़ा अंदर की ओर मोड़कर ऊपर तालू में लगा लें।

चित्र 13.3: उज्जाई प्राणायाम

- ठुड्डी को कंठकूप में लगाकर थोड़ा संकुचित कर लें।
- कंठ में सरसराहट करते हुए नासिका से समान रूप से श्वास लें तथा छोड़े। इसे सरलतापूर्वक करते रहें।
- श्वास कंठ से हृदय तक लें और हृदय से गले तक छोड़ें।
- श्वास की गति समान भाव से धीमी रहे।
- श्वास लेते छोड़ते समय मुँह में लार भर आएगी तो उसे निगल लें।

टिप्पणी

- प्राणायाम करते समय ध्यान कंठ में ही रखें।

3. सूर्य भेदी प्राणायाम

सूर्य भेदन का मतलब है पिंगला नाड़ी का भेदन करना अथवा उसे जागृत करना। यह शरीर में प्राण–ऊर्जा को तीव्रता से बढ़ाता है। शरीर में ताप पैदा करता है और रक्त का शोधन करता है। इसके अभ्यास से रक्त में लाल–कण अधिक मात्रा में बढ़ते हैं। यह इच्छा शक्ति को बढ़ाता है।

स्थिति

- पद्मासन या सुखासन में बैठ जाएं;
- मेरुदण्ड को सीधा करें;
- आँखें बंद कर लें।

विधि

- दाहिने हाथ की अनामिका तथा कनिष्ठिका से बाएं नासिका रन्ध्र को बंद करें।
- बिना किसी ध्वनि के सुखपूर्वक दाहिने नासिका रन्ध्र से धीरे–धीरे श्वास लें।
- अब दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिने नासिका रन्ध्र को बंद कर लें और आंतरिक कुम्भक करें।
- जालंधर बंध लगाकर श्वास को यथासंभव रोके रखें।
- कुम्भक का समय धीरे–धीरे बढ़ाते रहें। इस अभ्यास को सूर्य भेद कुम्भक कहते हैं।

चित्र 13.4: सूर्य भेदी प्राणायाम

टिप्पणी

- अब दाहिने–नासिका रन्ध्र से अंगूठे को बंद कर बायें नासिका रन्ध्र से बिना ध्वनि के धीरे–धीरे श्वास छोड़ें।
- यह मस्तिष्क को शुद्ध करता है, आँतों के कीड़ों को मारता है तथा वायु दोष को दूर करता है।

4. सीतकारी प्राणायाम

यह शरीर में ठंडक पहुँचाने वाला प्राणायाम है। यह भूख, प्यास, आलस्य तथा निद्रा को दूर करता है।

स्थिति

- पद्मासन या सुखासन में बैठें;
- मेरुदण्ड सीधा रखें;
- दोनों हाथ घुटनों पर रखें;
- जिह्वा के अग्रभाग को तालू में लगा लें।

चित्र 13.5: सीतकारी प्राणायाम

विधि

- दाँतों तथा जबड़ों को भींचकर होठों के दायें–बायें से मुख से श्वास अंदर खींचें;
- श्वास लेते समय शीतकार की सी आवाज करें;
- फिर आंतरिक कुम्भक करें;
- कुम्भक का अभ्यास धीरे–धीरे बढ़ायें, इस प्रकार 8–10 बार इसे करें।

टिप्पणी

5. शीतली कुम्भक प्राणायाम

यह प्राणायाम भी शरीर के अंदर शीतलता पहुँचाने के लिए किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में गर्मी को शांत करने के लिए यह अत्यंत उपयोगी है। उच्च रक्त चाप को ठीक करता है। रक्त को शुद्ध करता है। प्यास को बुझाता है।

स्थिति

- पद्मासन या सुखासन में बैठें;
- पीठ सीधी रखते हुए शरीर को ढ़ीला रखें;
- जिह्वा को बाहर निकालकर नाली की तरह बना लें;
- इस प्राणायाम को खड़े होकर भी कर सकते हैं।

चित्र 13.6: शीतली प्राणायाम

विधि

- शीतकार (सी SSS) की आवाज़ करते हुए नली से वायु को अंदर खींचे।
- जब तक सुखपूर्वक श्वास को रोक सकें, रोके रखें।
- अब दोनों नासिका रन्ध्रों से धीरे–धीरे श्वास को बाहर निकालें।
- प्रतिदिन 15–30 बार इसका अभ्यास करें।

टिप्पणी

6. भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्रिका का अर्थ भाथी या धौंकनी है। धौंकनी की तरह लंबा तथा वेगपूर्वक श्वास लेना और निकालना, 'भस्त्रिका प्राणायाम' कहलाता है। जिस तरह लौहार जल्दी–जल्दी भाथी चलाता है, उसी तरह जल्दी–जल्दी श्वास लेना तथा निकालना है। इससे शरीर ऊर्जावान बनता है। श्वास गहरा व लंबा लेने की शक्ति बढ़ती है।

स्थिति

- पद्मासन में बैठ जाएं;
- सिर, ग्रीवा तथा शरीर को एक सीध में रखें;
- मुंह को बंद कर लें।

चित्र 13.7: भस्त्रिका प्राणायाम

विधि

- लोहार की धौकनी के समान नासिका से 10–15 बार जल्दी–जल्दी श्वास लें तथा छोड़ें।
- श्वास छोड़ने के साथ–साथ पेट को अंदर सिकोड़ते रहें।
- अभ्यास के समय फुफकारने की सी ध्वनि करें।
- श्वास लेने व छोड़ने के क्रम को तीव्र बनाए रखें।
- तीव्रगति से लेना–छोड़ना करते–करते अंतिम रेचक के बाद यथाशक्ति लंबा–गहरा श्वास लें।
- जब तक सुखपूर्वक श्वास छोड़ें। यह एक आवृत्ति भस्त्रिका है। इसी क्रम को तीन आवृत्ति तक कर सकते हैं।

7. भ्रामरी प्राणायाम

भ्रामरी शब्द भौंरे (भ्रमर) से लिया गया है। इस प्राणायाम में भौंरे जैसा गुंजन करते हुए रेचक किया जाता है। यह प्राणायाम मस्तिष्क के स्नायुओं को सुखद रूप में स्पन्दित करता है। स्मरण शक्ति बढ़ती है। इससे मानसिक थकान दूर होती है। मन शांत होता है। आध्यात्मिक विकास के लिए श्रेष्ठ प्राणायाम है।

स्थिति

- पद्मासन, वज्रासन या सिद्धासन में बैठें;
- मेरुदण्ड सीधा रखें;
- आँखें कोमलता से बंद रखें;
- दोनों हाथों की तर्जनी से दोनों कान बंद कर लें।

चित्र 13.8: भ्रामरी प्राणायाम

विधि

- दोनों नासिका रन्ध्रों से लंबा–गहरा पूरक करें।
- कान बंद रखते हुए श्वास छोड़ते जाएँ और भौंरे जैसा गुंजन ध्वनि करते जाएँ।
- पुनः श्वास भरें और गुंजन करें। इस क्रम को 5, 10, 15,20 बार तक कर सकते हैं।
- अंत में दोनों नासिकारन्ध्रों से पूरक करें, यथाशक्ति अन्तःकुम्भक करें तथा धीरे–धीरे रेचक करें।

टिप्पणी

8. प्लावनी प्राणायाम

प्लव का अर्थ है —नौका। नाव जल पर जैसे तैरती है, उसी प्रकार जल की सतह पर पड़े रहने को प्लावनी कहते हैं। यह प्राणायाम शरीर को फूल के समान हल्का बनाता है जिससे साधक जल की सतह पर अपने शरीर को छोड़ सकता है। यह योग साधक के लिए एक कौशल का कार्य भी है। जो प्लावनी कुम्भक का अभ्यास करता है, वह वायु पीकर अन्न के बिना ही कई दिनों तक रह सकता है।

स्थिति

- पद्मासन में बैठ जाइए।
- शरीर को सुखपूर्वक रखते हुए मेरुदण्ड को सीधा रखें।

विधि

- जल की तरह घूंट—घूंट करके वायु पीएं और उसे पेट में पहुँचाएं।
- वायु भरने से पेट फूलता है, पेट थपथपाने से ढोल की सी आवाज आती है।
- अभ्यास धीरे—धीरे बढ़ा सकते हैं और अंत में डकार द्वारा धीरे—धीरे पेट की हवा को बाहर निकाल सकते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 13.2

1. घेरण्ड संहिता में कितने प्रकार के प्राणायामों का वर्णन है?

   ....

   ....

   ....

2. हठयोग प्रदीपिका में वर्णित किन्हीं दो प्राणायामों के नाम लिखिए।

   ....

   ....

   ....

3. किस प्राणायाम से शरीर में गर्मी उत्पन्न की जा सकती है?

   ....

   ....

   ....

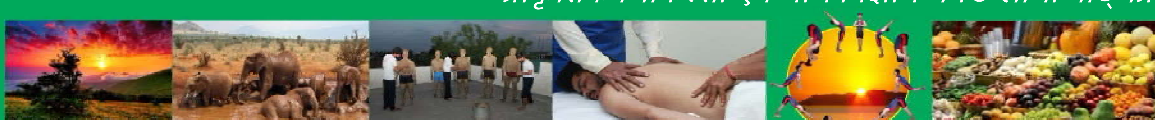

टिप्पणी

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आपने सीखा कि–

अष्टांग योग का चौथा चरण है 'प्राणायाम'। महर्षि पतंजलि के अनुसार 'श्वास और प्रश्वास' की गति का विच्छेद ही प्राणायाम है। जब श्वास प्रश्वास अनुशासित होकर निग्रह की स्थिति में पहुंचता है, तब प्राणायाम की पूर्णताः होती है। सरल शब्दों में प्राणायाम को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि ''प्राण एवं अपान का योग प्राणायाम है अर्थात श्वास–प्रश्वास पर नियमन एवं नियंत्रण प्राणायाम कहलाता है।

प्राणायाम शब्द का अर्थ है – प्राणिक ऊर्जाओं का नियंत्रण। साधना के प्राचीन ग्रंथ घेरण्ड संहिता में प्राणायाम के संबंध में लिखा है –

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका, भ्रामरी मूर्छा केवली, चाष्टकुम्भ काः।। घे.सं.

अर्थात आठ प्रकार के प्राणायामों का उल्लेख मिलता है। कुछ योग विद्वानों ने इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया है–

1. नाड़ी शोधन प्राणायाम
2. सूर्यभेदी प्राणायाम
3. उज्जाई प्राणायाम
4. सीतकारी प्राणायाम
5. शीतली प्राणायाम
6. भस्त्रिका प्राणायाम
7. भ्रामरी प्राणायाम
8. प्लावनी प्राणायाम

यूनिटांत प्रश्न

1. प्राणायाम से आपका क्या अभिप्राय है? ये कितने प्रकार के होते हैं? किन्हीं दो का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।
2. प्राणायाम से पूर्व श्वसन–अभ्यास की विधि बताते हुए नाड़ी शोधन प्राणायाम का वर्णन कीजिए।
3. विश्व में प्राण के स्वरूप से आप क्या समझते हैं? विस्तृत वर्णन करें तथा प्राणवाही नाड़ियों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

13.1

1. *''ततः क्षीयते प्रकाशावरणम''* अर्थात् प्राणायाम द्वारा प्रकाश पर आया आवरण क्षीण हो जाता है।
2. प्राण तथा अपान को संयुक्त करना तथा इस संयुक्त प्राण—अपान को धीरे—धीरे मस्तक की ओर ले जाना।
3. (क) इड़ा, (ख) पिंगला, (ग) सुषुम्ना
4. सूर्यभेदी प्राणायाम द्वारा

13.2

1) आठ प्राणायाम

2) (i) नाड़ी शोधन प्राणायाम (ii) सूर्यभेदी प्राणायाम

3) सूर्यभेदी प्राणायाम द्वारा

टिप्पणी

14

मुद्रा और बंध

जैसा कि आप पढ़ चुके हैं कि अष्टांग योग का चौथा चरण है 'प्राणायाम'। प्राणायाम करते समय कुछ मुद्राओं एवं बंध का प्रयोग किया जाता है। यदि आप आसन एवं प्राणायाम नहीं करते हैं या फिर करने असमर्थ हैं तो ऐसे समय भी में इन मुद्राओं का लाभ लिया जा सकता है। आश्चर्यजनक बात यह है कि मुद्राएं विशेष चमत्कारी हैं, जिनका शरीर पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। इस अध्याय में हम मुद्रा एवं बंध के स्वरूप पर चर्चा करेंगे, और यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि मुद्रा एवं बंध किस प्रकार स्वस्थ रहने के लिए उपयोगी है और किन विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में मनुष्य इनका तत्काल लाभ ले सकता है।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- मुद्रा एवं बंध का अभिप्राय स्पष्ट कर सकेंगे;
- मुद्रा एवं बंध के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे;
- मुद्रा एवं बंध के महत्व तथा लाभ का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे।

14.1 मुद्रा एवं बंध

आसन प्राणायाम से भी ज्यादा प्रभावी अभ्यास मुद्रा एवं बंध को माना गया है। क्या आप जानते हैं कि मुद्रा क्या है? आपको सर्वप्रथम मुद्रा के विषय में समझाते हैं। मुद्रा शब्द 'मुद्'

टिप्पणी

धातु से निर्मित है जिसका अर्थ है प्रसन्नता।

मुद्रा = मुद्, धातु = प्रसन्नता

मुद्रा शरीर व मन के भावों के प्रकटीकरण का माध्यम है। योग में मुद्रा और बंध का प्रयोग प्राण ऊर्जा के नियमन के लिए किया जाता है।

मुद्रा–बंध का वर्णन नीचे किया गया है जिनके अभ्यास से शारीरिक स्वास्थ्य एवं शारीरिक क्षमताओं का विकास किया जा सकता है। आइए, अब मुद्रा के विषय में चर्चा करते हैं।

14.2 मुद्रा

जैसा कि आपको ऊपर बताया गया है कि मुद्रा शब्द मुद् धातु से बना है जिसका अर्थ प्रसन्नता से है। मुद्रा शरीर व मन के भावों के प्रकटीकरण का माध्यम है। सरल शब्दों में कहा जाय तो चित्त को प्रकट करने वाले विशेष भाव को मुद्रा कहते हैं। आइए यहाँ पर हम संक्षिप्त में कुछ हस्त एवं हठ योग की प्रमुख मुद्राओं के विषय में जानते हैं।

क) हस्त मुद्रा

स्वास्थ्य नियन्त्रण कक्ष आपके हाथ की अंगुलियों में है और यहीं से सम्पूर्ण शरीर का संचालन होता है। जिस तत्व के कारण आप अस्वस्थ हैं उस तत्व की कमी नियन्त्रण कक्ष के अनुकूल स्विच को दबाकर अभाव की पूर्ति कर पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं।

हाथ की अंगुलियों को परस्पर विभिन्न विधि द्वारा स्पर्श करना हस्त मुद्रा कहलाता है।

हमारे हाथ की पाँच अंगुलियों से पाँच तत्वों का बोध निम्न प्रकार होता है।

1) अंगूठा (Thumb) – अग्नि तत्व
2) तर्जनी (Index Finger) – वायु तत्व
3) मध्यमा (Middle Finger) – आकाश तत्व
4) अनामिका (Ring Finger) – पृथ्वी तत्व
5) कनिष्ठा (छोटी (Small Finger) – जल

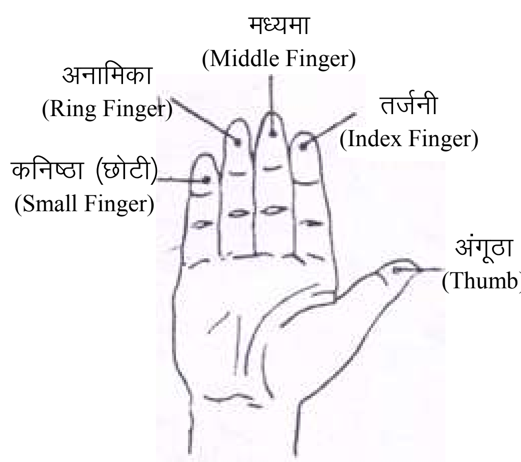

हस्त मुद्रा द्वारा शरीर की पाँच भौतिक स्थित को संतुलित रखकर स्वास्थ्य कायम रखा और खोए हुए स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सकता है।

टिप्पणी

ज्ञान मुद्रा

1) **ज्ञान मुद्रा :** अंगूठा और तर्जनी को मिलाने से बनती है।

लाभ : स्मरण शक्ति उन्नत होती है, मानसिक रोग, चिड़चिड़ापन एवं अनिद्रा दूर होती है। इससे होने वाली स्मरण शक्ति विद्यार्थियों एवं बुद्धिजीवियों के लिए वरदान एवं मानसिक रोगों के लिए रामबाण है।

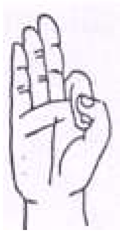
वायु मुद्रा

2) **वायु मुद्रा :** तर्जनी अंगूली को अंगूठे की जड़ में लगाकर उसे अंगूठे से दबाने पर यह मुद्रा बनती है।

लाभ : इस मुद्रा से सभी प्रकार के वायु रोग, गठिया, कम्पन, लकवा, वायुशूल एवं रेंगने वाला दर्द निश्चय ही ठीक होते हैं।

सूर्य मुद्रा

3) **सूर्य मुद्रा :** अनामिका को अंगूठे की जड़ में लगाकर अंगूठे से दबाने से बनती है।

लाभ : मोटापा, भारीपन दूर करता है।

नोट : अनामिका और अंगुष्ठ दोनों ही तेज का विशेष विद्युत प्रवाह करते हैं। यौगिक दृष्टि से ललाट पर द्विदल कमल का आज्ञाचक्र स्थित है। उस पर अनामिका और अंगुष्ठ से एक विशेष विधि और भावना द्वारा तिलक करके कोई भी स्त्री अथवा पुरुष अपनी अदृश्य शक्ति को दूसरे में पहुँचाकर उसकी शक्ति द्विगुणित कर सकता है।

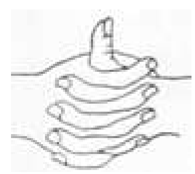
लिंग मुद्रा

4) **लिंग मुद्रा :** दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर फंसाकर बायें हाथ के अंगूठे को सीधा रखें।

लाभ : सर्दी के रोग नजला जुकाम आदि दूर होते हैं।

पृथ्वी मुद्रा

5) **पृथ्वी मुद्रा :** अनामिका और अंगुष्ठ के अग्र भाग को मिलाएं।

लाभ : दुबले पतले व्यक्ति के लिए एवं कान्ति और तेज की कमी में लाभ देता है। संकुचित विचारों में परिवर्तन होता है।

प्राण मुद्रा

6) **प्राण मुद्रा :** कनिष्ठ एवं अनामिका दोनों को मोड़कर अंगूठा से स्पर्श करें।

लाभ : शरीर शारीरिक–मानसिक दृष्टि से इतना शक्तिशाली हो जाता है कि कोई भी बीमारी आक्रमण नहीं कर सकती। रक्त संचार उन्नत होकर रक्त नलिकाओं की रुकावट को दूर करता है। तन–मन में स्फूर्ति, आशा एवं उत्साह प्रदान करता है। नेत्र दोष दूर होते हैं।

टिप्पणी

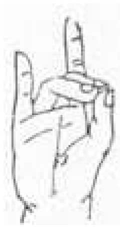

अपान मुद्रा

7) **अपान मुद्राः** मध्यमा एवं अनामिका को एक साथ मिला कर एवं मोड़कर अंगूठा से स्पर्श करें।

लाभ : उदर की वायु को कम कर वहां के दर्द एवं अन्य उपद्रव को दूर करता है।

8) **शून्य मुद्रा** : मध्यमा अंगुली को मोड़कर अंगूठा से दबाएं।

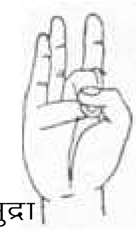

शून्य मुद्रा

लाभ : कान के दर्द में लाभ मिलता है। निरन्तर अभ्यास से कान के रोग से बचाव, बहरा है तो सुनाई देगा। (जन्म से गूंगा–बहरा है तो असर नहीं होगा)।

9) **ह्रदय मुद्रा** : तर्जनी अंगुली को मोड़कर अंगुठे की गद्दी पर लगा दे और तब छोटी अंगुली को छोड़कर बाकी दोनों अंगुलियों को अंगूठा से स्पर्श करें।

लाभ : यह मुद्रा दिल का दौरा रोकने में इन्जेक्शन की भांति काम करती है। नियमित अभ्यास से ह्रदय रोग ठीक हो सकता है।

ह्रदय मुद्रा

10) **वरुण मुद्रा** : सबसे छोटी अंगुली को अंगुष्ठ के अग्र भाग से मिलाने पर वरुण मुद्रा बनती है।

लाभ : इसके अभ्यास से शरीर में जल तत्व की कमी से उत्पन्न होने वाले सभी रोग दूर हो जाते हैं। त्वचा एवं रक्त विकार दूर होते हैं।

वरुण मुद्रा

ख) हठयोग मुद्रा

i) महामुद्रा

घेरण्ड संहिता में इसका वर्णन निम्नानुसार प्राप्त होता है –

पायुमूलं वामगुल्फे संपीडय दृढ़यत्नतः।
याम्यपादं प्रासार्याथ करोपात्तपदाङ्.गुति।।
कष्ठ संकोचनं कप्त्या भ्रुवोर्मध्यं निरीक्ष्येत्।
पूरकैर्वायुं सम्पूर्य महामुद्रा निगद्यते।।

अर्थात

चित्र 14.3: महामुद्रा

बाईं एड़ी से गुदा प्रदेश को दबाएं और दाहिने पैर को फैलाकर उसकी अंगुलियों को हाथ से पकड़े और कंठ को सिकोड़ कर भौंहों के मध्य में दृष्टि लगाएं, यह 'महामुद्रा' कहलाती है।

विधि

सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने की ओर फैलाकर दंडासन की अवस्था में बैठते हैं। इसके बाद बाएं पैर को घुटने से मोड़ते हुए, बाईं एड़ी को मूलभाग (गुदा प्रदेश) में रखते हैं। दाहिना पैर सीधा रहता है, फिर दोनों हाथों को ऊपर उठाकर श्वास छोड़ते हुए आगे की ओर झुकते हैं और दोनों हाथों से दाहिने पैर के पंजे को पकड़ लेते हैं। फिर सिर को थोड़ा पीछे की ओर झुकाते हुए धीरे–धीरे श्वास लेते हैं। ***कुम्भक का प्रयोग करते हैं।*** दृष्टि दोनों भौंहों के मध्य में स्थिर रहती है।

तत्पश्चात सिर नीचे करते हैं। दोनों हाथों को नीचे करते हैं। फिर दूसरे पैर को इसी क्रम से रखकर यह प्रक्रिया पुनः दोहराई जाती है।

लाभ

- यह चित्त को शांत करती है और मन की चंचलता को समाप्त करती है।
- यह मन को अन्तर्मुखी बनाती है।
- तंत्रिका तंत्र को संतुलित करती है।
- प्राण ऊर्जा को जागृत करती है।
- उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोगियों का इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- शरीर शुद्धिकरण से पूर्ण इस महामुद्रा का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

ii) विपरीतकरणी

घेरण्ड संहिता के अनुसार विपरीतकरणी मुद्रा की विधि का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि –

भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मं समाहितः।

उर्ध्वपादः स्थिरो भूत्वा विपरीतकरी मता।।

अर्थात् सिर भूमि में लगाकर दोनों हाथों का सहारा लेकर दोनों पावों को ऊपर उठाकर कुम्भक के द्वारा वायु को रोकें यही 'विपरीतकरणी मुद्रा' है।

विधि

सर्वप्रथम पीठ के बल सीधे लेट जाते हैं। पैर सीधे एवं मिले हुए रहेंगे। दोनों हाथों की हथेलियों को बगल में

चित्र 14.4: विपरीतकरणी

टिप्पणी

रखेंगे। शरीर शिथिल छोड़ देंगे। फिर श्वास भरते हुए दोनों पैरों को घुटने से मोड़े बिना एक साथ ऊपर उठायेंगे। फिर नितम्बों को ऊपर उठायेंगे। कमर से थोड़ी मुड़ी हुई पैर थोड़ा सिर की और झुके रहेंगे। पैर आंखें की दृष्टि की सीध में रहेंगे। कुम्भक लगाकर रखेंगे। तत्पश्चात श्वास छोड़ते हुए वापस सामान्य अवस्था में आयेंगे।

लाभ

- यह अभ्यास वृद्धावस्था को दूर करता है;
- पाचन संस्थान को दुरुस्त करता है;
- थायराइड की क्रियाशीलता में संतुलन आता है;
- मस्तिष्क में रक्त संचार ठीक प्रकार से होने लगता है।
- कब्ज या अस्वस्थ हों तब इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए;
- उच्च रक्तचाप, हृदय रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

iii) शाम्भवी मुद्रा

घेरण्ड संहिता में शाम्भवी मुद्रा का वर्णन निम्नानुसार है –

नेत्रान्तरं समालोक्य चात्मारामं निरीक्ष्येत्।

सा भवेच्छाम्भवीमुद्रा सर्वतन्त्रेषंगोपिता।।

अर्थात – दृष्टि को दोनों भौंहों के मध्य स्थिर कर 'स्वयं' पर अर्थात अपनी आत्मा पर ध्यान करें, यही 'शाम्भवी मुद्रा' है।

चित्र 14.5: शाम्भवी मुद्रा

विधि

किसी भी ध्यानात्मक आसन में सिर व मेरूदण्ड को सीधा करके बैठ जाते हैं। दोनों हाथ ज्ञान अथवा ध्यान मुद्रा में रख लेते है। आंखों को बंदकर शरीर को ढीला छोड़ देते हैं। चेहरे की संपूर्ण मांसपेशियों को शिथिल करते है। फिर आंख खोलकर सामने किसी बिंदु पर आंखों को एकाग्र करते हैं, तत्पश्चात आंखों की दृष्टि ऊपर भूमध्य में टिका देते हैं। श्वास लेकर कुम्भक का प्रयोग करते हैं। तत्पश्चात् श्वास छोड़ते हुए आंखों को सामान्य अवस्था में लेकर आते हैं।

यह प्रक्रिया फिर से दोहराई जाती है।

लाभ

- मानसिक एकाग्रता का विकास होता है;

टिप्पणी

- आज्ञाचक्र के जागरण में सहायता मिलती है;
- मन और प्राण को संतुलित करता है।
- आंखें बहुत अधिक संवेदनशील होती है। अतः ज्यादा देर तक इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- जिन व्यक्तियों की आंखों का ऑपरेशन हुआ हो वो इसे न करें।

iv) काकी मुद्रा

कौवे के समान मुख की आकृति होने से इस मुद्रा को काकी मुद्रा कहा जाता है। इसका वर्णन घेरण्ड संहिता में निम्नानुसार किया गया है –

काकचन्चुवदास्येन पिबेद्वेयुं शनैः शनैः।

काकी मुद्रा भवरैषां सर्वरोग बिनाशिनी।।

अर्थात् मुख को कौवे की चोंच के समान करके उसके द्वारा धीरे–धीरे वायु का पान करें। यह सब रोगों को नष्ट करने वाली काकी मुद्रा कहलाती है।

चित्र 14.6: काकी मुद्रा

विधि

सर्वप्रथम किसी भी सुविधाजनक ध्यानात्मक आसन में सिर एवं मेरूदण्ड सीधा करके बैठ जाते हैं। दोनों हाथों को ज्ञान मुद्रा में रख लेते हैं और आंखें बंदकर शरीर को शिथिल करते हैं। तत्पश्चात आंखें खोलकर दृष्टि को नासिकाग्र पर केन्द्रित करते हैं। कौवे की चोंच के समान मुख की आकृति बनाते हैं फिर जिह्वा के सहारे धीरे–धीरे मुख द्वारा वायु का पान करते हैं। फिर कुम्भक का प्रयोग करते हैं। तत्पश्चात नासिका से धीरे–धीरे श्वास छोड़ देते हैं। कुम्भक की अवस्था में आंखें बंद रहती है।

टिप्पणी

लाभ

- काकी मुद्रा से शरीर व मन में शीतलता का विकास होता है।
- मानसिक तनाव, चिंता कम होती है।
- समस्त प्रकार की बीमारियां दूर होती हैं।
- काकी मुद्रा का अभ्यास प्रदूषित वातावरण में नहीं करना चाहिए।
- ठंड के मौसम में भी इसका अभ्यास नहीं किया जाता है।

v) अश्विनी मुद्रा

घेरण्ड संहिता में अश्विनी मुद्रा का वर्णन निम्नानुसार किया गया है —

आकुंचयेद् गुदाद्वारं प्रकाशयेत् पुनः पुनः।

सा भवेदश्विनीमुद्रा शक्तिप्रबोध कारिणी।।

अर्थात — गुदाद्वार का बार—बार संकोच और प्रसार करें यह अश्विनी मुद्रा कहलाती है।

विधि

किसी भी ध्यानात्मक आसन में सिर मेरूदंड सीधी करके बैठ जाते हैं। दोनों हाथ ज्ञान मुद्रा में रख लेते हैं। तत्पश्चात् गुदा को संकुचित करके पुनः उसको ढीला छोड़ देते हैं। गुदा को सुकोड़ने और फैलाने की क्रिया लयबद्धता के साथ की जाती है। प्रयत्न किया जाता है कि केवल गुदा द्वार का ही संकुचन होने चाहिए।

लाभ

- गुदा के स्नायुओं पर नियंत्रण स्थापित हो जाता है;
- गुदा द्वार संबंधी रोग होने की संभावना समाप्त हो जाती है।

गुदा नाल में व्रण होने अथवा बवासीर से पीड़ित व्यक्ति इसका अभ्यास न करें।

यूनिटगत प्रश्न 14.1

1. मुद्रा शब्द किस धातु से बना है?

   ....

   ....

2. किस मुद्रा में कौवे की चोंच के समान की आकृति बनाकर वायु का सेवन किया जाता है?

   ....

   ....

टिप्पणी

14.3 बंध

बंध का अर्थ है बांधना या नियंत्रित करना। इस प्रक्रिया में शरीर के विभिन्न आन्तरिक अवयवों को नियंत्रित कर साधना की जाती है।

बंध के प्रकार –

i) जालन्धर बन्ध

जालन्धर बन्ध गले से संबंधित होता है। जाल का अर्थ है – जाला, जाली, झंझरी। कंठ क्षेत्र का बंधन जालन्धर बन्ध के द्वारा होता है। कंठ एक ऐसा क्षेत्र है जिससे होकर शरीर की सभी नाड़ियां सिर में प्रवेश करती हैं। पूरे शरीर का संबंध कंठ से होता है।

घेरण्ड संहिता में जालन्धर बन्ध की विधि का वर्णन इस प्रकार मिलता है –

कण्ठसंकोचनं कृत्वा चिबुकं हृदये न्यसेत्।

जालन्धरेकृते बन्धे षोडशाधारबन्धनम्।।

अर्थात कंठ संकोच करें और हृदय पर ठुड्डी को रखें तो उसे जालन्धर बन्ध कहते हैं।

विधि

सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठते हैं। सिर एवं मेरूदंड सीधा रखते हैं। दोनों हथेलियों को घुटने पर रखते हैं। इसके बाद धीरे–धीरे श्वास भरते हैं, श्वास भरकर रोकते हैं फिर कंठ को संकुचित कर ठुड्डी को छाती (कंठ के मूल भाग में) से लगाने का प्रयास करते हैं।

चित्र 14.7: जालन्धर बन्ध

टिप्पणी

घुटनों पर हथेलियों से दबाव डालते हुए भुजाओं को सीधा करते हैं। जब तक आराम से श्वास अंदर रोक सकें तब तक रोके रखें। इसके बाद कंधों, भुजाओं को शिथिल कर, सिर को ऊपर उठाते हैं, तत्पश्चात श्वास को धीरे–धीरे छोड़ते हैं। इसको चार बार दोहरा सकते हैं।

लाभ

- थायराइड ग्रंथि के कार्यों को संतुलित करने के लिए इसका अभ्यास लाभदायक है;
- शरीर के विकास के लिए लाभदायक है;
- चयापचय क्रिया संतुलित होती है;
- सिर में रक्त संचार की मात्रा बढ़ती है।

सावधानियां

सर्वाइकल, स्पॉण्डिलाइटिस, उच्च रक्तचाप तथा हृदय रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

ii) उड्डियान बन्ध

उड्डियान का अर्थ होता है 'उड़ना', ऊपर उठाना आदि। उड्डियान बन्ध के द्वारा प्राण ऊर्जा को ऊपर की ओर उठाया जाता है।

घेरण्ड संहिता में इसकी विधि निम्नानुसार दी गई है –

उदरे पश्चिमं तानं नाभिरुष्टर्वंतु कारयेत्।

उड्डीनं कुरुते यस्माद् विश्रातं महाखगः।।

अर्थात नाभि के ऊपर उदर को पीठ की ओर समभाव में सिकोड़ें, जिसके परिणामस्वरूप महाखग (प्राण) ऊपर उठता है। इसे उड्डियान बन्ध कहते हैं।

चित्र 14.8: उड्डियान बन्ध

टिप्पणी

विधि

किसी भी ध्यानात्मक आसन जैसे पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन आदि में सिर व मेरूदंड सीधा करके बैठते हैं। हथेलियां घुटने के ऊपर रखते हैं। आंखें बंद कर पूरे शरीर को ढीला छोड़ देते हैं। नासिका से धीरे–धीरे गहरी श्वास लेकर फिर श्वास को छोड़ते हैं। फेफड़ों को संपूर्ण रूप से खाली करने का प्रयास करते हैं। श्वास को बाहर रोककर अर्थात बिना श्वास लिए ही हाथ सीधे करके कंधों को ऊपर उठाते हैं साथ ही जालन्धर बन्ध लगाते हैं। पेट की मांसपेशियों को संकुचित करके नाभि को भीतर ऊपर की ओर उठाते हैं। इस स्थिति में जब तक सहजता अनुभव करें तब तक रहते हैं। फिर इसके बाद पेट की मांसपेशियों को ढीलाकर, कोहनियों से मोड़ते हैं। कंधों को सामान्य करके जालन्धर बंध खोलते हैं, फिर धीरे–धीरे श्वास लेते हैं। श्वास–प्रश्वास को सामान्य करते हैं। जब श्वास–प्रश्वास सामान्य हो जाए तो फिर से दोहराते हैं।

लाभ

- पाचन संस्थान स्वस्थ होता है, जठराग्नि तीव्र होती है;
- फेफड़ों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है;
- आलस्य तनाव चिंता कम होती है।

अमाशय एवं आन्त्र व्रण, हर्निया, उच्च रक्तचाप, ह्रदय रोग, ग्लूकोमा, सिरदर्द से पीड़ित व्यक्तियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

iii) मूलबन्ध

मूलबन्ध अर्थात शरीर का मूल स्थान जहाँ गुदा होता है। वहाँ अपान प्राण स्थित होता है। अपान प्राण के उर्ध्वगमन के लिए इसका अभ्यास किया जाता है।

घेरण्ड संहिता में इसकी विधि निम्नानुसार है :

पढिर्णना वामपादस्य योनिमाकुन्चयितत:
नाभिग्रंथि मेरूदण्डे सुधीः संपीडय यत्नतः।
मेढ्रं दक्षिणगुल्फेन दृढ़बन्धं समाचरेत
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धे निगद्यते।।

अर्थात् बाईं एड़ी से गुहा प्रदेश को संकुचित करें और प्रयत्नपूर्वक मेरूदण्ड में नाभि–ग्रंथि को लगाकर दबाएं और दाईं एड़ी से उपस्थ को दृढ़तापूर्वक दबा लें। यह मूलबंध है जिसके अभ्यास से वृद्धावस्था नष्ट होती है।

विधि

सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में सिर, कमर सीधा करके बैठ जाते हैं। आंखें को बंद कर दोनों हाथों को ज्ञान मुद्रा अथवा किसी अन्य मुद्रा में रख लेते हैं।

थोड़ी देर सामान्य श्वास–प्रश्वास करते हैं। फिर अपना ध्यान गुदा प्रदेश पर ले जाते हैं। गुदा प्रदेश की मांसपेशियों को ऊपर की ओर संकुचित करते हैं, थोड़ी देर इस अवस्था में रहते हैं, फिर मांसपेशियों को ढीला छोड़ दिया जाता है। यह प्रक्रिया पुनः दोहराई जाती है। इस प्रक्रिया में श्वास–प्रश्वास सामान्य रहता है।

लाभ

- इसका अभ्यास उत्सर्जन एवं प्रजनन तंत्र को स्वस्थ बनाता है;
- कब्ज, बवासीर आदि रोग नहीं होते हैं;
- शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं;
- ब्रह्मचर्य पालन में सहायक होता है।

गुदा प्रदेश से संबंधित गंभीर रोगों में इसे परामर्शक के निर्देशन में ही सम्पन्न करें।

यूनिटगत प्रश्न 14.2

1. योग में मुद्रा–बन्ध का प्रयोग किसके लिए किया जाता है?

2. उड्डियान बंध में उड्डियान का क्या अर्थ है?

3. बंध मुख्यतः कितने प्रकार के होते हैं?

टिप्पणी

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आपने सीखा कि–

अष्टांग योग का चौथा चरण है 'प्राणायाम'। प्राणायाम करते समय कुछ मुद्राओं एवं बंध का प्रयोग किया जाता है। यदि आप आसन एवं प्राणायाम नहीं करते हैं या फिर करने असमर्थ हैं तो ऐसे समय भी में इन मुद्राओं का लाभ लिया जा सकता है। आश्चर्यजनक बात यह है कि मुद्राएं विशेष चमत्कारी हैं, जिनका शरीर पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है।

हमने यह भी सीखा कि मुद्रा एवं बंध किस प्रकार स्वस्थ रहने के लिए उपयोगी हैं और किन विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में मनुष्य इनका तत्काल लाभ ले सकता है।

आसन प्राणायाम से भी ज्यादा प्रभावी अभ्यास मुद्रा–बंध का माना गया है। मुद्रा शब्द मुद् धातु से निर्मित है जिसका अर्थ प्रसन्नता होता है। मुद्रा शरीर व मन के भावों के प्रकटीकरण का माध्यम है। योग में मुद्रा और बंध का प्रयोग प्राणऊर्जा के नियमन के लिए किया जाता है।

यूनिटांत प्रश्न

1. मुद्रा से आपका क्या अभिप्राय है? ये कितने प्रकार की होती है? संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।
2. बंध से क्या तात्पर्य है? किन्हीं दो बंध पर संक्षिप्त में वर्णन करते हुए उनके महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. मुद्रा एवं बंध का वर्णन कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

14.1

1) मुद्रा शब्द मुद् धातु से निर्मित है।

टिप्पणी

2) काकी मुद्रा

14.2

1) प्राण ऊर्जा के नियमन के लिए

2) उड़ना

3) तीन

टिप्पणी

15

योग निद्रा एवं ध्यान साधना

अब तक आप योग, योग का अस्तित्व, विभिन्न योग दर्शनों में वर्णित योग के स्वरूप को समझ चुके हैं तथा ध्यान साधना की ओर अग्रसित होते हुए कुछ यौगिक अभ्यासों के विषय में भी जान चुके हैं। हम योगासनों का अभ्यास, अपनी क्षमता तथा अवस्था के अनुरूप करते हैं। प्राणायाम भी अपनी क्षमता के अनुसार करना चाहिए क्योंकि गलत ढंग से प्राणायाम करने पर हमें लाभ की अपेक्षा हानि हो सकती है और हम अस्वस्थ हो सकते हैं।

ध्यान—साधना भारतीय आध्यात्म का विशेष वैज्ञानिक पहलू है जिससे साधक अपने अंदर विद्यमान सूक्ष्म रहस्यों को जान सकता है। यह सब कुछ मन की शक्तियों से सम्पन्न हो सकता है। मन की शक्तियों को अपने जीवन में उजागर करने के लिए जिस प्रक्रिया को अपनाते हैं, वही ध्यान—साधना है। इस अध्याय में हम योग निद्रा एवं ध्यान साधना के स्वरूप पर चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- ध्यान साधना का अभिप्राय स्पष्ट कर सकेंगे;
- ध्यान साधना की विधि का वर्णन कर सकेंगे;
- स्व—दर्शन ध्यान साधना को समझा सकेंगे और उसकी क्रिया विधि का उल्लेख कर सकेंगे;

टिप्पणी

- योगनिद्रा पर सैद्धांतिक रूप से प्रकाश डाल सकेंगे और उसकी क्रिया विधि, महत्व तथा लाभों का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे।

15.1 ध्यान साधना

आज समाज में लोग योग की ओर विशेष रूप से आकर्षित हो रहे हैं। अधिकांशतः लोग आसन, प्राणायाम और ध्यान को ही योग समझ बैठते हैं। आप तो निश्चित रूप से समझ चुके होंगे कि ये तो योग के मात्र कुछ अंग हैं सम्पूर्ण योग नहीं।

यहाँ यह जानना अति आवश्यक है कि जैसा लोग सीधे ध्यान साधना का अभ्यास करने की बात करते हैं या ध्यान साधना में जाना चाहते हैं, यह उचित नहीं है, क्योंकि महार्षि पतंजलि ने अष्टांग योग में स्पष्ट रूप से आठों अंगों की व्याख्या की है, जिसमें ध्यान को सातवें स्थान पर रखा गया है। ध्यान के पश्चात् समाधि की स्थिति आती है।

ध्यान साधना क्या है?

आइए इस पर विचार करते हैं। ध्यान–साधना भारतीय आध्यात्म का विशेष वैज्ञानिक पहलू है जिससे साधक अपने अंदर विद्यमान सूक्ष्म रहस्यों को जान सकता है। यह सब कुछ मन की शक्तियों से सम्पन्न हो सकता है। मन की शक्तियों को अपने जीवन में उजागर करने के लिए जिस प्रक्रिया को अपनाते हैं, वही ध्यान–साधना है। 'ध्यान की निर्विकार अवस्था है।' ध्यान मन की शक्तियों को नष्ट होने से बचाता है। परेशान व अशान्त मन को शांत करता है। मन की एकाग्रता बढ़ाता है। ध्यान सबके लिए समान रूप से उपयोगी है।

चित्र 15.1: ध्यान–साधना

आइए, ध्यान साधना के निम्न पहलुओं को समझते हैं:

15.1.1 मंत्र

मंत्र विज्ञान बहुत प्राचीन है। मंत्रों का उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रंथों एवं वेदों में मिलता है। मंत्र का शाब्दिक अर्थ है – 'प्रकट ध्वनि'। प्राचीन ग्रंथों के अनुसार मंत्र का अर्थ ध्वनि अथवा अनेक ध्वनियों का मेल होता है। ये ध्वनियाँ हमारे मंत्रद्रष्टा ऋषियों को गहन ध्यान की अवस्था में सुनाई पड़ी थीं। मंत्र की शक्ति शब्दों में नहीं बल्कि उनकी ध्वनि–तरंगों में छिपी रहती है। यह ध्वनि तरंगें मंत्रोच्चार के साथ अथवा जब मंत्र मन में आकार धारण करता है, उस समय उत्पन्न होती है।

व्यक्ति तथा उसकी आत्मा के बीच मंत्र एक प्रतिध्वनि उत्पन्न करता है। इसके माध्यम से व्यक्ति में निहित ब्रह्माण्डीय शक्ति तथा ज्ञान के स्रोत जागृत होते हैं। मंत्र की ध्वनि साधक के मन तथा आत्मा पर एक निश्चित प्रभाव छोड़ती है। प्रत्येक मंत्र साधक के भीतर एक विशिष्ट प्रतीक का निर्माण करता है।

जिस प्रकार आपका व्यक्तित्व आपकी बाह्य अभिव्यक्ति होती है, उसी प्रकार मंत्र भी आपके आंतरिक व्यक्तित्व का परिचायक होता है। मंत्र के द्वारा ही हम अपने यथार्थ अतीन्द्रिय व्यक्तित्व को पा सकते हैं।

विभिन्न धर्मों में मंत्र विधान

विभिन्न धर्मों, भाषाओं तथा संस्कृतियों में हजारों मंत्रों का उल्लेख मिलता है। धर्मों की प्राचीनता तथा उपासना विधान के अनुकूल मंत्रों में शक्ति विद्यमान रहती है। इसी शक्ति को साधक, मंत्र जप साधना से प्राप्त करता है और स्वयं शक्ति संपन्न बन जाता है। हिंदू, बौद्ध, इस्लाम, सिख, ईसाई तथा पारसी आदि धर्मों में मंत्र पाए जाते हैं। कहीं–कहीं नाम सुमिरन से ही साधक शक्ति संपन्न बनता है। सभी धर्मों में मंत्र जप के अपने–अपने तौर–तरीके होते हैं; उन्हीं के अनुसार साधक को मंत्र साधना करनी चाहिए। मंत्र का अनुवाद नहीं हो सकता। यदि आप मंत्र के ध्वनि क्रम को अनुवाद द्वारा उलट–पलट दें तो मंत्र, मंत्र नहीं रह जाता। मंत्र के अनुवाद से भले ही आप सुंदर प्रार्थना बना लें परन्तु मंत्र का मौलिक स्वरूप समाप्त हो जाता है। जिस धर्म से मंत्र संबंधित है उसी धर्म की मान्यताओं के अनुसार ही मंत्र जप साधना करनी चाहिए इसी में साधक की भलाई है।

मंत्र शिक्षा

परंपरानुसार मंत्र, गुरु, माता अथवा मंत्र की आंतरिक अभिव्यक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। मंत्र कभी भी खरीदा या बेचा नहीं जाता। व्यक्तिगत मंत्र, गुरु या शिष्य के बीच दीक्षा के समय क्षणिक संपर्क द्वारा कभी भी प्रदान किया जा सकता है। शिष्यों के अनुसार दीक्षा प्रारूप गुरु अपनी योग्यतानुसार निश्चित करता है।

गुरु द्वारा दिया गया मंत्र निर्णायक होता है, अतः उसे असीम् श्रद्धा तथा विश्वासपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। साधक का मन मंत्र द्वारा पूरी तरह प्रभावित होना चाहिए। चूंकि मंत्र पूर्णरूप

टिप्पणी

से व्यक्तिगत होता है अतएव उसे गुप्त रखना चाहिए। यदि आपका मंत्र गुप्त रहेगा तो वह बहुत शक्तिशाली होगा। यह बात जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी लागू होती है। धरती में कोई भी बीज बोने पर वह तभी अंकुरित होता है जब उसके ऊपर मिट्टी का एक आवरण होता है। यदि बीज को खुला छोड़ दिया जाए और उस पर सबकी दृष्टि पड़े तो वह कभी भी पौधा नहीं बन सकता।

जप विधि

मंत्र का जप विभिन्न तरीकों से किया जाता है।

- श्वास की धारा के साथ मंत्र को जोड़कर – इसमें श्वास के आरोह–अवरोह की चेतना के साथ मंत्र को दोहराया जाता है।
- मंत्र माला के सहारे जपते हैं।
- विभिन्न सूक्ष्म पंथों में चेतना के साथ मंत्र को जपते हैं।
- कुछ लोग भूमध्य में चेतना को स्थिर कर मंत्र का जप करते हैं।
- मंत्र आरोग्य प्राप्ति का एक सशक्त साधन होता है।

शारीरिक व्याधियों के क्षेत्र में कई निश्चित प्रभावशाली मंत्र है। इस क्षेत्र में किसी विशेष बीमारी से छुटकारा पाने के लिए उपयुक्त मंत्र किसी ऐसे विशिष्ट व्यक्ति से प्राप्त करने चाहिए जिसे मंत्र विद्या तथा रोगोपचार का अच्छा ज्ञान हो।

मंत्र द्वारा शक्ति तथा नवजीवन की प्राप्ति का आधार उसकी ध्वनि, ध्वनि की आवृति, वेग तथा तापमान होता है। शिवजी का मंत्र वैराग्य की भावना को बढ़ाता है। आंतरिक आनंद तथा सांसारिक वस्तुओं के प्रति उदासीन की भावना में वृद्धि करता है।

'ऊँ' एक अत्यंत प्रचलित मंत्र है। कोई भी व्यक्ति किसी भी समय अथवा स्थान पर बिना किसी रोक–टोक के इसका जप कर सकता है। ऊँ के जप से मनुष्य अंतर्मुखी होने लगता है। समत्व की भावना का विकास होता है।

15.1.2 अजपा साधना

'अजपा जप' ध्यान का एक महत्वपूर्ण अभ्यास है जिसके द्वारा हम अपनी चेतना को विकसित तथा ग्रहणशील बना सकते हैं। अजपा जप (साधना) का दूसरा नाम 'स्वतः स्फूर्त चेतना' है, जिसका अर्थ अपने अंदर देखने से है।

जप में मंत्र का सतत स्मरण होता है, परन्तु जब बिना चेतन प्रयास के मंत्र का स्मरण मशीन की तरह चलता रहता है तो वह अजपा कहलाता है। ऐसा कहा जाता है कि अजपा जप हृदय से होता है जबकि जप मुख से होता है।

जो लोग बहुत अध्ययन तथा मानसिक कार्य करते हैं, वे ध्यान की इस विधि से बड़े लाभान्वित होते हैं, क्योंकि अजपा जप मानसिक श्रम तथा शारीरिक गतिविधियों के बीच स्वस्थ संतुलन

टिप्पणी

स्थापित करता है। अध्ययन तथा मानसिक श्रम के कार्यों से मन अन्तर्मुखी होता है। अजपा साधना में व्यक्ति को अपनी मानसिकता के प्रति सचेत रहना पड़ता है।

अजपा साधना में अपनी सहज श्वास पर ध्यान देना चाहिए। आप प्रति मिनट 15 बार, प्रति घंटा 900 बार तथा चौबीस घंटों में 21600 बार श्वास लेते छोड़ते हैं, परन्तु इस महत्वपूर्ण प्रक्रिया के प्रति जो जीवन की कुंजी है, उससे आप सर्वथा बेखबर रहते हैं।

अजपा जप के अभ्यास में साधक को श्वास के बदलते स्वरूपों को देखना होता है।

विधि

अजपा जप के अभ्यास की प्रारम्भिक अवस्था में श्वास को कंठ और नाभि के बीच देखते हैं। साधक प्राण शक्ति का प्रवाह मूल स्थान से भृकुटि (बिंदी का स्थान) तथा भृकुटि से मूल स्थान के बीच अनुभव करता है। उच्च अभ्यास में श्वास सामान्य से कुछ अधिक लंबी तथा धीमी रहती है। अजपा जप में प्राण प्रवाह के साथ कोई मंत्र भी प्रयुक्त हो सकता है। कुछ 'सोहं' तथा कुछ 'ऊँ' नाद के रूप में सुनते हैं। किसी और मंत्र के रूप में भी इसे सुनते हैं। वास्तव में कोई भी मंत्र अजपा साधना में लिया जा सकता है। परन्तु 'सोहं' का व्यापक रूप से प्रयोग होता है, क्योंकि श्वास–प्रश्वास की ध्वनि का लय इससे मिलता–जुलता है। इसमें मंत्र को श्वास के साथ लयबद्ध किया जाता है। जब आप श्वास लेते हैं तो उसकी ध्वनि को ध्यानपूर्वक सुनें। यह 'सो' जैसी होती है और श्वास छोड़ते समय जो ध्वनि होती है वह 'हं' जैसी लय में प्रतीत होती है। इस अभ्यास से शरीर की सभी नाड़ियाँ जिनसे प्राण शक्ति प्रवाहित होती है, वे शुद्ध होती हैं। इसमें थोड़ी कल्पना शक्ति लगाने की भी आवश्यकता है।

लाभ

जब श्वास में मंत्र जागृत होता है तो उससे पूरा शरीर आवेशित हो जाता है। नाड़ियों में संचित विषाक्त तत्व बाहर निकलते हैं तथा मानसिक अवरोध दूर होते हैं।

जप की सघन अवस्था में जब 'सुषुम्ना' तरंगित होती है तो 'स्व' की चेतना गतिशील हो उठती है। जब इड़ा तरंगित होती है तो मन सक्रिय होता है और जब पिंगला तरंगित होती है तो प्राण शक्ति सक्रिय होती है तथा समूचे शरीर में ऊर्जा प्रवाहित होने लगती है। यहां तक कि उसका प्रवाह भौतिक शरीर के बाहर भी होने लगता है।

अजपा साधना में कुशलता प्राप्ति से प्रत्याहार, धारणा तथा एकाग्रता की प्राप्ति होती है। अजपा साधना में पूर्णता प्राप्त होने पर संस्कार क्षय हो जाते हैं तथा मन पूरी तरह एकाग्र हो जाता है। यहीं से ध्यान योग प्रारंभ होता है।

15.1.3 अन्तर्मौन

अन्तर्मौन का अर्थ '**अंदर की शांति**' से है। अन्तर्मौन योग का ही बुनियादी अभ्यास है। यह बौद्ध धर्म की साधना का प्रमुख अंग है। बौद्ध धर्म में इसे विपश्यना कहते हैं। अन्तर्मौन के

टिप्पणी

अभ्यास से व्यक्ति अपना मानसिक प्रक्षालन कर सकता है। इसके बाद एकाग्रता की प्राप्ति सहज ढंग से हो सकती है।

यदि हम स्वस्थ व्यक्तित्व की कामना करते हैं तो हमें अपने मन का आदर करना होगा। हमारे विचार भले ही शुभ अथवा अशुभ हों, हमें उन्हें स्वीकार करना होगा। हमेशा ध्यान रखिए, जब भी आप अन्तर्मौन का अभ्यास करते हैं, मन को एकाग्र करने की कोशिश मत कीजिए। उसकी हरकतों को निरपेक्ष भाव से देखिए। मन के सोचने वाले हिस्से को देखिए, उस हिस्से को भी देखिए जो आपके विचारों को नकारता है। इसे मन का अवलोकन कहते हैं। यदि अभ्यास के मध्य कोई व्यक्ति आता है, आसमान में आपके सिर पर से हवाई जहाज गुजरता है अथवा अन्य कोई बाधा उपस्थित होती है तो उसे तथा उससे होने वाली मानसिक प्रक्रिया को भी देखिए। अन्तर्मौन के अभ्यास में हम एक साथ अपने विचारों, दृश्यों, आवाज़ों, अनुभूतियों, अपने आसपास के लोगों तथा वस्तुओं के प्रति सजग रहते हैं।

ध्यान साधना की अभ्यास विधि

प्रथम अभ्यास

इस अवस्था में अपनी एकाग्रता को बाहरी जगत से खींचकर मन के कार्यकलापों पर केन्द्रित किया जाता है। हम देखते हैं कि हमारा मन क्या सोचता है और अवचेतन में से उठने वाले विचारों तथा दृश्यों के प्रति उसकी प्रतिक्रिया कैसी है? इसके अभ्यास से भय तथा तनाव दूर होते हैं। हम भूतकाल के अनुभवों से मुक्त हो जाते हैं तथा दमित इच्छाओं के विस्फोट को देखते हैं। इस अभ्यास को तब तक करना चाहिए जब तक आपका मन पर्याप्त रूप से शांत तथा परेशानियों से मुक्त नहीं हो जाता।

द्वितीय अभ्यास

इस अवस्था में मन में अपने आप उठने वाले विचारों को देखते हैं। जो विचार अधिक शक्तिशाली होते हैं, उनका विश्लेषण किया जाता है और फिर उन्हें हटा दिया जाता है। इस अभ्यास में व्यक्ति को स्वतः उठने वाली विचार तरंगों की प्रक्रिया के प्रति सजग रहना चाहिए। स्वेच्छा पूर्वक महत्वपूर्ण विचारों को सामने लाकर देखना तथा हटाना चाहिए। यदि आप इस अभ्यास को सफलतापूर्वक कर लेंगे तो आपका मन अवचेतन की अतल गहराइयों में उतरने में सक्षम होगा।

तृतीय अभ्यास

इस अभ्यास में मन पर्याप्त रूप से शांत होना चाहिए। विचार तो इस अवस्था में भी उठेंगे परन्तु वे इतने सशक्त नहीं होंगे कि आपके भीतर भावनात्मक उथल–पुथल उत्पन्न कर सकें। इस अवस्था में उठने वाले विचारों को दबाना उचित नहीं है। इस अभ्यास से आपका मन निर्विचार तथा प्रत्याहार की अवस्था में पहुँच सकता है।

चतुर्थ अभ्यास

अन्तर्मौन का अभ्यास पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन, सुखासन अथवा शवासन में किया जाता है। इसे आराम से कुर्सी पर बैठकर या लेटकर भी कर सकते हैं। अन्तर्मौन के प्रारंभिक अभ्यास कहीं भी और कभी भी किए जा सकते हैं। अरुचिकर वातावरण में तथा कोलाहल के बीच मन को शान्त तथा स्थिर रखने के लिए अन्तर्मौन का अभ्यास किया जा सकता है।

अन्तर्मौन साधना का आदर्श समय रात्रि में सोने से पूर्व अथवा प्रातःकाल है।

15.1.4 स्वदर्शन

'**स्वदर्शन**' ध्यान साधना का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अभ्यास है जिसका अर्थ है –स्वयं अपने अंदर दर्शन करना तथा एकाग्रचित होकर अपने में ही स्थिर हो जाना।

क्रिया विधि

सर्वप्रथम पद्मासन या सुखासन में बैठ जाइए। शरीर को सुखपूर्वक स्थिति में रखिए और मेरुदंड को सीधा कर लीजिए। आँखें बंद कर लीजिए। अपने शरीर को स्थिर रखिए तथा स्वयं को हर तरह के तनाव से मुक्त कर लीजिए।

आइए, अब आंतरिक भावना से अपने शरीर के बारे में विचार करें। हमारा यह शरीर पांच महाभूतों के मेल से बना है। (शरीर = पृथ्वी + जल + अग्नि + वायु + आकाश)। मैं पृथ्वी नहीं, पृथ्वी का साक्षी हूँ। मैं जल नहीं, जल का साक्षी हूँ। मैं अग्नि नहीं, अग्नि का साक्षी हूँ। मैं वायु नहीं, वायु का साक्षी हूँ। मैं आकाश नहीं, आकाश का साक्षी हूँ। मैं समस्त पंचमहाभूतों का साक्षी हूँ, मैं देख रहा हूँ। मैं शरीर में उनका अनुभव कर रहा हूँ।

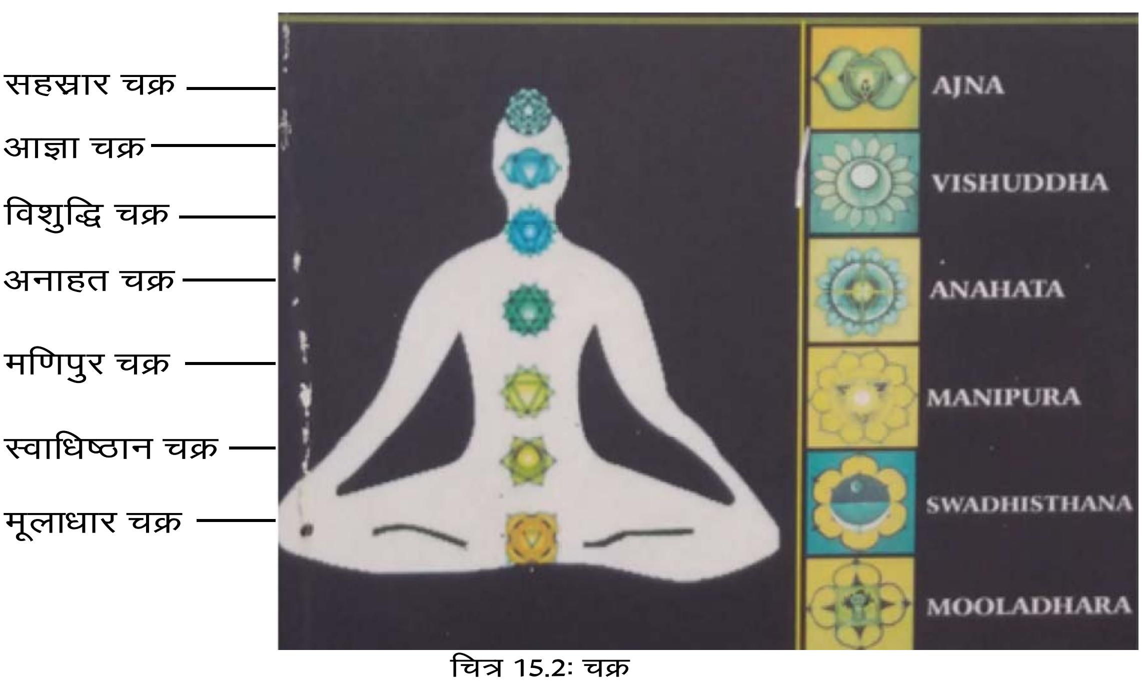

चित्र 15.2: चक्र

टिप्पणी

हमारे शरीर में छह मनोशक्ति केन्द्र हैं। इन्हीं के मूल में पंचमहाभूतों की स्थिति है। इन केन्द्रों को योग—विज्ञान में चक्रों के नाम से जानते हैं:

1. **मूलाधार चक्र** —यह शरीर के नीचे आधार में गुदाद्वार से लगभग डेढ़ इंच ऊपर है। इस स्थान पर हम पृथ्वी तत्व की उपस्थिति का अनुभव करते हैं।
2. **स्वाधिष्ठान चक्र**— यह योनि का स्थान है, यहाँ हम जल तत्व की उपस्थिति का अनुभव करते हैं।
3. **मणिपुर चक्र**— नाभि स्थान के अंदर है। यहाँ अग्नि तत्व है और सभी नाड़ियों का केन्द्र है।
4. **अनाहत चक्र**— यह भावना का केन्द्र है, जो हृदय भाग के अंदर स्थित है।

   यह वायु तत्व का क्षेत्र है, जो प्राण शक्ति का ईंधन है। हमारे शरीर के रोम—रोम में प्राण शक्ति का संचार इसी स्थान से रक्त कणों के माध्यम से होता रहता है।
5. **विशुद्धि चक्र** — यह आकाश तत्व का प्रतीक है। यह कण्ठ के अंदर वाणी के स्थान पर स्थित है। इसी स्थान से स्वर निकलता है।
6. **आज्ञा चक्र** — यह भ्रूमध्य (तिलक का स्थान) के सामने खोपड़ी के अंदर स्थित है। समस्त नाड़ियों के लिए आदेश यहीं से मिलता है। हमारे मस्तिष्क के उर्ध्व भाग में सहस्रार की स्थिति है। यह मंगलमय भगवान शिव का निर्मल स्थान है। इस स्थान से विभिन्न अनुभूतियों को प्राप्त करते हैं और परमानन्दित होते है।

पंचभूतों से निर्मित शरीर मेरा है किन्तु मैं शरीर नहीं हूँ बल्कि शरीर में निवास करने वाली दिव्य शक्ति का अंश हूँ। मेरा यह शरीर पूर्ण रूप से स्थिर हो चुका है। इसमें किसी प्रकार का विकार नहीं है।

यह पूर्ण रूप से शांत हो चुका है, शिथिल हो चुका है। मैं सत्—चित्त—आनंद स्वरुप इस शरीर में विराजमान हूँ। मेरा सूक्ष्म स्वरुप अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। मैं सत्—चित्त—आनंद रूप ब्रह्म का साक्षी हूँ। अनन्त हूँ और अविनाशी हूँ। ऐसे ही भाव से हमें अभिभूत होना चाहिए।

लाभ

शरीर को शान्ति—सुख मिलता है। शरीर पर पूरा नियंत्रण रहता है। मन एकाग्र होता है; सांसारिक मोह—माया से अलग रखने में हमारी मदद करता है।

यूनिटगत प्रश्न 15.1

1. मंत्र का शाब्दिक अर्थ क्या है?

   ....

   ....

टिप्पणी

2. ध्यान साधना से आप क्या समझते हैं?

....

....

3. स्वदर्शन से क्या तात्पर्य है?

....

....

15.2 योग निद्रा

योग निद्रा योगियों की निद्रा है। इसमें मन की एकाग्रता द्वारा विश्राम की प्राप्ति होती है। योग निद्रा में साधक सोता नहीं है। जीवात्मा निरन्तर जागृत रहती है। योग निद्रा के अभ्यास से साधक अपने शरीर के एक–एक अंग का शिथिलीकरण करता है। शिथिलीकरण की इस क्रिया को योग निद्रा कहते हैं।

वास्तव में देखा जाए तो योगनिद्रा प्रत्याहार साधना का एक अंग है। इसमें समस्त इंद्रियों को उनके विषयों से खींचकर भीतर की ओर मोड़ा जाता है। एक घंटे की योगनिद्रा अभ्यास से मिलने वाला शारीरिक और मानसिक विश्राम चार घंटे की सामान्य निद्रा से कहीं अधिक लाभप्रद है।

शारीरिक स्थिति

योग निद्रा का अभ्यास समतल और शांत स्थान पर शवासन में करना चाहिए। फर्श पर कंबल या दरी बिछाकर योगनिद्रा का अभ्यास किया जाता है। ठंड तथा मच्छरों से बचने के लिए चादर से शरीर को अच्छी तरह ढक लेना चाहिए। योगनिद्रा की पूरी अवधि में नेत्र बंद रखने चाहिए। शरीर पूरी तरह शिथिल रखना तथा किसी भी परिस्थिति में कोई भी शारीरिक हलचल नहीं होनी चाहिए। पूर्ण आराम के साथ, शवासन में लेटकर योगनिद्रा के लिए स्वयं को तैयार कीजिए।

चित्र 15.3 : शवासन में योग निद्रा

टिप्पणी

शिथिलीकरण

एक व्यवस्थित क्रम से शरीर के प्रत्येक अंग, शरीर के प्रत्येक जोड़, मांस पेशी, रक्त–संस्थान तथा श्वसन–संस्थान, मस्तिष्क, चेहरा, आँखें आदि सभी को बारी–बारी से शिथिल करते जाइए। अपने भाव को अपने ही अंदर इस प्रकार प्रकट कीजिए – मेरे दाहिने पैर की एड़ी तथा आस–पास के हिस्से शिथिल हो रहे हैं, शिथिल हो रहे हैं, शिथिल हो चुके हैं। इसी प्रकार क्रम से एक–एक कर शरीर के सभी अंगों को शिथिल कीजिए।

मानस दर्शन

शरीर के शिथिल होने के साथ–साथ मन भी पूरी तरह शिथिल और शांत हो जाता है। शांत होने के उपरांत भी मन को व्यस्त रखना है। उसे एक क्रम से शरीर के विभिन्न अंगों पर ले जाइए। उसे श्वास–प्रश्वास का साक्षी बनाइए। भिन्न–भिन्न संवेदनाओं का अनुभव कराइये। तरह–तरह की वस्तुओं तथा काल्पनिक प्रतिमूर्तियों का मानस दर्शन कराइए।

आपको अभ्यास की पूरी अवधि में सोना नहीं है। सदा चैतन्य रहना है।

संकल्प

योगनिद्रा के प्रारंभ में एक संकल्प लिया जाता है जो आपके जीवन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास के साथ इस संकल्प को तीन बार दोहराइए। आपका संकल्प परम कल्याणकारी हो, सुख–शान्ति प्रदान करने वाला हो और धरती माता की प्रतिष्ठा के लिए हो।

योग निद्रा में लिया गया संकल्प हमारे अवचेतन मन की गहराइयों में चला जाता है और समय आने पर निश्चित रुप से वास्तविकता में परिणत होने लगता है।

क्रिया विधि

1. शवासन में गहरी श्वास लीजिए व उसके साथ–साथ पूरे शरीर में शान्ति का अनुभव कीजिए। श्वास छोड़ते समय शरीर में शिथिलता का अनुभव कीजिए।

2. जैसे–जैसे शरीर के अलग–अलग अंगों का नाम लिया जाए, अपनी चेतना को शरीर के विभिन्न अंगों पर घुमाइए। ध्यान रहे कि शरीर में किसी प्रकार की कोई अस्थिरता या तनाव ना हो।

3. अपने ध्यान को दाहिने पैर के अंगूठे पर ले जाइए, दूसरी अंगुली, तीसरी, चौथी, पांचवी, पंजा, तलुआ, एढ़ी, टखना, पिंडली, घुटना, जांघ आदि अंगों पर क्रम से चेतना को घुमाइए।

4. इसी प्रकार बायें पैर के साथ कीजिए। इसके बाद दाहिना हाथ तथा बायां हाथ के भी हिस्सों पर अपनी चेतना को ले जाइए।

टिप्पणी

5. हाथ—पैर के बाद अपनी चेतना को धड़ के हिस्सों पर ले जाइए तथा इसके बाद संपूर्ण मुख मंडल पर चेतना को घुमाइए। इसे देह दर्शन अथवा न्यास की क्रिया भी कहते हैं।

6. शरीर दर्शन के उपरांत अपने प्राण प्रवाह को रग—रग में अनुभव कीजिए तथा शरीर के कमजोर व रोग ग्रस्त हिस्से पर प्राण प्रवाह के स्पन्दन को अनुभव कीजिए तथा मन को सुझाव दीजिए कि रूग्ण अंग स्वस्थ हो रहा है।

7. इस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों पर एक से अधिक बार चेतना को घुमाइए, साथ ही शरीर को अधिक से अधिक विश्राम तथा शिथिलता मिलेगी।

8. मानसिक रुप से श्वास के प्रति सचेत रहिए। उसे उल्टी गिनती में 54 से 0 (शून्य) तक गणना कीजिए। मैं जानता हूँ कि मैं श्वास ले रहा हूँ। 54 मैं जानता हूँ कि मैं श्वास छोड़ रहा हूँ 53 इस प्रकार 54 से 0 तक गणना कीजिए। यदि बीच में श्वास गिनने में भूल हो जाए तो पुनः 54 से ही गिनती प्रारंभ कीजिए। सोइए नहीं गणना जारी रखिए।

9. अपनी मन की आँखों से प्रकृति के मनोरम दृश्यों को देखिए। जैसे आप ऊँचे पर्वत, गिरते हुए झरने को देखते हैं। समुद्र में उठने वाली लहरों को देखते हैं। प्रातःकाल में उगते हुए सूरज को देखें। किसी दिव्य मंदिर के दर्शन कीजिए। आप जिस पूजा विधान को मानते हैं उसके रमणीय स्थल तथा होने वाली प्रार्थना में मानसिक रुप से सम्मिलित हो जाइए। आप मुस्लिम हैं तो मस्जिद में नमाज के दृश्य को देखिए। आप सिख हैं तो गुरुद्वारे में अपनी अरदास कीजिए। ईसाई हैं तो चर्च में प्रार्थना कीजिए। आप जो दृश्य स्वीकार करते हैं उसमें भावनात्मक रुप से सम्मिलित रहिए।

10. इन सब दृश्यों में से गुजरते हुए आप पुनः शवासन में पड़े हुए अपने शरीर को देखिए। तीव्रता से शरीर के अंगों में पुनः क्रम से अपनी चेतना को घुमाइए। अब फिर से अपने शरीर में प्राण प्रवाह का अनुभव कीजिए और संपूर्ण शरीर को चैतन्य कर लीजिए।

11. अब आप अनुभव कीजिए कि आपका शरीर फूल के समान हल्का हो चुका है। मेरे चारों ओर सुगन्धि फैली हुई है। मैं अब दिव्य तरंगों से अभिभूत हो चुका हूँ। मैं पूर्ण शान्त हूँ। मैं आनन्दित हूँ।

अब अंत में दाहिने करवट जाइए और उठकर बैठ जाइए। अभी आँखें नहीं खोलेंगे। पीठ सीधा रखते हुए हाथ जोड़कर अपने ईष्ट की प्रार्थना कीजिए और अपने को नई चेतना के साथ शुभ कर्मों के लिए तैयार रखिए।

1. योग निद्रा के अभ्यास को किसी सक्षम योग शिक्षक के निर्देशन में ही करना चाहिए।
2. योग निद्रा का अभ्यास करते समय लगातार सजग रहना चाहिए।
3. सोना नहीं चाहिए।

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्न 15.2

1. योग निद्रा क्या है? इसे क्यों करना चाहिए?

2. शरीर के विभिन्न अंगों में चेतना को कैसे ले जाएंगे।

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आपने सीखा कि– ध्यान–साधना भारतीय आध्यात्म का विशेष वैज्ञानिक पहलू है जिससे साधक अपने अंदर विद्यमान सूक्ष्म रहस्यों को जान सकता है। यह सब कुछ मन की शक्तियों से सम्पन्न हो सकता है। मन की शक्तियों को अपने जीवन में प्रकट करने के लिए जिस प्रक्रिया को अपनाते हैं, वही ध्यान–साधना है। 'ध्यान अंतर मन की निर्विकार अवस्था है।'

योग निद्रा योगियों की निद्रा है। इसमें मन की एकाग्रता द्वारा विश्राम की प्राप्ति होती है। योग निद्रा में साधक सोता नहीं है। जीवात्मा निरन्तर जागृत रहती है। योग निद्रा के अभ्यास से साधक अपने शरीर के एक–एक अंग का शिथिलीकरण करता है। शिथिलीकरण की इस क्रिया को योग निद्रा कहते हैं।

साथ ही हमने यह भी सीखा कि साधक को किस प्रकार ध्यान साधना करनी चाहिए।

यूनिटांत प्रश्न

1. ध्यान साधना से आपका क्या अभिप्राय है? संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।

2. योग निद्रा से आप क्या समझते हैं? संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।

3. ध्यान साधना की अभ्यास विधि का उल्लेख कीजिए।

4. योग निद्रा के अभ्यास का क्या लाभ है? योग निद्रा का अभ्यास कैसे किया जाता है?

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

15.1

1) 'प्रकट ध्वनि'।

2) मन की शक्तियों को अपने जीवन में उजागर करने के लिए जिस प्रक्रिया को अपनाते हैं वह ध्यान साधना कहलाती है।

3) स्वयं अपने अंदर दर्शन करना तथा एकाग्रचित होकर अपने में ही स्थिर हो जाना।

15.2

1) योग निद्रा प्रत्याहार साधना का एक अंग है। इसमें साधक सोता नहीं है। मन की एकाग्रता द्वारा विश्राम की प्राप्ति करता है।

2) जैसे–जैसे शरीर के अंगों का नाम लिया जाये वैसे–वैसे अपनी चेतना को उन पर ले जाइए।